आकाश की सीमा

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

लेखक

हीरा प्रसाद त्रिपाठी

प्रकाशक

सुरेन्द्र एण्ड को०

कटरा, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] अप्रैल १९५९ [मूल्य ३.५० नए पैसे

प्रकाशक :—सुरेन्द्र एण्ड को०

मुद्रक:—सुरेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, कटरा इलाहाबाद ।

Dedicated

To

Brother

Dr. KANHAYIA LAL YADAVA

M. Sc., D. Phil.

Whose integrity of character and rare understanding of human values ; are far ahead his age.

With

HEART REGARDS

आज दोबारा पढ़कर इस उपन्यास को अभी-अभी मैंने खत्म किया है।—और बहुत-सी आलोचनात्मक बातें, जो बीच-बीच में मन में उठ आती थीं, इस वक्त खो गयी हैं। आँखों के सामने है उपन्यास का आखिरी सीन, जो किसी मर्मान्तक लोक-कथा का अन्त-सा लगता है। उस अन्त तक पहुँचने के लिए, घटनाचक्रों में बँधे हुए हीरो, पूरन, के चरित्र को सोचता हूँ, तो अपने पुष्ट, स्निग्ध, निश्छल, और साथ ही क्रूर सरलता में वह साफ उभर आता है और बहुत सच्चा लगता है।

यही क्रूर स्निग्ध सरलता, मुझे लग रहा है, देहात के नैसर्गिक सौन्दर्य का हृदय है, उसका आदिम स्वभाव।

इस कथानक के साथ न्याय वही शैली कर सकती है जो इस कथा के समान ही एकदम सीधी, सरल, निश्छल और क्रूर सच की तरह निरावरण हो। यह सही है कि कहीं-कहीं दो-चार शब्दगत भूलें और प्रूफ की गलतियाँ मिल जाएँगी, मगर इसके लिए भी एक क्षण का तो अवकाश चाहिए, कि वह खटकें। कथानक का सरल और तेज प्रवाह ऐसा अवकाश पाठक को नहीं देता।

सबसे प्यारी और मोहक बात जो मुझे लगी, वह यह कि कहीं भी कोई सपनों से आक्रान्त, कुण्ठाओं से ग्रस्त, वासनाओं की उलझन से एक नशे का-सा उतार लिये हुए, 'साहित्यिक' या फिल्मी तनाव यहाँ नहीं मिलता। इन बातों से ऊबकर मन ऐसे ही किसी उपन्यास को पढ़ना चाहेगा। गाँव की जो दो मुख्य स्त्री-पात्र हैं, कौशल्या और रूपा, खासकर रूपा, वह उतने ही सजीव और पूर्ण हैं—और कृत्रिमता की बू उनसे उतनी ही दूर है—और उनमें दुख-सुख का सहज और भरपूर आवेश वैसा ही है, जैसा हमें लोककथाओं और लोकगीतों में मिलता है, जिनको शहराती कविता और कहानी के वातावरण और पात्र जरा कम ही छू पाते हैं।

कुछ साल हुए, मैं माया-प्रेस के सम्पादन-विभाग में था, जब श्री हीराप्रसाद त्रिपाठी अपना उपन्यास विचारार्थ वहाँ लाये थे। वहीं, उस उपन्यास के पढने के बाद, उनसे मेरा पहला परिचय हुआ और उनकी कथात्मक कृतियों में दिलचस्पी बढ़ी। इसमें शक नहीं कि इधर हिन्दी के कथा-साहित्य ने बहुत तेजी से तरक्की है। इसके कला-पक्ष का भी विकास हुआ है और कथावस्तु-और-विषय का क्षेत्र भी फैला है। निस्सन्देह कथात्मक गद्य आज बहुत ऊपर उठ गया है, और अनेक प्रतिभाएँ और कुछ पुरानों के नये कारनामे हमारे आजके साहित्य के गौरव की चीज हैं।

फिर भी एक चीज का अभाव मैं कमोबेश महसूस ही करता हूँ। वह है—अपनी जानी-पहचानी हुई भूमि से, कथानक की धरती की ताजी, असली बू-बास लिए हुए, सीधे-सीधे अकृत्रिम पद्धति में कहानी का हमारे सामने रखा जाना। हजार रंगीनियाँ साहित्य के स्टाइल में आयें, उस अकृत्रिम सौन्दर्य की अपनी खास जगह अलग ही बनी रहेगी। इसका कुछ आदर्श प्रेमचन्द जी रख गये हैं, उनसे भी बहुत बड़ा नाम, मगर इसी किस्म का, ताल्सताय का है। मैं देखता हूँ कि शैली और कथानक बड़ी मोहक करवटें आज ले रहे हैं, मगर यह सरस और सरल आदर्श आज किसी लेखक को विशेष आकृष्ट नहीं करता। इस साफ, ऊँचे पथ पर मैं जिस भी छोटे या बड़े लेखक को कदम रखते देखता हूँ, उसकी कृति के प्रति एक अलग ही तरह का विश्वास, एक अलग ही तरह का आदर-भाव मेरे मन में उठता है। इसमें और इसके विपरीत जो पथ है उसमें, एक मौलिक-सा विरोध अवश्य है (जिस पर बहस का यहाँ अवसर नहीं), मगर बहुत कुछ यह टेम्परामेन्ट का भी विरोध है। एक ओर है कलात्मक सरल, दूसरी ओर है दुरूह कलात्मकता।

सम्भवतः ताल्सताय और प्रेमचन्द का पथ अधिक कठिन है, क्योंकि उसमें कहानी और कहानी-कला से ऊपर कुछ भी अधिक हमें मिलता है। और वह है दृष्टिकोणगत एक स्पष्ट नैतिक दर्शन

—जिसके बिना इस रंग की कहानी और कहानी-कला एक क्षण के लिए भी साँस नहीं ले सकती। और फिर भी यह चीज किसी भी विशेष प्रचार-भावना से उतनी ही दूर होगी, जितना कि बाग में खिलने वाला गुलाब माली की दूकान में रखे हुए गुलाब के फूल से। एक कहानी या कविता प्रकृति की गोद में खेलती हुई ऋतुओं की नाना मुद्राएँ हमारे सामने पेश कर सके, यह बहुत मुश्किल बात है। कहानीकार और कवि को उसी प्रकृति की गोद में जाकर खेलना पड़ेगा, उसकी कथाओं का पात्र भी बनना पड़ेगा, और उसके स्वरों में स्वर भी मिलाना पड़ेगा। तब कहीं वह नैसर्गिकता आयेगी, जिसका मैं जिक्र कर रहा हूँ। (उसके साथ-साथ अगर आधुनिक वैज्ञानिक विश्लेषण और आधुनिक कला की मार्मिक अनुभूति भी हो, तब महान् प्रतिभा के उदय होने में कोई संशय नहीं रह जाता।)

ये बातें कुछ प्रसंगवश आ गयीं। इसलिए नहीं कि "आकाश की सीमा" के लेखक से इन ऊँचाइयों की निश्चित आशाएँ हैं या कि यह उपन्यास उन ऊँचाइयों की ओर कोई निश्चित संकेत करता है। नहीं। मगर यह लेखक और इसकी यह कृति उस धरती और उस वातावरण की बू-बास लिए हुए जरूर हैं, जहाँ उन ऊँचाइयों का खयाल आता है और जहाँ निगाहें उधर उठने लगती हैं।

इन शब्दों को लिखते हुए इस उपन्यास के साथ इसके लेखक का एक दूसरा उपन्यास "परती की उमास" मेरी आँखों के सामने आता है, जिसमें ग्राम-जीवन का आर्थिक संघर्ष अधिक तीव्र है। वहाँ पर वैसा विश्लेषण कुछ उसका केन्द्रीय विषय भी है। "आकाश की सीमा" सम्भवतः लेखक की पहली कृति है और इसमें रोमांस का आकर्षण ही केन्द्रीय विषय है। फिर भी ग्राम-जीवन का आर्थिक-सामाजिक नक्शा कथानक के ताने-बाने में से स्पष्ट झलक जाता है। और पाठक को यही चीज शायद सबसे अधिक आश्वस्त करेगी, कि जिस

जीवन का दिग्दर्शन लेखक करा रहा है, उस जीवन की कलाई पर उसका हाथ है। उस जीवन को वह काफी कुछ देखे, समझे और झेले हुए है। कम से कम इतना विश्वास मुझे है कि जिस तरह मैं स्वयं इस उपन्यास को पूरा एक साँस में पढ़ गया, उसी तरह और पाठक भी इसको हाथ में लेकर खत्म किये बिना न रख सकेंगे, और न ही शीघ्र इसके प्रमुख पात्रों की रूप-रेखा को भुला सकना उनके लिए सम्भव होगा।

शमशेर बहादुर सिंह

इलाहाबाद
११ जून, १९५९

पहला अध्याय

आठ वर्ष पहले की बात है।

सबेरे का समय था और क्वार का महीना। रुद्रनगर स्टेशन का पश्चिमी सिगनल गिरा हुआ था। सूरज के निकलने में थोड़ी ही देर थी। आकाश ने अपने रुपहले तारों को समेट लिया था। धरती अपने सौन्दर्य पर इतराकर ओस की सुनहरी बूँदों को पेड़-पौदों पर बिखेर रही थी। स्टेशन के प्लेटफार्म पर गाड़ी का इन्तजार करने वाले यात्रियों की भीड़ लगी हुई थी, बाहर सड़क पर तीन-चार लारियाँ और पचासों इक्के खड़े थे। वातावरण में हलचल नहीं थी और हवा में ताजगी थी।

गाड़ी आई और चली गई। जितने यात्रियों को वह ले गई, लगभग उतने ही लोगों को वह छोड़ भी गई। कुछ अन्दाज नहीं कि कितने बिछुड़ों को उसने मिलाया और कितने मिले हुए लोगों को अलग कर दिया। थोड़ी देर बाद प्लेटफार्म पर लगी हुई भीड़ खतम हो गई। सभी लोग जैसे यात्रा से ऊब गए थे और जल्द से जल्द उस जगह को छोड़ देना चाहते थे। लेकिन जमादार पूरनसिंह को कोई जल्दी न थी। बड़े ही इतमीनान से सिगरेट के कश खींचते हुए वह प्लेटफार्म पर टहल रहा था। उसके चेहरे पर किसी प्रकार की जिज्ञासा या उत्सुकता नहीं थी। लगता था, रुद्रनगर उसकी जानी पहचानी जगह है।

पूरनसिंह के पास दो कुलियों का सामान था। प्लेटफार्म पर जब कोई यात्री न रह गया, तब उसने कुलियों को आवाज दी। उन्होंने उसके सामान को ले जाकर मुसाफिर खाने में रख दिया। अपनी मजदूरी लेकर जब कुली चले गए, तब पूरनसिंह ने दूसरी सिगरेट जलाई और अपने एक सन्दूक पर होल्डाल रख कर, उसी पर वह बैठ गया। उसकी निगाह सड़क पर फैली हुई दूकानों, आम, शीशम तथा जामुन-

आदि के पेड़ों, पानी की गन्दी नालियों, सड़क के किनारे चिथड़ों में लिपटे हुए एकाध भिखमंगों और दूकानों पर पान-मिठाई अथवा अन्य चीजें खरीदने वाले यात्रियों पर पड़ने लगी। आने-जाने वाले आदमियों में से किसी-किसी को वह पहचान भी लेता था और उसकी चेतना में हलकी-सी उथल-पुथल मच जाती थी। रुद्रनगर स्टेशन के आस-पास बसी हुई उस छोटी-सी बस्ती को उसने तेरह वर्ष पहले देखा था। समय का इतना लम्बा अरसा उसमें कोई भी परिवर्तन न ला सका था। उस छोटी-सी बस्ती की जो तस्वीर तेरह वर्ष पहले थी, बिलकुल वही आज भी थी।

मुसाफिर-खाने में अपने होल्डाल पर बैठे हुए पूरनसिंह की चेतना में तेरह वर्ष पहले की स्मृतियों का ताँता लगा हुआ था। समय के इस व्यवधान ने पूरनसिंह में ऐसा बदलाव लाया था, जिसकी उसे स्वयं उम्मीद नहीं थी। उसी जगह बारह वर्ष के अनाड़ी बालक पूरन ने अपने भविष्य को दाँव पर लगाया था। और आज पाँसा पलट गया था, खेल में उसकी जीत हुई थी। वह बाजी लेकर लौटा था।

मुसाफिर-खाने के दूसरे छोर पर सड़क के किनारे एक होटल, एक टी-स्टाल, दो-तीन पान और मिठाई की दूकानें थीं। उन दूकानों को पूरन ने तेरह वर्ष पहले जिस हालत में देखा था, उसी हालत में वे आज भी थीं। टी-स्टाल के सामने वही विज्ञापन-बोर्ड आज भी लगा हुआ था। चाय पीते हुए दो आदमियों की तस्वीर और कुछ लिखे हुए अक्षर। किन्तु तेरह वर्ष पहले वे अक्षर उसके लिए रहस्य थे; आज वह उन्हें अच्छी तरह पढ़ सकता था: 'गर्म चाय, शक्ति-दायक पेय।' होटल के सामने रखे हुए टूटे, पुराने मेज और कुर्सियाँ हू-बहू वही थीं, जिन्हें पूरन अपनी किशोरावस्था में देख गया था। होटल का मालिक वही पहले वाला आदमी था। उसके कपड़े उतने ही गन्दे अब भी थे।

पूरन ने टी-स्टाल पर एक कप चाय पी, और वहीं रखी हुई एक बेंच पर बैठ गया। एक कतार में लगी हुई उन दूकानों में वह कई

चेहरों से परिचित था। लेकिन उसे कोई नहीं पहचानता था। और पहचानता भी क्यों? तेरह वर्ष पहले उसकी हस्ती ही क्या थी? वह उसी क्षेत्र का निवासी होते हुए भी इतना नगण्य था कि उन टुट-पुँजिया दूकानदारों ने भी उसके परिचय को सँभाल कर रखना पसन्द नहीं किया। लेकिन आज उन सब की दृष्टि उसी पर थी। आज वह फौज का एक अधिकारी था और अपना महत्व रखता था। सभी चाहते थे कि वह उनकी दूकान से कुछ खरीदे। और इस तरह से वह आज उन पर अपने परिचय का इतना गहरा रंग छोड़ सकता था, जिसे वे बहुत दिनों तक न भुला सकें।

वह अभी बैठा ही था कि होटल से एक आदमी निकलकर उसके सामने आया और उसने पूरन को सलाम किया। उस आदमी की आयु तीस बरस से कम न रही होगी। उसे देखते ही पूरन को लगा, जैसे वह उसे भी जानता हो। लेकिन उसकी जान-पहचान कहाँ की थी, कितनी पुरानी थी, यह सब उसे कुछ भी याद न था। फिर उस आदमी ने उससे पूछा: "हुजूर, आपके लिए कुछ खाने को लाऊँ?"

पूरन ने उस आदमी को गौर से देखा और उससे वह बोला—"मेरे लिए गोश्त और पराठे तैयार कराओ, थोड़ी देर बाद मैं खाऊँगा।"

"बहुत अच्छा सरकार!" कहकर वह आदमी चला गया।

जब वह जा रहा था, तो पूरन ने फिर एक बार उसे गौर से देखा और उसकी चेतना में एक धुँधली-सी स्मृति टकराने लगी। चन्द मिनटों में ही वह पुरानी यादगार स्पष्ट हो उठी, उसकी कड़ुवाहट से पूरन चौंक उठा, उसकी आँखों के सामने से एक परदा उठने लगा। एक दृश्य चमककर उसके सामने आ गया।

पूरन बारह वर्ष का बालक है। घर से भागकर रुद्रनगर स्टेशन पर वह अकेला, निर्लक्ष्य इधर-उधर घूम रहा है, इन होटल, टी-स्टाल, मिठाई और पान की दूकानों के इर्द-गिर्द वह कई चक्कर लगा चुका

है। मैली धोती, गबरून की एक कमीज और चारखाने का एक रूमाल—बस, यही उसके पास सब सामान है। उसके पास कुल तीन आने पैसे हैं, जिन्हें उसने पाँच महीने पहले अपने पिता-द्वारा दिए गए पैसों में से बचा लिया था। भूख लगती है। वह उसकी परवाह नहीं करता। अपने पैसों को उसने सूत के एक रंगीन बटुए में बहुत सँभालकर रखा है। उसकी बसन्ती दीदी ने अपने हाथों से बनाकर उसे वह बटुवा दिया था। रह-रहकर वह उस बटुवे को देख लेता है और फिर कभी स्टेशन के प्लेटफार्म पर, कभी सड़क पर, और कभी मुसाफिर खाने में पागल-सा घूमने लगता है। इसी तरह घूमते-फिरते उसे बड़े जोर की प्यास लगती है और वह मिठाई की दूकान के सामने रखी हुई पानी की टंकी के पास जाता है। टंकी के नीचे लगी हुई टोंटी को खोलकर वह पानी पीने लगता है। मुश्किल से वह दो घूँट पानी पी पाता है, कि पीछे से कोई उसकी गरदन पकड़कर उसे नाली में ढकेल देता है। नाली में गिरने के कारण पूरन की धोती कीचड़ में सन जाती है और उसके सिर में जोर की चोट लगती है। वह मारे क्रोध के पागल हो जाता है और बिना किसी कसूर के उसे नाली में ढकेल देने वाले उस पाजी को जब वह हँसता हुआ देखता है, तो उसका क्रोध उसे अन्धा बना देता है।

पूरन इस बात की परवाह तक नहीं करता कि उसका प्रतिद्वंदी उससे काफी तगड़ा है। वह उस पर क्रुद्ध भेड़िए के समान टूट पड़ता है और पहली ही चपेट में उसे टंकी पर पटक देता है।

टंकी के मुँह पर लगा हुआ ढक्कन खुल जाता है और सारा भरा हुआ पानी जमीन पर फैल जाता है। टंकी का पानी जमीन पर बहता हुआ देखकर दूकानदार भी उस जगह पहुँचता है। पूरन को वह माँ-बहिन की बहुत गन्दी-गन्दी गालियाँ देता है और उसे मारने के लिए अपने नौकर को ललकारता है: "मंगरू! देखता क्या है; मारता क्यों नहीं पटककर इस हरामजादे को?"

मँगरू सँभल कर उठता है। वह पूरन के मुँह पर खींच-खींचकर

कई झापड़ मारता है। इस बार पूरन भी सजग है। अगर वह चार बार स्वयं पिटता है, तो दो बार मँगरू को भी अवश्य पीट देता है। लेकिन मँगरू उससे उम्र मे भी बड़ा है और उससे मजबूत भी अधिक है। वह पूरन को बहुत मारता है, मारते-मारते बेदम कर देता है। जब पूरन के मुँह से खून गिरने लगता है, तब मँगरू अपने मालिक के कहने से उसे छोड़ देता है। वह रोता हुआ फिर स्टेशन की ओर जाने लगता है, पीछे से मँगरू, उसका मालिक, वह हलवाई तथा अन्य दूकानदार तालियाँ पीट-पीटकर हँसने लगते हैं।

आज के जमादार पूरनसिंह ने होटल के उस नौकर को अच्छी तरह पहचान लिया। वह मँगरू ही था। उस समय वह हलवाई का नौकर था, आज वह होटल का नौकर है। उसी आदमी ने पूरन को बिना किसी कसूर के एक दिन कुत्ते की तरह पीटा था। आज पूरन उसे अपने बाएँ हाथ के एक धक्के से जमीन पर गिरा सकता था और अपने बूट की ठोकरों से उसके मुँह से भी खून निकाल सकता था। किन्तु उसे आज के इस मँगरू पर थोड़ा-सा भी क्रोध नहीं आ रहा था। उसे मँगरू की हालत पर तरस आ रहा था।

पूरन किसी दार्शनिक की भाँति समय के खेल पर विचार करने लगा। क्या से क्या हो गया ? वह कहाँ से कहाँ पहुँच गया ? पिछले तेरह वर्षों के समय ने पूरन को गेंद बनाकर खेला था। अपने दया-माया से रहित, बे-मुरौवत पैरों की ठोकरों से परास्त कर देना चाहा था, लेकिन पूरन मिट्टी की नहीं, रबड़ की गेंद था। जितने ही जोर से उसे कड़ी जमीन पर पटका जाता था, जितनी ही ताकत से उसे ठोकर लगाई जाती थी, उतने ही दूने वेग से वह ऊपर उछलता था।

परिस्थितियाँ उसे दबा न सकीं, अथवा यों कहिए कि परस्थितियों को ही उसने दबा लिया, वह झुका नहीं। इसी लिए अभिशाप भी उसके लिए वरदान बन गया।

मँगरू ने ही पूरन को पहली बार मारा हो, ऐसी बात नहीं थी। अपने घर में और गाँव में भी वह अक्सर मार खाता था; मारता था,

रोता था, रुलाता था और फिर मस्ती से घूमता था। आँसू उसकी आँखों में बहुधा कम ही आया करते थे, और अधिकतर तो जब चोट से उसके शरीर में से खून निकलने लगता, तभी उसकी आँखों से आँसू भी निकलते थे।

पूरन के गाँव का नाम था, नन्दगाँव। यह रुद्रनगर से पाँच मील की दूरी पर स्थित था और स्टेशन से वहाँ तक कच्ची सड़क जाती थी। रुद्रनगर स्टेशन पर सबेरे से दोपहर तक आने वाली तीन गाड़ियों की सवारियाँ लेकर बारह बजे दिन को एक मोटर नन्दगाँव होकर शंकरगढ़ तक जाती थी।

पूरनसिंह ने स्नान किया। भोजन कर लेने के बाद वह मोटर के आने की प्रतीक्षा करने लगा।

तेरह वर्षों के प्रवास के समय में भी पूरनसिंह नन्दगाँव से सम्बन्धित दो चीजों को नहीं भूल सका था। इनमें से एक थी, आमी नदी के ऊँचे कगार पर बसे हुए नन्दगाँव की शोभा; उसके चारों ओर फैले हुए मैदान की हरियाली, जिसमें वह अपने ढोर चराया करता था — आमी नदी के उस पार बीसों किस्म के फलों और फूलों वाले छोटे-बड़े पेड़ों का वन, जहाँ पर वह अपने बचपन के खेल खेला करता था, वनके पक्षियों का कलरव जहाँ उसकी आत्मा में आजादी का उन्माद भर देता था। और दूसरी थी उसकी बड़ी बहन बसन्ती, जो चारों ओर की घृणा, उपेक्षा, और अपमान के बीच में भी उसकी आत्मा को अपने पवित्र प्यार का बल देती रहती थी।

जब पूरन केवल पाँच वर्ष का था, तभी उसकी माँ मर गई। तब से बसन्ती ही उसके लिए सब-कुछ थी। माँ भी और बहिन भी। रात को जब वह थककर सो जाया करता था, तो सोते में ही वह उसे खाना खिलाती थी, उसके सिर में तेल डालती थी, अपने स्नेहमय हाथों से उसके पैर दबाती थी, उसे अपने पास सुलाती थी, मेले और त्योहारों के अवसर पर जो थोड़े-से पैसे उसे मिलते थे, उनमें से भी वह अपनी तरफ से कुछ पैसे पूरन को दे देती थी। पूरन रूठता भी था, तो उसी

से, और अपने दिल की गहराइयों से स्नेह भी करता था, तो उसी से। वह अपने मन की बातें भी उसी से कहता था। इस तरह बचपन की दो स्मृतियाँ उसकी नस-नस में समाई हुई थीं।

जिस दिन पूरन अपने घर से भागा था, उससे सात-आठ दिन पहले उसकी बसन्ती दीदी का गौना था। उसे रोता हुआ छोड़कर वह अपनी ससुराल चली गई। उससे अलग हो जाने पर दुःखी पूरन ने दो दिन तक कुछ भी नहीं खाया। उसकी हालत देखकर तीसरे दिन उसके पिता ने समझाया, सावन में तीज लेकर उसे बसन्ती के यहाँ भेजने का आश्वासन दिया। किन्तु सावन की तीज पूरे चार महीने बाद पड़ने वाली थी, इतने लम्बे अरसे का इन्तजार पूरन सहन नहीं कर सकता था। उन्हीं दिनों घर का काम न करने के कारण एक दिन उसके पिता ने उसे बहुत मारा। उसके बाद घर के लिए उसके मन का रहा-सहा आकर्षण भी जाता रहा। एक सहारा उसकी बसन्ती दीदी थी। वह भी उसे छोड़कर चली गई थी।

पूरन की माँ के मर जाने के बाद उसके पिता ने अपना दूसरा ब्याह कर लिया था। पूरन की सौतेली माँ उसे कम न सताती थी। जब तक बसन्ती घर में थी, तब तक तो पूरन अपने माता-पिता-द्वारा दी गई यातनाओं को उसका स्नेह पाकर भुला देता था, किन्तु जब वह भी न रही, तो उसे सौतेली माँ का भी व्यवहार असह्य हो गया। वह उसे अक्सर गालियाँ सुनाती, उसको पेट भर भोजन देने में भी आना-कानी करती, पति से उसकी झूठी शिकायतें करती, और आए दिन पूरन का पिता उसे खूब पीटता। माता-पिता की इस निष्ठुरता का कारण कुछ हद तक पूरन का स्वभाव भी था। आस-पास के दो-तीन गाँवो में उस-जैसा उधमी और शैतान बालक कोई न था।

घर पर तो पूरन स्वयं पिटता था, लेकिन बाहर वह दूसरों को पीटता था। जिस लड़के से उसकी अन-बन होती, उसकी शामत आ जाती थी। बहुत से लोग उससे परेशान थे। बरसात में भरी आमी नदी को तैरकर वह उस पार के खेतों से जुन्हार के भुट्टे तोड़ लाता

था। उसके साथियों मे से, कोई कंडे की आग तैयार करता, कोई दौड़-कर अपने घर से नमक-मिर्च ले आता। भुट्टे भूने जाते और किसी पेड़ के नीचे बैठकर लड़कों की दावत होती थी। अपने साथियों के साथ पूरन ऐसे मौके से ककड़ियों के खेतों में घुसता था, कि रखवाली करने वाले लोग चकित हो जाते थे।

जाड़े के दिनों में चने और मटर के डाँठ उखाड़कर वह आमी के उस पार वन में चला जाता था, और वहाँ पर अपने हम-उमर दोस्तों के साथ उन्हें भूनकर खाता था। उसकी वजह से नन्दगाँव और रेवतीपुर के सीवानों में पचासों ऊख रोज टूटती थीं। शैतानी करने में वह अन्य लोगों का अगुआ हो गया था; उसकी संगत में लड़कों के लिए इतना आकर्षण था, कि रेवतीपुर के जमींदारों के लड़के भी गाँव के मदरसे से भागकर उससे आमी की चरागाह में आ मिलते थे, और दिन भर तरह-तरह की खुराफात करते रहते थे। इस तरह पूरन स्वयं तो बिगड़ा ही हुआ था, वह दूसरे शरीफ घरों के लड़कों की भी बिगड़ने में सहायता करता था। इसी कारण घर के अलावा नन्दगाँव और रेवतीपुर के लोग भी उससे खुश नहीं थे। बसन्ती के बिदा होने के बाद एक घटना और घटी। पूरन बहुधा अपने ढोरों को किसी साथी को सौंपकर रेवतीपुर की अमराई में चला जाता था। वहीं पर मदरसा छोड़कर भागे हुए जमींदारों के लड़के उसका इन्तजार करते रहते थे। कण्ठा-सुर्र कबड्डी, गुल्ली-डंडा तथा और भी कितने ही तरह के खेलों में पूरन के बिना किसी को कुछ मजा ही न आता था।

रेवतीपुर के बड़ी थोक के जमींदार बद्रीठाकुर के इकलौते बेटे रामानन्द से उसकी बड़ी गहरी मित्रता थी। जिस दिन पूरन अपने पिता के डर से रेवतीपुर न जा पाता, उस दिन रामानन्द स्वयं लड़कों की टोली लेकर, आमी नदी के किनारे पहुँच जाता था; जहाँ पर पूरन अपने ढोर चराया करता था। फिर वहीं पर खेल होते, आमी के गहरे पानी में स्नान, ऊँची कगार पर से बड़ी और छोटी गिरह तथा

कलाबाजियाँ मारने में लोग अपने हुनर दिखलाते। तैराक लड़के गहरे पानी में चोर और सिपाहियों का खेल खेलते, और घंटो बाद थककर चूर हो जाने पर वे पानी के बाहर निकलते थे।

कभी-कभी उस पार वाले जामुन के वनों में खरगोश का शिकार होता। किसी-किसी दिन तो रामानन्द पूरन के साथ आमी के रोहू-कुण्ड के किनारे बैठा हुआ शाम तक बंशी लेकर मछलियाँ मारा करता था। दोपहर के समय शिकार में मिली हुई मछलियों को भूनकर दोनों साथ ही खाते थे। रोहू-कुंड में रोहू-नामक मछलियाँ इतनी अधिकता से मिलती थीं कि उसका नाम ही रोहू-कुण्ड पड़ गया था।

एक दिन रेवतीपुर की अमराई में पूरन कई लड़कों के साथ गुल्ली-डण्डा खेल रहा था। पूरन एक तरफ था और रामानन्द दूसरी तरफ। पूरन की बारी खेलने की थी और रामानन्द का पक्ष खिला रहा था। पूरन ने गुल्ली को "डाँड़" पर खींचकर मारा और वह "भन्न" आवाज करती हुई हवा में तरंगे मारने लगी। रामानन्द ने झुककर गुल्ली को लोकना चाहा, लेकिन हा! पूरन का दुर्भाग्य!! रामानन्द उसे लोक न सका। गुल्ली उसके ललाट पर लगी। घाव इतना गहरा लगा कि देखते-देखते रामानन्द का शरीर का रक्त से भीग गया, और वह गश खाकर जमीन पर गिर पड़ा। बेहोश होकर उसे गिरते देखकर लड़कों ने हल्ला मचाया—"पूरन ने रामानन्द का सिर फोड़ दिया।"

उस समय पूरन को अपनी अवस्था का भली भाँति ज्ञान हो गया। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि अब उसकी खैर नहीं। बद्री ठाकुर का रोबीला चेहरा और विशाल शरीर उसकी आँखों के सामने किसी खूँखवार शेर की भाँति आ-आकर उसे डराने लगा। एक बार उसने अपने दिमाग पर जोर देकर सोचा कि क्या उसका कोई ऐसा भी सम्बन्धी या हितचिन्तक है, जो उसे इस निर्दोष अपराध से, बचाने का प्रयत्न करेगा? कोई भी ऐसा व्यक्ति उसके ध्यान में न आया। उसका बाप जिन्दा अवश्य था। लेकिन पूरन को उससे कोई भी उम्मीद न थी। खेल में भाग लेने के कारण वह तो स्वयं पूरन को कसाई की तरह

पीटता था। तो फिर बद्री ठाकुर से उसकी रक्षा वह क्यों करता ? अधिक सोचने का समय नहीं था। एक-एक क्षण रामानन्द की चोट की बात फैलती ही जा रही थी, रामानन्द के पिता घटनास्थल पर आने ही वाले थे।

निकट के पाँच-सात गाँवों में भी पूरन को शरण मिलनी असम्भव थी। एक बार कातर दृष्टि से उसने जमीन पर खून से लथपथ बेहोश पड़े हुए रामानन्द को देखा, एक दृढ़ संकल्प से उसके रोंगटे खड़े हो गए। वही मैली धोती, गबरून की कमीज और चारखाने का रूमाल लिए हुए वह भाग निकला। रुद्रनगर की ओर जानेवाली सड़क पर जब वह काफी दूर निकल आया तब उसने दौड़ना बन्द कर दिया। बिना किसी निर्दिष्ट लक्ष्य के सड़क पर चलता हुआ वह शाम तक रुद्र-नगर के स्टेशन पर पहुँच गया।

करीब साढ़े ग्यारह बजे नन्दगाँव की ओर जाने वाली मोटर स्टेशन पर आई। आज के इस जमादार पूरनसिंह का सामान कुलियों ने मोटर की छत पर रखा। अपर क्लास में केवल दो आदमी बैठे हुए थे, उनमें से एक पूरनसिंह था। बारह बजे मोटर नन्दगाँव की ओर चल पड़ी। पूरनसिंह का हृदय स्नेह, उत्सुकता और पुरानी स्मृतियों से आन्दोलित हो उठा। पथरीले ऊँचे कगार पर बसा हुआ नन्दगाँव, बढ़ी हुई और बल खाकर बहने वाली आमी नदी के हरे-भरे किनारे, दूर क्षितिज तक फैले हुए उस पार वाले जामुन के जंगल, उसकी बसन्ती दीदी, बचपन के साथी, बाप और सौतेली माँ, एक-एक करके अपनी पूरी स्पष्टता के साथ उसकी आँखों में तैरने लगे। आमी की तलहटी में आजाद हवाओं के झोंको पर उड़ने वाली करवन, खरहद, बेला और जंगली फूलों की सुगन्ध को वह महसूस करने लगा।

———

दूसरा अध्याय

नन्दगाँव काश्तकारों की बस्ती थी। इस गाँव में कई जातियों के लोग रहते थे। कुर्मियों, चमारों, जुलाहों और बनियों की संख्या अधिक थी। रुद्रनगर से आने वाली सड़क आमी के तट पर पहुँचकर पश्चिम दिशा में नदी के किनारे-किनारे शंकरगढ़ की ओर चली जाती थी। पूरब की ओर आमी-नदी के तट पर करीब तीन फर्लांङ्ग की दूरी में नन्द गाँव फैलकर बसा हुआ था।

जहाँ से नन्दगाँव की बस्ती शुरू होती और शंकरगढ़ जाने वाली सड़क पश्चिम की ओर मुड़ती थी, वहाँ पर आमी का कगार बहुत ऊँचा था। नीचे पानी में उतरने के लिए उस जगह विशाल पत्थरों का जम-घट-सा लगा हुआ था। देखने से सहज अनुमान लग जाता था कि किसी जमाने में वहाँ पर कोई विशाल मन्दिर या राजप्रासाद अवश्य रहा होगा। पूरब की ओर इस घाट से लगी हुई बड़े-बड़े पत्थरों की चार दीवारें थीं। ये दीवारें बारहदरीनुमा बनी हुई थीं और चारों ओर से बन्द थीं। केवल पूरब की ओर एक फाटक था। आसपास के गाँवों में ऐसी किंवदन्तियाँ सुनी जाती थीं कि वहाँ पर पुराने जमाने में किसी राजा के रनिवास का जनाना घाट था। पुराने जमाने में वे दीवारें जो कुछ भी रही हों, किन्तु नन्दगाँव अपनी न जाने कितनी पीढ़ियों से उन्हें जनानाघाट ही कहता चला आ रहा था।

नन्दगाँव चार टोलों में बँटा था। इनमें से पहला गुलजार-टोला था। इसकी स्थिति सड़क के पूर्वी किनारे की ओर बड़े-बड़े पत्थरों वाले आमी के पक्के घाट के समीप थी। इस टोले के मकान अधिक-तर खपरैल के बने हुए थे, बनियों की संख्या इसमें अधिक थी। इसमें मिठाई, पान और एक पंसारी की छोटी-छोटी चार-पाँच दूकानें थीं। दूसरा, रेशम-टोला था। रेशम-टोला सम्भवतः इसलिए नाम

पड़ा कि बहुत पुराने जमाने से इस टोले में रंगीन पाट के कपड़ों की इतनी सुन्दर बुनाई होती थी कि ग्रामीण-जनता उन कपड़ों को रेशम नाम से ही पुकारती थी। और इस तरह रेशम का वस्त्र तैयार करने वाला वह टोला रेशम-टोला कहलाने लगा था। उस समय भी रेशम-टोले में ग्यारह करघे चलते थे और वहाँ से तैयार की हुई रंगीन चादरें, नफीस बार्डर की साड़ियाँ, सस्ते और टिकाऊ चारखाने वाले कपड़े, सिल्कनुमा धागों के लहरदार परदे, और सुन्दर से सुन्दर रंग और और डिजाइनों के मेजपोश भारत के बड़े-बड़े नगरों में बिकने को जाते थे। तीसरा था कुर्मियाना टोला, जिसमें कुर्मियों की संख्या अधिक थी। इस टोले के लोगों का पेशा केवल खेती करना था। चौथा टोला चमरौटी कहलाता था। यहाँ चमारों की बस्ती थी। इस टोले के लोग बहुत कम खेती करते थे और उनमें से अधिकांश रेवती-पुर के जमींदारों के यहाँ हलवाहे थे। मजदूरी करना इन लोगों का मुख्य पेशा था और गौण रूप से वे लोग थोड़ी-बहुत खेती भी करते थे। पूरन का घर कुर्मियाना टोले में था।

नन्दगाँव के पश्चिम की ओर सड़क के दूसरे किनारे पर रेवतीपुर बसा हुआ था। वहाँ ठाकुर लोग अधिक रहते थे। वहाँ के ही लोग नन्दगाँव तथा आस-पास के कई गाँवों के जमींदार थे। आमी नदी नन्दगाँव और रेवतीपुर की सीमाओं को अपने दामन में लपेटे हुए बहती थी। पश्चिम की ओर नदी के किनारे निचली और ऊबड़-खाबड़ भूमि में मीलों तक फैला हुआ चरागाह था और नदी के उस पार पश्चिम की ओर छोटे-बड़े वृक्षों का फलों और फूलों वाला एक छोटा-सा वन था तथा पूरब की ओर बहुत दूर तक नदी के किनारे-किनारे फैला हुआ जामुन का जंगल था।

गुल्जार-टोला वैसे तो हमेशा गुलजार रहता था, किन्तु जब रुद्र-नगर या शंकरगढ़ की ओर से मोटर आती थी, तो वहाँ की रौनक और भी बढ़ जाती थी। आधे घंटे से ज्यादा समय तक यहाँ पर मोटर रुकती थी और उस समय सभी यात्री मोटर छोड़ देते थे। थोड़ी देर

तक वहाँ की मिठाई और पान की दूकानों पर एक खासा अजनबीपन पैदा हो जाता था। जब मोटर चली जाती थी, तब फिर नन्दगाँव की जानी-पहचानी हलचल और चुहल शुरू हो जाती थी। नन्दगाँव का कोई परदेशी यदि लौटकर अपने घर आता, तो उसके आने की खबर थोड़ी ही देर में सब टोलों तक पहुँच जाती थी। लेकिन जब पूरन मोटर से उतरा, तो उसे गुलजार-टोले का एक व्यक्ति भी न पहचान सका। मोटर चली गई, तब भी वह वहाँ के लोगों के लिए एक अजनबी था। पूरन ने देखा, गुलजार-टोले में भी कोई परिवर्तन नहीं था। बेचू हलवाई अपनी भट्ठी के सामने पसीने से तर चीनी गला रहा था, कत्थे और चूने के सैकड़ों दागों से भरे हुए कपड़ों वाला माधव तमोली आज भी अपनी टंकी में बैठा हुआ पान लगा रहा था, घमंडी शाह की दूकान में आज भी वही हंडियाँ रक्खी हुई थीं, जिन्हें उसने तेरह वर्ष पहले देखा था।

नन्दगाँव के मोटर के अड्डे पर सामान ढोनेवाले मजदूर भी खड़े रहते थे। दो मजदूरों को बुलाकर पूरन ने उनसे अपना सामान ले चलने के लिए कहा। उन्होंने जब सामान उठा लिया, तो पूरन के मन में आया कि वह गुलजार-टोले के लोगों को अपना परिचय देता चले, किन्तु उसने वैसा नहीं किया। आगे-आगे वह कुर्मियाना टोले की ओर बढ़ा और उसके पीछे दोनों मजदूर उसका सामान लेकर चले। गुलजार-टोले के सभी लोग उसको उत्सुकता और कौतूहल से देख रहे थे। किसी गरूर की वजह से नहीं, बल्कि एक हल्के-से विनोद-मात्र के लिए ही वह किसी से कुछ न बोला, गोकि उन सभी व्यक्तियों को वह आज भी अच्छी तरह पहचान रहा था।

बेचू हलवाई और माधव तमोली की दूकानों के पास से होता हुआ जब पूरन घमंडी साह के दरवाजे के सामने पहुँचा, तो घर के भीतर से दौड़ती हुई एक बिल्ली उसके सामने से रास्ता काटकर निकल गई। दरवाजे पर तीन-चार स्त्रियाँ खड़ी बातें कर रही थीं। जब पूरन आगे निकल गया, तो उन स्त्रियों में से एक बोली—"बड़ा भारी

अशुभ हुआ। बिल्ली उस परदेशी का रास्ता काट गई। ईश्वर भला करे उस बेचारे का!"

दूसरी बोली—"कोई बड़ा आदमी जान पड़ता है। शायद कोई अफसर हो। लेकिन असगुन तो सचमुच बहुत बुरा हुआ।"

तीसरी बोली—"अरे, कुछ नहीं। यह असगुन और सगुन हम गँवारों के लिए है। पढ़े-लिखे लोग इन सब बातों का भेद-भाव नहीं रखते।"

अपने घर पहुँचकर पूरन ने देखा कि वहाँ न तो उसके पिता थे, न सौतेली माँ थी, और न उसकी बसन्ती दीदी ही। दरवाजे का एक किवाड़ टूट गया था। पानी की बौछारें पड़ने के कारण दालान में भी घास उग आई थी। ऊपर खपड़ा भी उजड़ गया था और दरवाजे के किनाने टूटी हुई शहतीरों और मिट्टी का ढेर लगा हुआ था। यद्यपि वह घर पूरन के दुःख का ही साथी रहा, किन्तु आज के इस सुखी पूरनसिंह की आँखों में उसकी शोचनीय दशा देखकर आँसू आ गए। टूटे हुए दरवाजे को एक तरफ हटाकर पूरन भीतर गया। वहाँ की हालत बाहर से भी गई-बीती थी। आँगन में घास ही नहीं, बल्कि पीपल और बरगद के छोटे-बड़े पौधे उग आए थे। दालान के एक किनारे फूटा हुआ चूल्हा मौजूद था और उसके आस-पास चौके में भी घास और कुश-मुत्तों के छाते उग आए थे। उसी जगह पूरन को उसकी बसन्ती दीदी गरम-गरम रोटियाँ सेंककर खिलाती थी और उसी जगह उसकी सौतेली माँ दुबारा साग या दाल माँगने पर उसे झिड़कियाँ भी देती थी। घर के चारों ओर निगाह दौड़ाकर पूरन ने देखा। वहाँ की दयनीय अवस्था देख, उसका हृदय करुणा से भर आया। जिस घर में अपने पिता के थप्पड़ खाकर भी वह अपने बचाव के लिए जोर से चिल्लाता था, लेकिन उसकी आँखों में आँसू नहीं आते थे, उसी घर में खड़े पूरन की आँखों से 'टप-टप' आँसू गिरने लगे। किन्तु वह जोर से रो न सका।

उस दिन शाम तक पूरन के आने की खबर सारे नन्दगाँव में फैल गई। और तो और, पूरन के चाचा भी उसे देखकर बिलकुल न पहचान सके। लेकिन जब उन्हें पता चला कि वह अफसर उन्हीं का भतीजा है, तो उसके बाद कुछ ही क्षणों में पूरन के आने की बात शतमुखी होकर सारे गाँव में हवा के झोंके की तरह फैलने लगी। हर टोले में उसके विषय में बातें होने लगीं, उसे देखने के लिए सभी की उत्सुकता जाग पड़ी।

नन्दगाँव में पूरन का आना पूर्ण सत्य होते हुए भी कोई नाटकीय प्रसंग-सा लग रहा था। जिसे लोगों ने भुला दिया था, वह स्वयं वापस आकर उन लोगों की भूल को साबित कर रहा था। यदि वह फटे-हाल आता, तो शायद कोई आश्चर्य न करता। क्योंकि संकुचित मान्यताओं के सामने एक चुनौती बनकर आया था, गाँव की रेंगती हुई जिन्दगी के सामने वह प्रगति का एक मिसाल बनकर आया था, उसका तेरह वर्ष बाद आना कम आश्चर्यजनक था। महान् आश्चर्यजनक था उसका उस अच्छी हालत में आना।

पूरन के चाचा तथा अन्य बिरादरी के लोगों ने उससे अपने यहाँ ठहरने का अनुरोध किया, लेकिन एक खाट मँगाकर रात को वह अपने दरवाजे के सामने मैदान में सोया। अपना सारा सामान अलबत्ता उसने अपने चाचा के यहाँ रखवा दिया।

दूसरे दिन सबेरे वह आमी के तट पर गया। वहीं पर उसने प्रातः-क्रिया, दातून, स्नान-आदि किया। लौटते समय वह गुलजार-टोला और रेशम-टोला के सभी बड़ों-छोटों से मिला। बेचू दादा ने उसे गरम-गरम जलेबियों से जलपान कराया, माधव काका उसके लिए चार बीड़ा पान लगा लाए, घमंडी साह ने अपनी दूकान से लाकर उसे इलाचियाँ और केशर दिया। वहाँ के लड़के, जवान, बूढ़े सभी, उसे घेरे हुए थे। अपने जवान साथियों को पूरन ने अपनी नफीस सिगरेटकेस से निकालकर सिगरेट दिया। अपने चमकते हुए लाइटर से उसने सभी के सिगरेट जलाए। वह सिल्क का एक कुर्ता और

हलके नीले रंग का एक तहमद पहने हुए था, जो उसके लम्बे और चुस्त शरीर पर खूब खिल रहे थे। उसका गेहुँआ रंग, स्वास्थ्य की आभा से कुन्दन हो गया था। उसके नम्र स्वभाव से गाँव के बड़े-बूढ़े गद्‌गद थे और उसकी आँखों का शील उसके बचपन के साथियों के हृदय में उसके प्रति स्नेह पैदा कर रहा था।

रेशम-टोले में भी वह सबसे मिला। रजब चाचा तो उसके गले लिपट गए। गाँव के वह नम्बर एक के मसखरे थे और जिस समय पूरन रेशम-टोले में पहुँचा, उस समय वे अपने कन्धे पर सूत का गट्ठर और सरकंडों के छड़ लादे हुए ताना-पाई करने जा रहे थे। पूरन को देखकर उन्होंने अपनी सफेद और लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए सारे सामान को एक किनाने रख दिया और उसके साथ घूमते हुए टोले भर के लोगों को हँसाते रहे।

जब पूरन अपने बचपन के साथी अफजल के यहाँ पहुँचा, तो वह अपने करघे पर तहमदों का थान चढ़ाए हुए था। नीले रंग के ताने पर दोमुँही टरकी में लाल और सफेद पाट के तागों की नरियाँ लगी हुई थीं। बड़ी ही तन्मयता और तेजी से अफजल सटर चला रहा था और नीले रंग के ताने पर अन्य कई रंगों का बाक चढ़ता चला जा रहा था। बुने हुए उस नीले रंग के कपड़े पर बारीक लाल धारियों के बीच में सफेद बार्डर बहुत ही खूबसूरत लग रहा था। पूरन स्वयं जैसा तहमद पहने हुए था, बिलकुल वैसा ही, अफजल को बुनते हुए देखकर वह करघे के पास जाकर अपने और उस करघे पर चढ़े हुए कपड़े की मिलान करने लगा। अपने कपड़े के सम्बन्ध में पूरन की जिज्ञासा देखकर अफजल बोला—"पूरन भाई, क्या बड़े गौर से देख रहे हो? तुम्हारा तहमद भी नन्दगाँव का ही है। शायद मेरे ही करघे का बुना हुआ हो। हम लोगों से ही खरीदकर कानपुर और कलकत्ता के बड़े-बड़े व्यापारी इन कपड़ों को वहाँ ले जाते हैं।"

पूरन ने अपने दो तहमद कानपुर की एक बड़ी दूकान से आठ रूपये, बारह आने और कुछ पाई कीमत देकर खरीदा था, जिसकी

उसे छपी हुई रसीद भी मिली थी । अफजाल से पूछने पर उसे पता चला कि थोक व्यापार करनेवाले उसी एक जोड़े तहमद का नन्दगाँव के आस-पास की बाजारों में छः रूपये से अधिक नहीं देते ।

रेशम-टोले के लोगों से मिलते-जुलते दोपहर हो गई । घर की सफाई करने के लिए पूरन ने दो मजदूर लगा दिया था । जब वह दोपहर के सयय अपने घर पर पहुँचा, तो सामने की दालान साफ हो चुकी थी । दोनों मजदूर भीतरी आँगन में पड़ा हुआ कूड़ा-करकट फेंक रहे थे । दो दिनों में पूरन अपने घर को रहने के लायक बना लेना चाहता था । कुर्मियाना-टोला उसकी बिरादरी वालों का ही था, इसलिए इस टोले में भी उसे घर-घर में जाकर आशीर्वाद लेना था । दोपहर के बाद अपने टोले के लोगों से भेंट-मुलाकात करने का उसने निश्चय किया और स्वयं एक कुदाल लेकर उस समय काम करते हुए मजदूरों को आँगन की मिट्टी हटाने में सहायता देने लगा ।

क्वार का महीना तो था ही, धूप तेज हो गई थी । नन्दगाँव के किसान अपने हल-बैल के साथ पसीने से तर खेतों से लौट रहे थे । कुर्मियाना टोले की बस्ती का पहला घर पूरन का ही था, इसलिए जो भी सीवान में से गाँव की ओर आता, वह उसके घर से होकर अवश्य गुजरता था । पूरन को मजदूरों के साथ काम करते हुए देखकर नन्द-गाँव का हर एक किसान पहले तो चकित हो जाता था, किन्तु वह उसके प्रति स्नेह और आदर का भाव भी अपने साथ लेकर जाता था । पूरन की बड़ी-बड़ी सन्दूकों, चमड़े के सूटकेसों, होल्डाल, हाथ की घड़ी, अँगूठी, बढ़िया जूते और कीमती कपड़ों की चर्चा गाँव भर में फैली हुई थी । अब पूरन का शरीर भी नन्दगाँव के एक मामूली किसान के लड़के-जैसा नहीं था । देखने से ही वह कोई धनी आदमी-सा लगता था । उसके हँसमुख व्यवहार और विनम्र स्वभाव की तारीफ जवान, बूढ़े सभी कर रहे थे । लेकिन इतना सब होते हुए भी सभी गाँव वाले उसे कोई बहुत बड़ा अफसर ही समझते थे । उसे अपने ही बीच का एक आदमी समझने में उन्हें झिझक होती थी । लेकिन आज उसे मजदुरों

के साथ मिट्टी फेंकते हुए देखकर जो लोग गए, उनके दिल से पूरन के प्रति अजनबीपन का भाव दूर हो गया।

दोपहर को पूरन ने अपनेच चा के यहाँ भोजन किया। शाम के लिए उसकी चाची ने नदी से मछलियाँ मँगवाई थीं। उसके छोटे चचेरे भाई उसके लिए बढ़िया किस्म की मछलियाँ लाए थे, जिन्हें उसकी चाची ने बड़ी ही रुचि के साथ तैयार किया था। लेकिन पूरन जब मंगल चौधरी के यहाँ मिलने गया, तो उन्होंने उसे अपने यहाँ शाम को भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। उनकी नई बहू ने उसी दिन चौके में प्रवेश किया था। उसी के उपलक्ष्य में वे बिरादरी भर को भोज दे रहे थे।

नन्दगाँव में जब कोई नई बहू आती थी, तो पहले चार-छः महीने उससे ससुराल में कोई काम न लिया जाता था। जिस घर में जितने अधिक दिनों तक उस नवेली बहू से काम न लिया जाता, उतना ही अधिक वह घर प्रतिष्ठित समझा जाता था। जिस दिन से वह नवोढ़ा अपने ससुराल के गृहकार्यों में हाथ बटाना प्रारम्भ करती थी, उस दिन उसका प्रथम कार्य रसोई बनाना होता था। वह दिन वास्तव में उस युवती की पाक-कला की परीक्षा का दिन होता था। भोजन करते समय सभी लोग, और खास तौर पर प्रौढ़ा और वृद्धा स्त्रियाँ बड़ी ही महीन और आलोचनात्मक दृष्टि से रसोई की हर चीज की निगरानी करती थीं। उस दिन प्रायः उस नववधू के गुणवती या फूहड़ होने की घोषणा गाँव भर में हो जाती थी। वह दिन वधू के परिवार का एक महत्त्वपूर्ण त्योहार-सा होता था। उसके ससुर, सास, जेठ, जेठानी, तथा गाँव के लोग भी उसे कोई न कोई वस्तु उपहार में अवश्य भेंट करते थे। इस अवसर पर नई दुलहन को किसने कौन-सा जेवर दिया, इस बात की चर्चा कई दिनों तक गाँव में होती रहती थी।

शाम को मंगल चौधरी की बेटी पार्वती पूरन को बुलाने आई। अगर चौधरी के घर वधू का त्योहार न होता, तो पूरन की चाची उसे हर्गिज दूसरे के घर भोजन करने के लिए न जाने देती। एक शुभ

अवसर की वजह से उसने उसे जाने की अनुमति दे दी। लेकिन जाने से पहले थोड़ी-सी तली हुई मछलियाँ पूरन को खानी ही पड़ीं।

मंगल चौधरी ने अपनी नवेली बहू का गुणगान गा-गाकर पूरन को भोजन कराया। उसके बाद काफी देर तक चौपाल में बातें होती रहीं। जाते समय पूरन ने पार्वती को बुलाया और उससे पूछा—"पार्वती, बोलो, तुम्हारी भाभी के पास कौन-सा जेवर नहीं है?"

पार्वती ने गर्व से कहा—"मेरी भाभी के पास सभी जेवर हैं।"

"हाँ, लगा तो मुझे भी कि तुम्हारी भाभी के पास सभी जेवर हैं लेकिन मैं तो कहूँगा कि वे सब के सब भद्दे हैं। झाँझ तो इतनी मोटी है कि उसके कारण पैरों में काले दाग पड़ गए हैं।"

"तो पूरन भइया, मालूम होता है कि चौके में तुम भाभी के पैरों के दाग ही गिन रहे थे।"

"क्या करता! मुख को तो उसने अपने घुटने तक के घूँघट में छिपा रक्खा था!"

मंगल चौधरी उन दोनों की बातें सुनकर मन ही मन मुस्करा रहे थे। अपने घर की ओर जाते हुए पूरन ने पार्वती से कहा—"अच्छा, सबेरे मेरे घर आना। मैं तुम्हारी भाभी के लिए ऐसा जेवर दूँगा, जो उस मोटी झाँझ से कहीं अधिक खिले भी और पैरों में दाग भी न डाले।"

दूसरे दिन सबेरे पूरन ने नग जड़ा हुआ नक्काशी से युक्त एक जोड़ तोड़ानुमा पायजेब मंगल चौधरी के घर भिजवा दिया। अन्य कई जेवरों के साथ अपनी बसन्ती दीदी के लिए वह इस पायजेब को भी ले आया था। पार्वती ने पूरन के उपहार को गाँव भर की लड़कियों को दिखाया। उसके हलकेपन की, कलात्मक नक्काशी और उस पर जड़े हुए नीले, लाल, हरे नगों की सभी ने तारीफ की। पार्वती की सहेलियों और गाँव की कई नई बहुओं ने तो उसको इतना पसन्द किया कि वे पूरन को दाम देकर वैसा ही मँगाने की तैयारियाँ तक करने लगीं।

तीन-चार दिन में पूरन ने अपने घर को बिलकुल रहने के लायक बना लिया। दरवाजे के टूटे हुए पायों में ईंटों के जोड़ लग गए। फटे हुए खपड़ों की जगह नए खपड़े दिखाई पड़ने लगे। दीवारों पर सफेद पुतनी मिट्टी से पुताई हो गई। आँगन और दालान की फर्श को मिट्टी से पाटकर समतल बना दिया गया। अब पूरन ने अपनी एक सन्दूक, बिस्तर और कुछ जरूरत की अन्य चीजों को भी अपने घर में ला कर रक्खा।

दोपहर को या रात में जब पूरन अपनी दालान में खाट बिछा-कर सोता, तो उसके हृदय में अनगिनती भावनाएँ और विचार उठते थे। बचपन की असंख्यों स्मृतियाँ उसकी चेतना के परदे पर चित्रों की भाँति उभरने लगती थीं। उनमें से कड़वी ही अधिक थीं और मधुर कम। मीठी यादगारें अधिकतर उसकी बसन्ती दीदी से ही सम्बन्धित थीं। बचपन से लेकर आज तक बसन्ती का प्यार उसकी भावनाओं में स्पन्दन भरता रहता था। सूखे जीवन के मार्ग में, जहाँ वह कितने बार ठोकरें खाता था, गिर पड़ता था और फिर उठता था, वहाँ अपनी स्नेहमयी दीदी की याद से उसे गति मिलती रहती थी। नन्द-गाँव की उस किशोरी ने अपने नटखट भाई को इतना स्नेह दिया था कि वह उसकी जीवन-यात्रा का अक्षय संबल हो गया। पूरन को जब-जब परिस्थितियाँ ठोकर मारती थीं, असफलताएँ निराश बनाती थीं, चोट खाकर आगे बढ़ा हुआ पैर जब पीछे की ओर मुड़ कर लड़खडाने लगता था, तो वह उस पवित्र प्यार के दामन में पुनः लौट जाने के सुख की कल्पना में लीन हो जाया करता था। और, कुछ काल के बाद अब उसके जीवन की स्वाभाविक आग लपट फेंकने लगती, तो फिर वह उसके आलोक में आगे बढ़ने लगता था। इस प्रकार बसन्ती दीदी उसके जीवन की एक शक्ति का केन्द्र थी।

तीन वर्ष पहले नन्दगाँव में बहुत ही जबर्दस्त महामारी का प्रकोप हुआ था। स्त्री-पुरुष सब मिलाकर सत्तर लोगों की मृत्यु हुई थी। दो-तीन घरों में तो एक आदमी भी जीता न बचा। उनमें से पूरन

का भी एक घर ऐसा ही था। सबसे पहले उसके दो छोटे-छोटे भाइयों की मृत्यु हुई। उसके बाद उसका बाप बीमार पड़ा और जिस समय वह पीड़ा के कारण मूर्च्छित अवस्था में था, उसी समय उसकी सौतेली माँ भी बीमार पड़ गई। बसन्ती उस समय अपनी ससुराल में थी। जिस समय पूरन के माँ-बाप की मृत्यु हुई, उस समय उनकी लाश को फेंकने वाला कोई आदमी तक गाँव में न था। जो लोग बीमारी से बच पाए थे, उन लोगो ने गाँव ही छोड़ दिया था। यदि कभी हिम्मत बाँधकर वे लोग गाँव में आ भी जाते थे, तो मुर्दों को गाड़ने या फूँकने भर को उन लोगों में धैर्य ही न रहता था। प्रायः बैलगाड़ियों पर लाद करके लाशों को आमी नदी में फेंक दिया जाता था। उस बीमारी के बाद से आज तक नन्दगाँव पर भयंकर छाया-सी पड़ गई थी। कितने जवान चल बसे, कितनी सुहागिन स्त्रियाँ विधवा हो गईं, कितने इकलौते बेटे अपने माँ-बाप को बिलखते हुए छोड़कर न जाने किस लोक में चले गए। कितने घर ऐसे उजड़े कि उनका बसना असम्भव हो गया। गाँव के लोग पूरन के घर का भी बसना असम्भव ही समझते थे। लेकिन आज उसके आ जाने से सभी के मन में आशा हो गई।

पूरे दो महीने की छुट्टी लेकर पूरन अपने गाँव आया था। घर आने के पहले वह अपने पूरे परिवार की स्मृति अपने अन्तस्तल में सँजोए हुए था। अपने-पराए, छोटे-बड़े, सभी के सम्बन्ध में उसकी भावनाएँ आर्द्र हो गई थीं। किन्तु आज तो उसके परिवार का एक व्यक्ति भी न बचा था। अवशेष थी केवल एक उसकी बसन्ती दीदी, जो उसके जीवन की परिधि की केन्द्र-बिन्दु थी। वह अपनी ससुराल में थी।

बसन्ती की ससुराल नन्दगाँव से चार कोस की दूरी पर स्थित मरजादपुर में थी। गाँव के लोगों से पूरन को पता चला कि उसकी सौतेली माँ और बाप ने बसन्ती को गत तेरह वर्षों में केवल दो बार नन्दगाँव बुलाया था। शंकरगढ़ के मेले में गई हुई अपनी सखियों से उसने कई बार भेंट की थी, गाँव के भाइयों-द्वारा अपने पिता

के पास उसने संदेशे भी भिजवाये थे : "मेरे बापू, मुझे केवल पाँच दिन के लिए अगले सावन में बुला लो। नाग-पंचमी और कजली का त्योहार मनाकर, अपना गाँव और सीवान देखकर, तुम्हारा आशीर्वाद लेकर मैं फिर मरजादपुर चली आऊँगी। तुम मुझे कुछ भी बिदाई मत देना, मुझे अपने गाँव और घर का बहुत मोह लग रहा है। नन्दगाँव के लोगों को, वहाँ की सीवान को एक बार देखने की मेरी साध पूरी कर दो। मेरे बापू! मेरी इस लालसा को मत ठुकराना।"

पिता का दिल पसीजता था। लेकिन होता वही था, जो बसन्ती की नई माँ चाहती थी। इस तरह नाऊ, बारी, और नन्दगाँव को जाने वाले परिचितों से बसन्ती कितने ही अरमान-भरे संदेशे अपने पिता के पास भेजती थी, लेकिन उसकी साध उसके मन में ही रह जाती थी।

घर की सफाई और मरम्मत करा लेने के बाद पूरन ने मरजादपुर जाने का निश्चय किया। उसने सोचा कि वह अपनी दीदी को नन्द-गाँव के पेड़ों और पौदों के साथ उस होनहार वृक्ष पूरन को भी दिखा देगा, जिसको उसने अपने स्नेह की सुधा से सींचा था। अपनी दीदी को वह अपने साथ ही नन्दगाँव ले आएगा, तड़फड़ाकर मृत हो गए अब तक के उसके अरमानों में फिर से नया स्पन्दन भर देगा। वह फिर रेशम-टोला के बरगद और कुर्मियानों की नीम की डालियों में पड़े हुए झूलों पर झूलेगी, कजली मनाएगी और सावन गाएगी।

———

तीसरा अध्याय

घर से निकलने के बाद बारह वर्ष के बालक पूरन ने पहली रात रुद्रनगर के मुसाफिरखाने में बिताई। दूसरे दिन सबेरे हलवाई के नौकर मँगरू से उसकी मारपीट हो गई। गोकि उस झगड़े में वह थोड़ा-सा भी नहीं दबा था, फिर भी मँगरू की उम्र उससे बहुत अधिक थी और इसी वजह से वह पूरन से भिड़ गया था। पूरन को वह अपमान खला, उसे भय भी हुआ। उसके मन में आया कि वह फिर घर को लौट चले। उतनी उम्र में अभी तक वह केवल चार बार रुद्रनगर आया था, लेकिन हर बार वह अपने गाँव के दस-पाँच लोगों के साथ रहता था। आज वह अपने अकेलेपन का अनुभव बुरी तरह कर रहा था। घर की घृणा, उपेक्षा और ताड़ना से क्षुब्ध उसका एक व्यक्तित्व अचेतन रूप से गाँव और घर को सदा के लिए छोड़ देने का निश्चय कर चुका था। लेकिन अब उसके सामने बिलकुल भिन्न प्रकार का व्यक्तित्व था। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि नन्दगाँव से रुद्रनगर तक तो उसका अपना प्रदेश था और आगे कोई अज्ञात और भयावना परदेश है।

अब तक उसे अपने घर और गाँव से घृणा थी। वहाँ की यातनाओं से वह ऊब गया था। लेकिन उस समय उसके हृदय में उनके प्रति न जाने कहाँ से स्नेह की धारा उमड़ पड़ी थी। यह सोचकर कि सप्ताह में नन्दगाँव के लोग दो दिन बाजार करने को रुद्रनगर आते ही हैं, उसके मन में रुद्रनगर के स्टेशन और बाजार के प्रति भी अपनेपन का भाव जागृत हो गया था। संकल्प और विकल्प की उसके मन में एक प्रबल खींचा-तानी चल रही थी।

स्टेशन पर एक गाड़ी आई। उसके मन में आया कि वह उसपर बैठ जाय, फिर चाहे जहाँ भी वह उसे पहुँचा दे। कलकत्ता, बम्बई,

कानपुर, लखनऊ-आदि बड़े शहरों के नाम उसने सुने थे, पर उसे पता न था कि वे शहर किधर हैं, कितनी दूरी पर हैं। गाड़ी पर बैठने की भावना मन में आते ही वह सब की आँख बचाता हुआ, काँटेदार तारों को फाँदकर प्लेटफार्म पर जा पहुँचा। एक डिब्बे में वह प्रवेश भी कर गया और जैसे-तैसे वहाँ पर कुछ देर खड़ा भी रहा। लेकिन जब गाड़ी ने सीटी दी, तो जैसे उसका हृदय रो पड़ा। भावनाओं का एक ऐसा तेज झोंका आया कि उसका निश्चय विचलित हो गया, "नहीं, मैं कहीं न जाऊँगा। मैं अपने गाँव को लौट चलूँगा।"

गाड़ी चली गई और पूरन प्लेटफार्म पर रह गया। थोड़ी देर बाद वह नन्दगाँव की ओर लौट पड़ा। करीब आधा मील चलने के बाद उसके सामने फिर बद्री ठाकुर का तमतमाता हुआ चेहरा आ गया और उसे भय लगने लगा। पिता और माता की सूरतें भी उसके सामने आईं। किन्तु उनमें किसी प्रकार के आकर्षण का वेग न था, जिससे खिंचकर पूरन नन्दगाँव की ओर बढ़ सकता। उन्होंने उसे इतना सताया था कि उसकी चेतना भी उससे उदासीन हो गई थी। उनके विषय में कुछ सोचना भी उसे पसन्द नहीं था। उसके पैर अपने आप रुक गए। एक पेड़ के नीचे वह बैठ गया।

सोचने पर भी पूरन की समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर वह गाड़ी से उतर क्यों गया? जब कहीं कोई अपना नहीं, तो वह कौन सी मोह-माया थी, जिसकी वजह से लौटने के लिए वाध्य हो गया? इस सवाल को वह स्वयं से पूछता था, लेकिन उसे कोई भी उत्तर न मिल पाता था।

पेड़ के नीचे थोड़ी देर तक बैठे रहकर सोचने के बाद पूरन फिर अपने पहले वाले निश्चय पर आ गया। परदेश जाने के लिए उसने बड़ी ही दृढ़ता से निर्णय कर लिया। नन्दगाँव के आस-पास के गाँवों से कितने ही लोग कलकत्ता, बम्बई-आदि शहरों में गए हुए थे। उनमें से कई लोगों को वह जानता था, और कई अन्य लोगों के नाम भी जानता था। वे सभी लोग उन बड़े-बड़े शहरों में नौकरियाँ

करते थे। रूपया कमाकर अच्छे-अच्छे कपड़ों तथा अन्य सामानों के साथ अपने गाँव लौटते थे। ऐसे परदेशी लोगों की आस-पास के दूसरे गाँवों में भी इज्जत होती थी।

पूरन ने खूब सोच-समझकर निश्चय कर लिया कि वह उन बड़े-बड़े शहरों में अवश्य जायगा, फिर वहाँ पहुँचकर उस पर चाहे जो भी बीते। घर की ताड़ना, उपेक्षा और घृणा से तो वह दूर रहेगा। अपने विचारों के जोश में पूरन फिर स्टेशन की ओर लौट पड़ा! लेकिन मुश्किल से वह पचास कदम चला होगा कि उसकी चेतना के कैनवस पर आमी नदी की तलहटी, हरे-भरे मैदान, गाँव की सीमा पर स्थित पीपल का पेड़, और नदी के उस पार क्षितिज तक फैले हुए वृक्षों का झुरमुट एक बार अपनी पूरी स्पष्टता के साथ चित्रित हो उठा। उसे महसूस होने लगा कि जैसे जन्म के वे सब उसके साथी हमेशा के लिए उससे छूट जायँगे। यह सोचकर उसे बड़ी ही गहरी वेदना हो रही थी। इस बात का भी अब उसे कुछ अन्दाज हो रहा था कि यद्यपि उसका कोई अपना कहने लायक प्रिय और शुभचिन्तक व्यक्ति नन्दगाँव में नहीं था, फिर भी वह क्यों गाड़ी पर से एकाएक उतर पड़ा था? बहुत ही स्पष्ट रूप से उसे अनुभव हुआ कि वह अपने गाँव की मिट्टी, पेड़, हवा, पानी, पशुओं और पक्षियों तक से बेहद प्यार करता था। जिस समय गाड़ी ने सीटी दी थी, तब भी उसके सामने आमी के कछार की लाल संन्ध्या, गुलाबी भोर, नदी के ऊपर आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की कतार और जल में पड़ती हुई उनकी छाया, तलहटी में चरते हुए गाय-भैंसों के झुण्ड, हम-उमर साथियों के मासूम चेहरे, उसकी चेतना पर धूमिल रूप से उभर आए थे। किन्तु उस समय वह इस तथ्य का स्पष्ट आभास न पा सका था। अचेतन रूप से इन आकर्षणों से प्रभावित होकर वह गाड़ी से उतर पड़ा।

कानपुर की ओर जाने वाली गाड़ी थोड़ी देर में आने वाली थी। रुद्रनगर स्टेशन पर यात्रियों की भीड़ लगी हुई थी। गाड़ी के लिए सभी के मन में उत्सुकता थी। कई लोग अपना सामान छोड़कर गाड़ी

को देखने के लिए लाइन तक जाकर फिर लौट आते थे। एक बार तो किसी ने जानबूझ कर या भूल से कह दिया—"उठो, गाड़ी जा रही है।"

आवाज सुनते ही प्लेटफार्म पर बैठे हुए सभी यात्री अपने सरो-सामान के साथ गाड़ी पर चढ़ने के लिए तैयार हो गए। लेकिन देखने पर पता चला कि गाड़ी का कहीं नामोनिशान तक नहीं था। लोग फिर अपनी-अपनी जगहों पर बैठ गए। इन्हीं साथियों के बीच में पूरन भी एक जगह दुपका-सा खड़ा था। उसकी आँखों में उस समय शंका और भय का विचित्र मेल था। उसने अपने गाँव में सुना था कि साधू लोग बिना टिकट के तीर्थ-यात्रा करते हैं, उन्हें कोई नहीं रोकता। लेकिन वह तो साधू नहीं था, और टिकट लेने के लिए उसके पास पैसे भी न थे। उसके मन में तरह-तरह की शंकाएँ उठ रही थीं। बिना टिकट के गाड़ी मे बैठने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। वह सोचता "यदि रास्ते में कहीं पकड़े गए तो ? खूब मार पड़ेगी। सम्भवतः जेल भी जाना पड़े।"

लेकिन उसके सोचने का एक अन्य पहलू भी था—"कानपुर शहर कैसा होगा ? वहाँ कितने ही लोग गाँवों से कमाने जाते हैं और वहाँ से रुपया, कपड़े तथा कीमती सामान लेकर लौटते हैं। अवश्य ही वह बहुत बड़ा तथा सुन्दर नगर होगा।"

इस तरह उसके सोचने के दो पहलू थे। दो तरह के विचारों में उसका मन उलझा हुआ था। एक ओर भय और आशंका थी, दूसरी तरफ प्रगति का बीज, जीवन की जिज्ञासायें। लेकिन जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची, तो पूरन ने अपने मन के सारे अन्तर्द्वन्द को एक झटके से अलग फेंककर गाड़ी में जाकर बैठ गया।

रास्ते में पड़ने वाले तीन-तीन, चार-चार, छोटे स्टेशनों को छोड़ती हुई गाड़ी कानपुर के लिये चली जा रही थी। बीच के जिन स्टेशनों पर गाड़ी रुकती, वहाँ हर डिब्बे से कुछ लोग उतरते थे। जितने समय तक गाड़ी वहाँ रुकी रहती, उतना समय पूरन के लिये बड़ी ही परेशानी

हिन्दुस्तान एकेडमी, इ० प्र०
५३८८
पुस्तकालय

का होती थी। उसके डिब्बे से जब लोग उतरने लगते, तो उसका हृदय 'धक' 'धक' करने लगता था। हर क्षण उसे जान पड़ता कि अब टिकट-कलक्टर आ गया। जिस स्टेशन पर खूब भीड़ रहती और एक के ऊपर एक करके मुसाफिर डिब्बे में भर जाते, वहाँ उसका चित्त कुछ शान्त रहता। वह चाहता था कि हर स्टेशन पर भीड़ बढ़ती ही रहे।

स्टेशन के बाद स्टेशन आते थे। गाड़ी कुछ पुराने मुसाफिरों को छोड़ती थी और कुछ नयों को लेकर आगे बढ़ती चली जा रही थी। इसी क्रम से शाम तक गाड़ी चलती रही और अगले हर स्टेशन पर पूरन का शक और भय कम होता जा रहा थे। जब डिब्बे में इतनी भीड़ होती कि लोग पावदान पर भी लटके रहते, तब तो वह बिलकुल निश्चिन्त हो जाता था, क्योंकि वैसी भीड़ में टिकट-कलक्टर जाँच करने के लिए नहीं जा सकता था। उसके डिब्बे में कुछ ऐसे भी मुसाफिर थे, जो उसके आने के पहले से ही गाड़ी मे बैठे हुए थे और अभी तक उसके साथ थे। ये लोग बीच के स्टेशनों पर उतरकर कभी प्लेटफार्म पर घूमते थे, कभी मिठाइयाँ और फल खरीद कर खाते थे और कभी पान-सिगरेट या बीड़ी लेते थे। किन्तु पूरन अपने डिब्बे में रुद्रनगर से ही बैठा रहा। केवल एक बार वह पानी पीने के लिए उतरा था। दोपहर को एक बार उसे जोर से भूख लगी थी, किन्तु दो घन्टे के बाद फिर गायब हो गई और जब एक बार भूख मर गई, तो शाम तक वह बगैर कुछ खाए-पिए रह गया।

लखनऊ के चारबाग स्टेशन पर जब गाड़ी पहुँचने वाली थी, तो पूरन की ही उमर का एक लड़का, जो कि पिछले स्टेशन पर उसके डिब्बे में आगया था, अपनी जगह छोड़कर पाव-दान पर जाकर खड़ा हो गया। गाड़ी की रफ्तार जब धीमी हो गई, तो वह अपने हाथ का झोला फेंक करके, बड़े इतमीनान से अपने को संतुलित करके फुर्ती से नीचे कूद पड़ा। किशोर ने देखा कि वह दस-पाँच कदम गाड़ी के साथ दौड़ता

रहा और फिर घूमकर जमीन पर पड़े हुए अपने झोले को उठा लिया। इसके बाद बेफिक्री से टहलता हुआ दूसरे प्लेटफार्म पर चला गया और वहाँ पर रक्खी हुई एक बेञ्च पर जाकर बैठ गया। डिब्बे में बैठे हुए लोग उसके साहसिक कार्य पर मत प्रकट करने लगे—"कैसा साफ कूद गया।"

"मैंने तो उसके चेहरे को देखकर ही जान लिया था कि उसके पास टिकट नहीं है।"

"लेकिन साहब, यह काम खतरे से खाली नहीं है।"

"ऐसे ही लौंडे तो आगे चलकर छँटे हुए बदमाश निकलते हैं।"

उस लड़के के विषय में अपनी-अपनी रुचि के अनुसार जब लोग स्वतंत्रतापूर्वक मत दे रहे थे, तभी एक महाशय ने अपनी जानकारी बताते हुए कहा—"चारबाग में बड़ी तगड़ी जाँच होती है। चालाक-से-चालाक बेटिकट चलने वाले भी वहाँ पकड़ जाते हैं। इस जगह से बच निकलना लोहे का चना चबाना है।"

उस आदमी की बात सुनकर पूरन के मन में एक हड़बड़ी मच गई। उसे विश्वास हो गया कि चारबाग स्टेशन पर वह जरूर पकड़ लिया जायगा। उसका दिल जोर से धड़कने लगा। किन्तु उसी क्षण उसके सामने अभी थोड़ी देर पहले गाड़ी पर से कूदने वाले उस लड़के की तस्वीर आ गई। उसने अपने मन में कहा—"मेरी ही उम्र का तो वह भी था। अगर वह कूद गया, तो मैं भी कूद सकता हूँ और अब गाड़ी भी तो धीमी हो गई है।"

पूरन भी अपनी जगह से उठकर पावदान पर जाकर खड़ा हो गया। गाड़ी की रफ्तार काफी धीमी हो गई थी और सामान तो उसके पास कुछ था नहीं। दो-एक बार डिब्बे भर के लोगों को सन्देह-भरी दृष्टि से देखकर वह एकाएक गाड़ी से नीचे कूद पड़ा।

हर एक काम में कुछ महीन बातें हुआ करती हैं और उन सूक्ष्म बातों में निपुण होकर ही आप उस कार्य-विशेष में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। गाड़ी से कूदने में भी एक महीन बात है, और वह यह है

कि आप उसी दिशा में कूदिए, जिस दिशा में गाड़ी जा रही हो। कूदने के बाद शरीर के सन्तुलन को ठीक रखने के लिए दस-बीस कदम दौड़ना भी जरूरी है। पूरन से पहले कूदने वाला लड़का चलती गाड़ी से कूदने की कला के इस सूक्ष्म रहस्य को जानता था। उसने उसका अभ्यास किया था।

और पूरन ?

वह अनाड़ी था। उसने केवल उसकी सफलता को देखकर उसकी नकल करना चाहा था। नतीजा भी वही हुआ, जो ऐसे लोगों का होता है। वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। उसका घुटना फूट गया, हाथ में भी एक जगह से पत्थर लगने के कारण खून निकलने लगा। घबड़ाहट और जल्दी में उसने यह भी ध्यान नहीं दिया कि जिस तरफ वह कूदने जा रहा है, उसी तरफ एक पुलिस का सिपाही खड़ा है, और गाड़ी स्टेशन के बिलकुल समीप है। गिरने के बाद थोड़ी देर तक तो उससे उठा ही न जाता था, लेकिन जब वह जोर लगाकर उठा, तो उसके सामने पुलिस का एक सिपाही खड़ा था। बन्दूक ताने हुए भी यदि उसके सामने कोई दूसरा खड़ा होता, तो भी कदाचित् उसे उतना भय न लगता, जितना उस सिपाही को अपने सामने पाकर उसे भय लगा। उसका रक्त मानों जम गया। साधारणतया जब तक उसके शरीर से खून न निकलता, तब तक तो उसे रोने की आदत ही नहीं थी। और चूँकि आज उसकी अपनी गलती से खून निकला था, इसलिए वह रोना भी नहीं चाहता था। लेकिन वह सिपाही बहुत ही बेरहम था। उसने उसकी चोट से किसी प्रकार की हमदर्दी बिना दिखाए हुए उसके मुँह पर दो-तीन झापड़ तड़ाक्-तड़ाक् मारे और गालियाँ भी देने लगा—"हरामी के पिल्ले। क्यों बे, गाड़ी से कूदता है ? बोल, तेरा टिकट कहाँ है ?"

फिर किसी प्रकार की रू-रियायत किए बिना वह सिपाही पूरन का कान पकड़कर खींचता हुआ उसे स्टेशन की ओर ले चला। रेलवे-

पुलिस के थाने पर उसने उसकी तलाशी ली। पूरन के पास वही तीन आने पैसे निकले।

चारबाग स्टेशन पर रेलवे पुलिस के थाने में बैठे हुए पुरन को जो भी देखता, वही उसे चोर, पाकिटमार, गिरहकट, काइयाँ, उड़नबाज, चार सौ बीस आदि कीमती खिताबों से समाद्रित करता था। बीच-बीच में इन उपाधियों पर थप्पड़ और घूँसों की मुहर भी लग जाती थी। अभी तक वह रोया नहीं था, लेकिन जब चारों ओर से उस पर गालियों और मर्मभेद व्यंगों की बौछारें पड़ने लगीं, तो उसे वे अपमान असहय हो गए। वह फफक-फफक कर रोने लगा। मारना और मार खाना उसने सीखा था, लेकिन इन्सान के सबसे निकृष्ट प्रहार मिथ्या इलजाम का सामना वह न कर सका।

जिस समय पूरन बैठा हुआ रो रहा था, उसी समय पुलिस का एक और लगभग पैतालीस वर्ष का आदमी मोटर-सायकिल से उतरकर आया। जितने सिपाही वहाँ थे, सभी ने बढ़कर उसे सलाम किया। पूरन को रोता हुआ देखकर उसने सिपाहियों से उसके पकड़े जाने का कारण पूछा। उन सिपाहियों में से जब एक ने उससे पूरन के विषय में बतलाया, तो उस नवागन्तुक ने रोते हुए पूरन की मुखाकृति को एक बार बड़े गौर से देखा और फिर वह उसके समीप जाकर खड़ा हो गया। गालियाँ या धमकी देने के बजाय उसने स्नेह से पुचकारते हुए कई सवाल पूछे। अपना नाम, पिता का नाम, गाँव का नाम, जिले तथा तहसील का नाम सभी कुछ पूरन ने उस आदमी से दुबारा बताया। किन्तु, उस गैर जगह पर एक अजनबी की सहानुभूति-भरी बातों को सुनकर वह और भी तेजी से सिसक-सिसक कर रोने लगा। उसके होंठ थर-थर काँपते थे और कितना ही रोकने का प्रयास करने पर भी उसके आँसू थमते ही न थे। वह आदमी पुलिस का कोई बड़ा अधिकारी था। उसने ढाढ़स बँधाते हुए पूरन से कहा—"डरो नहीं, अब तुम्हें नहीं मारा जायगा। लेकिन एक बात तो बताओ कि तुम काम करना चाहोगे या नहीं?"

"हाँ, मैं काम करना चाहता हूँ।" पूरन ने रुँधे हुए गले से कहा।

"कौन-सा काम करना चाहते हो?"

"जो भी मिल जाय।"

इतनी बातचीत कर लेने के बाद उस अधिकारी ने एक सिपाही से कहा—"स्टेशन के बाहर, बड़े कप्तान साहब की कार खड़ी है। इस लड़के को ले जाकर उस पर बैठा दो। ड्राइवर से कह देना कि वह इसे कोतवाली के पास उतार कर मेरे क्वार्टर पर पहुँचा देगा।"

फिर वह पूरन से बोला—"तुम वहाँ पहुँचकर चुपचाप बैठना। मैं आकर तुम्हे काम बताऊँगा।"

एक सिपाही ने ले जाकर पूरन को स्टेशन के बाहर खड़ी एक नई-सी मोटर में बैठा दिया। पूरन की जिन्दगी का वह पहला मौका था, जब कि उसे किसी मोटर की स्प्रिङ्ग वाली, गद्देदार सीट पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जब ड्राइवर ने गाड़ी स्टार्ट किया और स्टेशन-यार्ड के शानदार गेट से बाहर निकलकर सीधी सड़क पर तेज रफ़्तार से आगे बढ़ने लगी, तो पूरन को एक विचित्र प्रकार के आनन्द का अनुभव हुआ। यद्यपि उसके मन में उस नए स्थान के प्रति शंका के भाव विद्यमान थे, फिर भी कम से कम, जब तक वह मोटर में बैठा रहा, तब तक के लिए अभी थोड़ी देर पहले पड़ी हुई मार और गालियों को वह भूल गया। दिन भर की कड़ुआहट, उसके हृदय को मुर्दा बना डालने वाला विवाद का जहर, सब कुछ उस नए अनुभव के रस में घुल गया।

रास्ते में सीमेन्ट की बनी हुई चौड़ी सड़क पर मोटर में बैठा हुआ पूरन जब जा रहा था, तो उसे अपनी आँखो के सामने का सारा दृश्य स्वप्नवत् प्रतीत हो रहा था। उसके लिए वह सब इतना नया और कौतूहलजनक था, जिसकी कल्पना वह स्वप्न में भी नहीं कर सकता था और इसीलिए सारा दृश्य सत्य होते हुए भी उसे स्वप्न-सा लग रहा था। बिजली के स्फटिक-प्रकाश में नहाई हुई सड़क पर चलने

वाले कीमती तथा रंग-बिरंगे वस्त्रों से सजे हुए नर-नारियों को उसकी कल्पना न तो आदमी ही कह पाती थी और न तो देवता ही। आदमी इसलिए नहीं कि अब तक उसने ऐसे आदमियों को देखा ही नहीं था और देवता इसलिए नहीं कि देवताओं की उसके सामने कोई स्पष्ट कल्पना ही नहीं थी। सड़क के किनरे एक के बाद एक, आलीशान इमारतें अपनी समस्त भव्यता और चमत्कार को लिए क्षण भर के लिए आती थीं और पीछे छूट जाती थीं। सड़क पर दौड़ते हुए रिक्शे, ताँगे, टमटम और सायकिलों का एक अनवरत क्रम उसके पीछे छूटता जा रहा था। कुछ मोटरें उसके आगे भी बढ़ जाती थीं। लखनऊ नगर का वह दृश्य पूरन के लिए नवीनता और सौन्दर्य का विराट महोत्सव था, जिसे वह चकित होकर देख रहा था। बस देखता ही जाता था।

कई चौराहों और बाजारों से होते हुए ड्राइवर ने फैजाबाद रोड पर आई० टी० कालेज के करीब एक पुरानी-सी चहारदीवारी के फाटक पर मोटर को रोक दिया। उसने पूरन को अन्दर ले जाकर सीमेन्ट के एक गोल चबूतरे पर बैठाल दिया। उससे बिना कुछ कहे-सुने ड्राइवर फिर बाहर चला गया।

पूरन ने आँखें उठा कर अपने चारों ओर देखा। धुँधली संन्ध्या अब कानी रात में बदल चुकी थी। जिस चबूतरे पर वह बैठा हुआ था, उसके बीचोबीच लोहे की एक बहुत ऊँची सलाख के सिरे पर यूनियन जैक वाला झंडा फहरा रहा था। करीने से उगाए हुए रङ्ग-बिरङ्गे फूलों की त्रिभुजाकार पंक्तियों मे वह चबूतरा स्थित था। उससे सौ कदम की दूरी पर दो-तीन छोटे-छोटे बँगले बने हुए थे, जिनमें बिजली जल रही थी। दरवाजों पर रक्खी हुई कुछ मेज, कुर्सियाँ साफ दिखलाई पड़ रही थीं। इन बँगलों से दाहिनी ओर थोड़ी दूर पर एक पुरानी इमारत थी, जो रुद्रनगर की तहसील की कचहरी से काफी मिलती-जुलती थी। बाईं ओर अँधेरे में केवल कुछ पेड़ दिखाई पड़ते थे। जहाँ पूरन बैठा हुआ था, वहाँ भी बिजली का एक खम्भा था

और उस पर लगे हुए बल्ब पर पतिंगे उड़ रहे थे, जो कभी-कभी उसकी आँखों में भी पड़ जाते थे। उसके मन की उद्विग्नता तो काफी हद तक दूर हो गई थी, किन्तु उस अनजानी जगह के प्रति हृदय में आशंका अभी तक बनी हुई थी।

पिछले दो दिनों से कुछ भी न खाने की वजह से पूरन का शरीर तो निस्तेज हो ही गया था, उसकी मानसिक वृत्तियाँ भी शिथिल पड़ गई थीं। उसमें जैसे कुछ सोचने की ताकत ही न थी। सिर को हथेलियों पर रक्खे हुए वह एक घंटे तक वहीं बैठा रहा और उसके बाद भूख तथा थकान से चूर होकर उसी चबूतरे पर लेट गया। लेटने के थोड़ी ही देर बाद उसे नींद आ गई। ग्यारह बजे रात में, जब दो आदमियों ने आकर उसे डाँटकर जगाया, तब जाकर उसकी नींद खुली। उठने पर हक्का-बक्का-सा वह उन आदमियों को देखने लगा। उनमें से एक जो बुड्ढा था, उसकी मुद्रा देखकर हँस पड़ा और बोला—"क्या भकुआ जैसे देखते हो ? उठो, जल्दी जगह खाली करो।"

पूरन उठकर खड़ा हो गया और बुड्ढा आदमी अपनी दरी को हवा में फटकारकर बिछाने लगा। दूसरा जवान आदमी, जो उसे गौर से देख रहा था, सहसा बोल पड़ा—"दादा, जरा इसकी आँखें तो देखो। चोर है, चोर ! पूरा घाघ !!"

पूरन को उस आदमी ने यदि दो झापड़ खींचकर मार दिया होता, तो शायद वह न रोता। किन्तु उसके इस झूठे लांछन ने उसके मर्म को छू लिया। वह अपने को रोकना चाहता था, किन्तु उसके हृदय का घाव धुँआँ बनकर उठने लगा और क्षण भर में वह उसके गले की सिसकियों और आँखों के आँसू के रूप में बाहर आ गया। उसका रोना सुनकर जवान कुछ चौंक-सा पड़ा और बुड्ढे का भी ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ। उसने पूरन का हाथ पकड़कर उसे चबूतरे पर बैठाया और किसी वकील की तरह उससे कितने ही सवाल पूछने लगा।

थोड़ी देर के सवाल-जवाब के बाद पूरन उन दोनों की सहानुभूति प्राप्त करने में सफल रहा। बुड्ढे ने उसे पेड़ों के अँधेरे में स्थित एक

झोपड़े में ले जाकर पानी पिलाया, फिर उसको खाने के लिये उसने भिगोए हुए चने, जो अच्छी तरह फूले भी न थे, और गुड़ दिया। बिछाने के लिये उसे एक पुराना कम्बल भी मिला। शाम को जब पूरन चबूतरे पर बैठा था, तो उसने बिजली की रोशनी में चमकते हुए उन बँगलो को ही देखा था। उसका ख्याल था कि पेड़ों के पीछे अँधेरा ही है। लेकिन उसका ख्याल गलत था। वहाँ बिजली का उजाला न सही, लेकिन नेक दिलों की रोशनी जरूर थी।

बुड्ढा उस अहाते का चौकीदार था। दूसरे दिन सबेरे उसी ने आकर पूरन को बताया कि जिन्होंने उसे शाम को उस जगह पर भेजा था, वे शहर के कोतवाल थे। रात को वे देर से घर आए थे, इसीलिये उन्हें पूरन के विषय में कुछ याद न रहा। चौकीदार ने पूरन को कोतवाल के बँगले तक पहुँचा दिया। पूरन जब उस जगह पहुँचा, तो उसने उसी आदमी को दरवाजे पर बैठे हुए देखा, जिसने पिछली शाम को उसे चारबाग-स्टेशन से उस जगह भेजा था। वह एक छोटी-सी मेज पर पैर टिकाए हुए एक आराम-कुर्सी पर लेटा-लेटा अखबार पढ़ रहा था। बिना कुछ बोले हुए पूरन जाकर दरवाजे के सामने खड़ा हो गया। आहट पाकर कोतवाल साहब ने अखबार से अपनी निगाह हटाई और पूरन को देखा। कुछ याद से करते हुए उन्होंने उसने से पूछा—"तुम्हारा नाम ?"

"पूरन।"

"ओह ! पूरन ? हाँ, कल शाम को चारबाग से मैंने तुम्हीं को यहाँ भेजा था ?"

"हाँ।"

फिर कोतवाल साहब ने महरी को आवाज दी। एक बुड्ढी औरत भीतर से, एक बच्चे को गोद में लिए हुए दरवाजे पर आई। उससे वे बोले—"देखो महरिन, यह लड़का मेरे गाँव की तरफ का है। इसे अपने साथ ले जावो। अब यह यहीं रहेगा। जो काम चाहो, इससे कराओ।"

पूरन को वह बुढ़िया महरिन भीतर ले गई। पहला काम जो उसने सौंपा, वह था चार-पाँच मोटे-मोटे लकड़ी के कुन्दों को चीरकर चैला निकालना। उसने अपनी रूमाल को कमर में बाँधा और उन कुन्दों को आँगन में ले जाकर कुल्हाड़ी से चीरने लगा। बड़ी मुस्किल से वह तीन कुन्दों को फाड़ सका था, कि उसका शरीर पसीने से तर हो गया और उसे जोर से प्यास लग गई। तब उसने उसी महरिन से जाकर पानी माँगा। पूरन के पसीने से तर शरीर और प्यास से सूखे हुए होठों को देखकर उस स्त्री को उस पर दया आ गई। रसोई-घर से दो पराठे और थोड़ी-सी चीनी लाकर उसने उसको दिया। खा-पी लेने के बाद उसे फिर लकड़ी नहीं चीरनी पड़ी। अबकी बार उसे दो गोल-मटोल बच्चों को एक छोटी-सी गद्देदार गाड़ी में बिठाकर बहलाने के लिये ले जाना था।

दो-तीन दिनों में पूरन ने अपना सारा काम समझ लिया। नल से पानी भरना, चौकीदार के साथ साग-भाजी लाने के लिये बाजार जाना, कोतवाल साहब के जूते साफ कर देना, और कभी-कभी उनके शरीर पर मुक्कियाँ लगा देना-आदि। ऐसे छोटे-मोटे काम तो उसे करने ही पड़ते थे, किन्तु उसका मुख्य काम था, बच्चों को बहलाना। अपने इस मुख्य काम में उसका जी भी लगता था।

दिन में तो पूरन काम में फँसा रहता था, शहर की हलचल और नवीनता को देखते रहने के कारण उसे कोई चिन्ता नहीं सताती थी। लेकिन रात को जब वह बँगले के बाहर बरामदे में एक फटी दरी बिछाकर सोने जाता, तो उसे काफी रात बीत जाने पर भी नींद नहीं आती थी। नन्दगाँव, आमी नदी का हरा-भरा कछार, चौड़ा पाट, बसन्ती दीदी, रामानन्द, तथा गाँव के दूसरे साथी उसे बहुत याद आते थे। कभी-कभी उसे अपने उस छोटे-से गाँव का इतना मोह लगता कि घंटों वह रोया करता था। किन्तु जब कभी उसके मन में नन्दगाँव लौट जाने की बात आती, तो उसकी चेतना उस विषय पर सोचने से भी इनकार कर देती थी। एक अजीब कड़ुआहट और पीड़ा से उसका हृदय भर जाता था।

चौथा अध्याय

कोतवाल साहब के परिवार में कुल सात प्राणी थे। एक लड़की दो साल की थी। उससे बड़ा एक चार वर्ष का लड़का था। एक और लड़का दस वर्ष का था और उससे बड़ी दो लड़कियाँ थीं। इनमें से एक का नाम था मंजू और दूसरी का नाम था रजनी। मंजू की उमर इक्कीस वर्ष से कम न थी और रजनी का सोलहवाँ वर्ष चल रहा था। दोनों लड़कियाँ अविवाहित थीं। रजनी नवीं कक्षा में पढ़ती थी और मंजू दसवीं पास करके अब घर पर अपनी माँ के साथ घर के कार्य में हाथ बँटाती थी। लड़के का नाम था बलवन्त। वह भी रजनी के ही स्कूल में पाँचवी कक्षा में पढ़ता था।

कोतवाल साहब का नाम था, पंडित कुलदीपनारायण शुक्ल। अपने परिवार के वे पहले व्यक्ति थे, जिन्हें अंग्रेजी शिक्षा पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जब इन्होंने दसवीं पास कर लिया, तो इनके पिता ने धूमधाम से इनकी शादी कर दी। गोरखपुर से जब उन्होंने इन्टरमीडिएट पास किया, तब वे हाकी और फुटबाल के अच्छे खिलाड़ी थे। बी० ए० की पढ़ाई करने के लिए उन्होंने बनारस-विश्वविद्यालय में नाम लिखाया। बनारस में पहुँचकर कुलदीप खेल-कूद में अत्यधिक दिलचस्पी लेने लगे। किताबों से तिलमात्र का भी सम्बन्ध न रखते हुए उन्होंने खेल, कसरत, सैर-सपाटा, मौज-मस्ती में ही अपना समय बिताना प्रारम्भ कर दिया।

काशी-नगरी में जवान कुलदीप ने प्रेम का भी एक खेल खेला। लेकिन उस खेल में वे जीतकर भी हार गए। बी० ए० का पहला साल तो उन्होंने किसी प्रकार पास किया। दूसरे वर्ष में वे पढ़ ही रहे थे, तभी थानेदारी के लिए दरख्वास्त भी दी और संयोग से मुरादाबाद ट्रेनिङ्ग कालेज के लिए वे चुन भी लिए गये। पिता की इच्छा के विरुद्ध उन्होंने नौकरी कर ही ली। उस समय कुलदीप यह सब-कुछ

अपनी प्रेमिका कुमारी रेणुका गोयल के इशारे पर कर रहे थे। कुमारी जी की शिक्षा भी इन्टर-मीडियेट तक थी और उस समय वे काशी के एक स्कूल में अध्यापिका थीं। कुलदीप की नौकरी जब एक साल की हो गई, तो रेणुका गोयल खुले आम उनके साथ रहने लगीं। वैसे भी वे दोनों लोग अक्सर मिलते रहते थे।

रेणुका और कुलदीप के सम्बन्धों का पता जब कुलदीप के पिता और उनकी ससुराल वालों को लगा, तो वे लोग उनके पास पहुँचे। कुलदीप के ससुर और उनके पिता ने मिलकर कुलदीप और रेणुका को अलग करने में कुछ भी न उठा रक्खा। अनुनय-विनय से लेकर पैतृक संपत्ति से वंचित किए जाने तथा समाज से बहिष्कृत किए जाने की धमकियों का सामना कुलदीप ने किया। लेकिन वे जरा भी टस से मस न हुए। उनके ससुर ने रेणुका देवी के पैरों पर अपनी पगड़ी रख दी और बोले—"बेटी ! एक बेगुनाह की जिन्दगी से खेल मत करो। यह खबर सुनकर मेरी बेटी किसी कुएँ या नदी मे डूबकर मर जायगी। तुम तो पढ़ी-लिखी हो बेटी; एक बेजबान गाँव की लड़की पर दया करो, उसे आत्म-हत्या से बचा लो।"

कुलदीप के हाथों को अपने हाथों में लेकर उनके पिता ने कहा : "बेटा, मेरे बुढ़ापे पर तरस खाओ, मेरे इन सफेद बालों की लाज रख लो। मैं रास्ते में जहर खा लूँगा, लेकिन इस खबर को लेकर घर न जा सकूँगा। उस निर्दोष बालिका ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? जरा सोचो तो, क्या इस बात को सुनकर वह जीवित रहेगी ?"

किन्तु कुलदीप और रेणुका का प्यार चट्टान की तरह दृढ़ था और वैसा ही नीरस भी। कुलदीप किसी सरकारी काम का बहाना करके दूसरी जगह चले गए और रेणुका देवी ने भी कुछ दिनों के लिए बनारस का रास्ता लिया। अलग होते समय कुलदीप के पिता ने क्रोध से कहा—"जाओ कुलदीप, आज से तुम मेरे लिए मर गए। लेकिन याद रक्खो, जीवन में तुम सुखी न रह सकोगे। उस निरपराध बालिका के आँसू शोले बनकर तुम्हारे सुख-चैन को नष्ट कर देंगे।"

कुलदीप के ससुर की आँखों से केवल आँसू झरझर-कर गिर रहे थे और प्रणाम करके जाते हुए अपने दामाद को देखकर अपनी उमर की लाज छोड़कर जोर से रो पड़े थे।

बाइस वर्ष पहले की यह घटना है। इसके बाद कुलदीप कभी अपने गाँव नहीं गए। आज वे तरक्की करके कोतवाल भी हो गए थे। उनके और रेणुका देवी की प्रेमबेलि में मीठे और कड़ुवे फल भी लग चुके थे। पिछले पाँच वर्षों से वे मंजू की शादी के लिए जी-जान से कोशिश कर रहे थे। तीन जगह तो ब्याह की सारी बातें तै होकर अन्त में बिगड़ गईं। बात यह हुई कि जब लड़के वालों को पता चला कि 'माँ' कुलदीप शुल्क की ब्याहता नहीं है और उसकी जाति भी दूसरी है, तब उन लोगों ने चढ़ा हुआ फलदान लौटा दिया।

तीन जगहों से शादी की बात कट जाने की वजह से कुलदीप शुक्ल की लड़की की बात काफी दूर तक फैल चुकी थी। जहाँ भी ब्राह्मण-परिवार में शादी के सिलसिले में वे जाते, वहाँ पहले से ही इस बात की चर्चा फैली रहती कि लड़की की माँ ब्राह्मण-जाति की नहीं है। एक तरफ मंजू की तो यह हालत थी और दूसरी ओर रजनी दिन-दिन रेंड़ की तरह बढ़ती चली जा रही थी। कुलदीप का जीवन इस तरह बहुत दुःखी था। वे चिन्ता के मारे दिनों दिन घुलते चले जा रहे थे। अब तक वे अपने गाँव, परिवार, पड़ोसी, पट्टीदार सभी को भूले हुए थे, किन्तु इन दिनों अक्सर उन्हें अपनी जन्मभूमि और वहाँ के लोगों की याद आ जाती थी।

जिस दिन चारबाग स्टेशन पर पूरन पकड़ा गया, उस समय किसी काम से अचानक ही कुलदीप शुक्ल रेलवे-थाने पर पहुँच गए थे। वहाँ पर पूरन के मुँह से रुद्रनगर और नन्दगाँव का नाम सुनकर उनके हृदय में एक हमवतन के प्रति स्नेह उमड़ आया। उन्हें बच्चों के बहलाने तथा अन्य छोटे-मोटे कामों के लिए एक नौकर की भी जरूरत थी। इसीलिए उन्होंने उसे अपने बँगले पर भेज दिया था। यदि पूरन की उमर कुछ और अधिक होती तथा उनके गाँव के विषय

में भी वह जानकारी रखता होता, तो सम्भवतः वह उनका विशेष कृपा-पात्र बन जाता। गो कि नन्दगाँव से कुलदीप शुक्ल का गाँव केवल छः कोस की दूरी पर था, फिर भी पूरन अपनी कम आयु और अनुभव के कारण उनके गाँव के सम्बन्ध में कुछ भी न जानता था। फिर भी कुलदीप का व्यवहार पूरन के साथ अच्छा था। वे कभी-कभी उसकी गलतियों के बावजूद भी उस पर क्रोध नहीं करते थे। लखनऊ में आकर पूरन की उद्दण्डता भी गायब हो गई थी। वह काफी दबा-सा रहता था।

लखनऊ में रहते हुए पूरन को दो महीने बीत गए। इतने समय में उसे किसी ने न तो चोर या बदमाश ही कहा और न तो उसे एक बार भी मार ही खानी पड़ी। अब इस नई जगह के प्रति उसका अजनबीपन भी जाता रहा। लेकिन एक बात अचेतन रूप से रह-रहकर उसके हृदय में बुरी तरह चुभती रहती थी। सुबह से लेकर ग्यारह बजे रात तक वह कोई काम अपनी इच्छा से नहीं करता था, बल्कि एक अज्ञात भय के प्रभाव से, जो सब काम करते समय उस पर छाया रहता था।

इस समय उसके लिए सबसे बड़े आकर्षण पुलिस-लाइन के सिपाहियों की परेड और व्यायाम थे। अक्सर वह बच्चों को गाड़ी में लिए हुए परेड ग्राउंड पर चला जाता था और घंटों वहाँ का दृश्य देखता रहता था। अधिकतर सिपाही केवल बनयान, निकर और जूते ही पहनकर परेड किया करते थे, किन्तु कभी-कभी पूरी वर्दी में बैंड के साथ-साथ भी परेड होती थी। ऐसे दिनों पर जब बैंड की सुरीली आवाज उसके कानों में पड़ती और वह किसी काम में फँसा रहने के कारण वहाँ न जा पाता, तो उसे बेहद तकलीफ होती थी।

सुबह-शाम पुलिस-लाइन में बहुत रौनक रहा करती थी। हर तरफ कसरत, कुश्ती, दौड़, खेल, चुस्ती और फुर्ती का वातावरण रहा करता था। अपने-अपने बैरक से स्वस्थ, मजबूत तथा गठी हुई मांसपेशियों वाले सिपाही रोज सुबह को कतार में कदम मिलाते हुए परेड के लिए जाते थे। कुछ लोग अखाड़े में कुश्ती के लिए उतरते थे, तो कुछ लोग

मुगदर घुमाते हुए दिखाई पड़ते थे। कोई डम्बल को दबाकर अपनी भुजाओं की मांसपेशियों को फौलादी बनाता होता और कोई 'चेस्ट एक्सपैन्डर' से अपने चौड़े सीने को और भी चौड़ा बनाने का प्रयत्न करता रहता। शाम का दृश्य भी हर तरफ उत्साह और लगन का रहता था। जिन्हें परेड में जाना रहता, वे लोग अपने बूटों और पेटियों को पालिश से चमकाते थे, पेटियों में लगी हुई पीतल को ब्रासो से माँजते थे। कमीज, कालर, बटन और पैन्ट की क्रीज का उन्हें अत्यधिक ध्यान रहता था। मील भर में फैले हुए परेड-ग्राउंड में कबड्डी, फुटबाल, हाकी, बास्केटबाल, और बालीबाल के मैदान अलग-अलग बने हुए थे। इन सभी मैदानों में अपनी रुचि के अनुसार शाम को सिपाहियों का दल खेलता हुआ दिखाई पड़ता था। इन मैदानों में थोड़ी दूर हटकर आदमी की ऊँचाई की एक चहारदीवारी थी, जिसके भीतर विभिन्न अंगों के व्यायाम करने के लिए बीसों किस्म के उपकरण मौजूद थे।

दोनों बच्चों को गाड़ी में लिए हुए जब पूरन सुबह-शाम, पुलिस लाइन और परेड ग्राउन्ड के स्वस्थ और जोश उभारने वाले दृश्यों को देखता, तो उसकी भावनाएँ बड़ी ऊँची उड़ानें लेती थीं। फुटबाल के किसी अच्छे खिलाड़ी को देखकर उसकी इच्छा होती—"कहीं यदि मैं भी इतना ही अच्छा खेल सकता।"

परेड करते हुए सिपाहियों के कप्तान को कड़ककर अनुशासन-आज्ञाओं को बोलते हुए सुनकर उसमें वैसा ही बोलने का शौक पैदा हो जाता था। कभी-कभी अकेले में वह 'अटेंशन' 'स्टैन्डएटईज' 'राइट-टर्न' आदि अनुशासन-आज्ञाओं को उसी कप्तान की भाँति कड़ककर दुहराता था। इतना ही नहीं, उसकी किशोर-सुलभ कल्पना में उसका एक छोटा-सा रेजीमेन्ट उसकी आज्ञा पर कदम मिलाता हुआ चलता भी था, और वह उन सिपाहियों का कप्तान रहता था।

जिस जगह पर सिपाही 'जैवलिन', 'हैमर' या 'शाटपुट' फेंकने का अभ्यास करते, वहाँ बहुधा पूरन आस-पास चक्कर लगाया करता था

और जब कभी फेंकी हुई जैवलिन या लोहे का गोला दूर जा गिरता तब दौड़कर वह उन्हें वहीं से फेंकता हुआ ले आता था। इसी प्रकार मैदान से बाहर चले गए फुटबाल पर भी वह दो-चार 'हिट' लगा ही देता था।

एक दिन शाम को पूरन परेड-ग्राउन्ड से लौट रहा था। सभी सिपाही तितर-बितर होकर हँसते-बोलते पुलिस-लाइन की ओर लौट रहे थे। कुछ लोग सड़क से बाजार की ओर भी चले जा रहे थे। पूरन बच्चों की गाड़ी को ढकेलता हुआ सड़क के किनारे-किनारे चल रहा था। जब वह चौराहे पर होटल के सामने पहुँचा, तब उसने किसी को अपना नाम लेकर पुकारते हुए सुना। एक बार अपना नाम सुनने के बाद उसने इधर-उधर देखा। जब कोई नजर न आया, तो वह फिर आगे बढ़ने लगा। लेकिन जब दुबारा, तिबारा फिर वही आवाज आने लगी, तो उसने बच्चों की गाड़ी उसी जगह रोक दी और चारों तरफ बड़े ध्यान से देखने लगा। जब उसकी निगाह होटल के सामने पड़ी हुई कुर्सियों पर गई, तो उसने देखा कि एक आदमी हाथ उठाकर बुला रहा है। पास जाने पर पूरन ने उस आदमी को पहचाना। ये लाइन के एक दीवान जी थे, जो कभी-कभी कोतवाल साहब के घर जाया करते थे। गोरा रंग, भरा हुआ चेहरा, एकहरा शरीर और ऐंठी हुई और छोटी-छोटी मूँछों वाले दीवान के दाँत पान से काले हो गए थे। पूरन को देखकर हँसते हुए दीवान ने कहा—"क्यों पूरन, आज तो तुम हमसे नाराज मालूम होते हो?"

पूरन को दीवान के अप्रत्याशित और अप्रासंगिक वाक्य को सुनकर कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि जब भी वह उससे मिलता, अपनी बात-चीत का सिलसिला इसी वाक्य से प्रारम्भ करता था। वह बोला—"नहीं दीवान जी, मेरी क्या हस्ती है, जो आप से नाराज हो जाऊँ?"

उसके बाद कुर्सी से उठकर दीवान ने गाड़ी में से एक बच्चे को अपनी गोद में उठा लिया और होटल के नौकर से अरारोट के एक

दर्जन बिस्कुट मँगाकर दोनों बच्चों को दो-दो बिस्कुट दिये। बचे हुए बिस्कुटों को उसने पूरन की कमीज की जेब में डाल दिया। उसके बाद आधे घन्टे से भी ज्यादा समय तक वह पूरन से इधर-उधर की बातें करता रहा। उसी सिलसिले में कोतवाल साहब के परिवार के हर व्यक्ति का कुशल-समाचार बारी-बारी से उसने पूछ डाला। पूरन उसे झक्की समझता था। 'हाँ, तो यह बात, अच्छा तुम्हारी मालिकिन तुम्हें कैसी लगती हैं ?' दस दिन बीत गए, मुझे तुम्हारे यहाँ आने का मौका ही न मिला। अरे, बैठो भी यार, इतनी जल्दी क्या है ?' अच्छा एक बात पूछूँ ; किसी से कहोगे तो नहीं ? आदि, इसी तरह की उलटी-सीधी बातें वह किया करता था।

जनवरी का महीना आ गया। पूरन को लखनऊ में रहते हुए कई महीने बीत गए। उसे अब नन्दगाँव की याद कम सताती थी। यहाँ के लोगों में वह घुलने-मिलने लगा था। दिसम्बर के आखिरी सप्ताह से ही पुलिस-लाइन की चप्पा-चप्पा जमीन साफ की जा रही थी। जो अधिकारी कुछ खास कामों से ही अपने बँगलों से बाहर निकलने की तकलीफ करते थे, वे लोग इन छोटे-छोटे कामों की निगरानी में लगे हुए थे। लाइन का पूर्वी फाटक पुराना होकर टूट गया था। उस जगह पर नया फाटक लगवाया जा रहा था। रँगरूटों के हवलदार और मेठ उनकी पूरी वर्दी का निरीक्षण कर रहे थे। पन्द्रह जनवरी को भारत के वाइसराय संयुक्त-प्रान्त के पुलिस-विभाग के विशेष अतिथि होकर आ रहे थे।

इन दिनों नए रंगरूटों को हर रोज पूरी वर्दी में, बैंड के साथ परेड का अभ्यास करना पड़ता था। यह कार्य-क्रम पूरन के लिए बेहद आकर्षण रखता था। इस महीने में कुछ दिनों के लिये उसकी मालिकिन रेणुका देवी बनारस चली गई थीं। उसके मालिक कोतवाल साहब भी अपने विभाग के कार्यों में बहुत व्यस्त रहते थे। कभी-कभी तो वे अपना भोजन भी बाहर ही करते थे। दिन भर वे बाहर रहते और रात को भी बहुधा देर से घर पहुँचते थे। इसलिये पूरन पर कोई कड़ा

नियंत्रण उस समय नहीं रहता था। पुलिस-लाइन की चहल-पहल देखने की उसे काफी स्वतंत्रता रहती थी। घर के छोटे-मोटे काम कर लेने के बाद वह बच्चों की गाड़ी लेकर पुलिस-लाइन और परेड-ग्राउन्ड के दृश्यों को देखता-फिरता था।

दिन में दस बजे के बाद रजनी और बलवन्त स्कूल चले जाते थे। केवल मंजू घर में रहती थी। मंजू का व्यवहार पूरन के साथ बहुत ही अच्छा था। वह उसके साथ किसी प्रकार की भी सख्ती नहीं करती थी। घर भर में मंजू-बहन उसे सबसे अच्छी लगती थी। बलवन्त के साथ भी वह कभी-कभी खेलता था. लेकिन उस समय उसे अपने मालकिन की झिड़कियाँ सहनी पड़ती थीं। इसलिए वह उसके अधिक निकट रहने से डरता था। रजनी का मिजाज जरा कुछ गरम था। उसके हुक्म के पालन में यदि थोड़ी-सी भी ढिलाई पूरन दिखलाता, तो फौरन उसे फटकार सुननी पड़ती थी। रजनी के लिए उसके हृदय में आदर की भावना तो थी ही नहीं, वह उससे डरता भी नहीं था। हाँ, उसके सामने वह डरने का अभिनय अवश्य करता था और उसकी पीठ-पीछे मुँह बिचकाकर उसे चिढ़ाता भी था।

मंजू में पूरन अपनी बसन्ती दीदी का एक प्रतिरूप देखता था। कभी-कभी जब उसकी मालकिन या रजनी उस पर क्रुद्ध हो जाती और मंजू उसका पक्ष लेकर उन्हें शान्त करती, तो उसे अपनी बसन्ती दीदी की याद बुरी तरह आने लगती थी। जब उसकी सौतेली माँ उसे गालियाँ सुनाती थी, तब वह भी तो पूरन का ही पक्ष लेकर उसे शान्त करती थी। लेकिन बसन्ती के साथ उसका सहज प्यार था। उन दोनों का खून एक था। फूल और सुगन्धि की भाँति वे एक दूसरे से अभिन्न थे। बसन्ती का प्यार पूरन को बाहरी नहीं मालूम होता था। वह उसका अपना ही था। सम्भवतः इसीलिए उसके टूट जाने, या अलग हो जाने के विषय में वह कोई बात सोच तक नहीं सकता था। वह बसन्ती से झगड़ता भी था, रूठता भी था, फिर उससे बोलता भी था। वह भी उसे कभी-कभी पीट देती थी और फिर मना भी लेती थी।

और मंजू ?

पूरन को लगता, जैसे अपना स्नेह देकर वह उस पर एहसान कर रही है। वह उस पर श्रद्धा रखता था, उसका आदर करता था, उसके कहने से अपनी शक्ति भर कुछ भी करने को तैयार रहता था। किन्तु वह अपने को उससे अपनत्व के किसी ऐसे मजबूत तागे से बँधा हुआ नहीं पाता था, जिसमें उसके झगड़ने से गाँठ न पड़े और रूठने से जो टूटे भी नहीं।

मंजू बहुत शान्त रहा करती थी। उसके उदास चेहरे पर किसी गहरी वेदना की छाया पड़ी हुई थी। उसके दीर्घ अपाङ्गों में सहज चितवन की गति मन्द पड़ गई थी। मुस्कराते समय उसके कपोलों पर दो क्षीण रेखाएँ-मात्र उभड़ आती थीं; उनमें गड्ढे न पड़ते थे। हँसी उसके होठों में खिलखिलाहट का स्पन्दन भर न पाती थी, बल्कि कुछ हलकी-हलकी लहरें-मात्र पैदा कर के रह जाती थी। उसकी गोल मांसल बाँहों में एक अजीब खामोशी घर किए हुए थी। पूरन उसकी इस खामोश उदासी को उसका स्वभाव समझता था। क्योंकि जब से वह उसके यहाँ आया, तभी से उसे वैसा ही देखता आ रहा था। चञ्चल, चुलबुली और रोब गालिब करने वाली रजनी से उसकी तुलना करके वह हैरान हो जाता था। लेकिन यदि मंजू भी रजनी-जैसी ही होती, तो उसका गुजर ही उस घर में क्योंकर होता ? इस तरह मंजू जैसी भी थी, वैसी उसे बेहद पसन्द थी, क्योंकि उस पर उसका स्नेह था, कृपा थी। वह उसकी भीतरी पीड़ा को नहीं जान पाता था, जानने की कोशिश भी नहीं करता था, और शायद जान भी नहीं सकता था।

एक दिन दोपहर को जब रजनी और बलवन्त खा-पीकर अपने स्कूल चले गए थे और वह भी खा-पी चुका था, तो मंजू से पूछकर पुलिस-लाइन की ओर घूमने के लिए निकला। जब वह बड़े फाटक से निकलकर लाइन की ओर मुड़ रहा था, तो पीछे से किसी की आवाज आई—"आज तो पूरन मुझसे नाराज मालूम पड़ता है।"

पूरन ने पीछे मुड़कर देखा, तो वही दीवान सायकिल पर उसके पीछे आ रहा था, जो उससे अक्सर मिला करता था। हर बार घुमा-फिराकर वह उससे एक ही तरह के सवाल पूछता था। उसकी बातों से पूरन ऊब जाता था। लेकिन दीवान के पास उन फिजूल की बातों मे भी रस पैदा करने का एक तगड़ा साधन था और उसी की बदौलत वह पूरन को अपने सवालों के जवाब देने पर मजबूर कर देता था। जब कभी वह उससे मिलता, तो इनाम, घूस, दोस्ती अथवा भविष्य के किसी सम्बन्ध की भूमिका के रूप में, वह उसे कुछ न कुछ देता अवश्य था। होटल में मिला तो बिस्कुट, दूकान पर मिला तो मिठाई, यदि किसी अन्य जगह मिला, तो एकाध आने पैसे ही वह उसे जरूर देता था। कभी-कभी पूरन के मन में उसके प्रति सन्देह भी होता था।

"आखिर दीवान उससे इतना मेल क्यों बढ़ा रहा है?" पूरन के मन में कई बार यह प्रश्न उठा। किन्तु मिठाइयों और पैसों में अधिक आकर्षण रहता था, इसलिए वह इस प्रश्न को टाल देता था। हाँ, तो दीवान से पूरन की भेंट फाटक पर हुई। लेकिन आज उसने अधिक सवाल नहीं किये। उससे उसने केवल तीन-चार बातें पूछीं और उनके भी उत्तर जैसे वह पहले से जानता था।

"पूरन, तुमने खाना तो खा ही लिया होगा? आजकल तुम्हारी मालिकिन बनारस गई हैं न? तुम्हें तो इन दिनों खूब मौज है, क्यों? अब तो फिर चार बजे तक घूम-घामकर लौटोगे? अच्छा, रजनी और बलवन्त स्कूल से दोपहर को तो नहीं लौटते?" आदि प्रश्नों के उत्तर पूरन ने केवल 'हूँ' और 'नहीं' में दिया, क्योंकि उसे पुलिस-लाइन के परेड-ग्राउन्ड पर पहुँचने की जल्दी थी। और दीवान भी सम्भवतः कहीं पहुँचने के लिए बेताब हो रहा था। उसने पूरन को अपनी जेब से एक दुअन्नी निकालकर दी। पूरन फाटक के बाहर पुलिस-लाइन की ओर तेज कदमों से जाने लगा और दीवान ने अपनी सायकिल फाटक के भीतर की ओर मोड़ दी।

जनवरी की पन्द्रह तारीख ज्यों-ज्यों निकट आती गई, त्यों-त्यों कोतवाल साहब का समय अधिकतर बाहर ही बीतने लगा। दोपहर को सबके चले जाने के बाद महरिन भी चौका साफ करके अपने मुहल्ले में चली जाती थी। चूँकि घर की स्वामिनी अब मंजू ही थी और वह पूरन से काफी स्नेह रखती थी, इसलिए बाहर जाने में पूरन को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता था। मंजू उसे खेलने के लिए पुलिस-लाइन जाने से कभी भी न रोकती थी। दोनों छोटे-छोटे बच्चों को मंजू की सिपुर्दगी में छोड़कर पूरन चार बजे शाम तक परेड-ग्राउन्ड पर खेलता रहता था।

मुहल्ले के एक लड़के के पास घिसी हुई, नीलाम में ली गई एक पुरानी फुटबाल थी। उसी से मुहल्ले के दस-बारह अवारा लड़के दोपहर को भी खेला करते थे। उन्हीं के साथ पूरन भी खेल में भाग लेता था। उस खेल में उसका प्रतिद्वन्दी एक और लड़का था। उसका नाम था, सागर। खेल में पूरन और सागर रोज एक-दूसरे के खिलाफ टोली में रहा करते थे। सागर लखनऊ का बासिन्दा था, इसलिए वह अपने को पूरन से श्रेष्ठ समझता था और उसे देहाती कहा करता था। सागर अपने को फुटबाल खेलने के नियमों का विशेषज्ञ मानता था। और अक्सर खेलते समय बेईमानी भी करने से न चूकता था। इस बात पर पूरन से उसकी लड़ाई अक्सर हो जाया करती थी।

दोनों खिलाड़ियों के इस झगड़े ने एक दिन बहुत ही भयंकर रूप धारण किया। झापड़, घूँसे और मुक्कों के बाद दोनों एक दूसरे से भिड़ गए। कोई किसी से नौ नहीं था। कभी सागर नीचे जाता, तो कभी वह पूरन को नीचे ले जाता था। दोनों टोलियों के लड़के अपनी तरफ वाले 'हीरो' के ऊपर आने पर जोर-जोर से तालियाँ पीटते थे। अन्त में जब दोनों बहादुर थककर चूर हो गए, उनके अंग कई जगह छिल गए और खून निकलने लगा, तो आखिरी सलामी में दोनों ने एक दूसरे की कमीजें फाड़ डालीं। पूरन को अपनी चोटों की परवाह तो बहुत ही कम थी, किन्तु कमीज का फटना उसे बहुत अखरा। वह क्रोध

के मारे पागल हो उठा और अपने प्रतिद्वन्दी पर दुबारा टूट पड़ा। सागर पूर्णरूप से थक गया था, इसलिए पूरन के दूसरे आक्रमण का सामना न करके बेहताशा सड़क की ओर भागा। लड़कों ने तालियाँ बजाईं और पूरन ने एक लड़के की टूटी हाकी लेकर उसका पीछा किया। सड़क तक पहुँचते-पहुँचते दोनों फिर मिल गए। शेष लड़के हू-हू आवाज करते हुए वहाँ भी पहुँच गए। तमाशबीन लड़के इकट्ठा भी न होने पाए थे कि पूरन ने सागर को उसी फटी हाकी से दो-तीन बार जमा दिया। सागर ने भी झपटकर उसके हाथ से हाकी छीननी चाही, किन्तु उसी समय पूरन ने हाकी को खींचकर बहुत जोर से सागर की टाँग पर मार दिया। कड़ी चोट आने के कारण सागर उसी जगह चौंधियाकर गिर पड़ा। उसकी टोली के लड़के उसके चारों ओर जमा हो गए। पूरन की टोली वालों ने उसे इशारा किया और वह अपने बड़े फाटक पर पहुँच गया, तब उसे एक निर्भयता का अनुभव हुआ। लेकिन जब उसकी दृष्टि अपनी फटी हुई कमीज पर पड़ी तो उसे फिर भय और आशंका होने लगी : "आज मुझ पर जरूर मार पड़ेगी। यदि कोतवाल साहब ने अपने घर से निकाल दिया, तो मैं कहाँ जाऊँगा ?"

पूरन का हृदय किसी आने वाली विपत्ति के भय से कातर हो रहा था। बहुत ही धीमी चाल से वह अपने मालिक के बँगले की ओर चला। अहाते में भी उसने एक बार चारों ओर दृष्टि डालकर देखा। उसे भय था कि कहीं चौकीदार या कोई दूसरा नौकर उसकी फटी कमीज और उसके शरीर के घावों को देख न ले। मारपीट करने वाली अपनी उसी अक्खड़ आदत के कारण वह अपने गाँव में किसी की भी सहानुभूति और स्नेह न पा सका था। अनजाने में ही रामानन्द को मार देने के कारण उसे नन्दगाँव छोड़ देना पड़ा था। ये सब बातें उसकी समझ में अच्छी तरह आ रही थीं। वह इस सत्य को भी समझता था कि कोतवाल साहब ने उसे भोला-भाला और सीधा लड़का समझ कर अपने यहाँ रक्खा है। जिस दिन वे उसे बदमाश और झगड़ालू समझ

लेंगे, उस दिन उसको अपने यहाँ से निकालकर ही दम लेंगे। वह बार-बार अपने स्वभाव को कोस रहा था और ईश्वर से यही मनौतियाँ कर रहा था कि आज कोतवाल साहब उसे क्षमा कर दें।

अहाते भर में कोई आदमी नहीं था। बँगले के सामने आँवले के पेड़ पर एक श्यामा बड़े ही सुरीले स्वर में गा रही थी और पेड़ के नीचे दो जंगली कबूतर अपनी गर्दनों को शान से हिलाते हुए 'कुडुक्—कुडुड-कूँ' बोल रहे थे। अभी तक पूरन का लड़कपन, जो चिन्ता और भय से दबा हुआ था, कबूतरों को देखते ही मचल उठा। उसने रास्ते में पड़ा हुआ एक पत्थर उठा लिया और एक पेड़ की आड़ से कबूतरों पर निशाना मारा। कबूतरों का जोड़ा फड़फड़ा कर उड़ गया। पूरन के मुँहसे निकला : "अरे अरे रे बाल-बाल बच गए नहीं तो....."

सहसा उसकी दृष्टि बँगले के सामने रक्खी हुई एक सायकिल पर पड़ी। पूरन का मुँह खुला रहा गया, उसने समझ लिया कि कोतवाल साहब घर में आ गए। थोड़ी देर तक आँवले के नीचे खड़ा रहने के बाद उसने भीतर जाने का निश्चय किया। बिल्ली की भाँति दबे पाँव वह बरामदे में गया और यह देखने के लिए कि कोतवाल साहब क्या कर रहे हैं, उसने झाँककर गोलकमरे में देखा। उस समय सहसा पूरन को लगा, जैसे किसी ने उसका गला पकड़कर पीछे ढकेल दिया हो। जो दृश्य उसने गोल कमरे में अपनी आँखो से देखा, उस पर भी उसे विश्वास नहीं हुआ। उसे लगा—जैसे उसकी आँखें उसको धोखा दे रही हों। गोलकमरे में मंजू उसी दीवान के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए सोफे पर बैठी थी और दीवान उसके सामने एक आर्मचेयर पर बैठा हुआ था।

भावनाओं की तीव्रता और मानसिक उथल-पुथल के कारण पूरन के माथे पर पसीना आ गया। वह दरवाजे की आड़ में हो गया और अपनी मानसिक प्रतिक्रिया के बेग में वहाँ से लौट पड़ा। करीब सौ कदम बड़े फाटक की ओर तेजी से चलने के बाद उसके मन में फिर

एक प्रबल जिज्ञासा पैदा हो गई, जिसे दबाने में वह असमर्थ रहा। वह तेजी से लौट पड़ा और फिर दरवाजे के सामने आ गया। फिर झाँककर उसने गोल कमरे में देखा। अबकी बार सोफे पर टेक लगाकर खड़ी मंजू हँस रही थी और दीवान उसकी बाँहों को पकड़कर उसे भीतर की ओर खींच रहा था। पूरन की नसों में एक अजीब किस्म की सनसनाहट होने लगी और वह फिर बड़े फाटक की ओर लौट पड़ा। उसे अपनी कमीज की चिन्ता भूल गई और कितनी तरह की बातें सोचते हुए वह फिर पुलिस-लाइन की ओर चला गया। दो घंटे तक वह इधर-उधर बावलों की तरह घूमता रहा।

चार बजे जब वह लौटा, तो उसने मंजू को वैसी ही गम्भीर और शान्त पाया, जैसी कि वह उसे हमेशा देखा करता था। पूरन की फटी हुई कमीज और उसके शरीर पर घावों को देखकर उसने उसका कारण पूछा। आज न जाने क्यों पूरन को मंजू से बातचीत करने में शर्म लग रही थी। लेकिन जब उसने उससे खेल में मारपीट की बात बताई, तो मंजू के चेहरे पर किसी प्रकार के क्रोध या उपेक्षा का भाव नहीं आया। स्वाभाविक स्नेह से भीगी हुई रोज-जैसी ही मधुर आवाज उसके खूबसूरत होठों से निकली—"कोई बात नहीं पूरन, कमीज फट गई तो क्या हुआ ? मैं तुम्हें पैसे दे दूँगी, जाकर दर्जी के यहाँ सिलवा लेना। शाम को बलवन्त के साथ अस्पताल में जाकर अपनी चोटों पर दवा भी लगवा लेना। और देखो पूरन, यह शहर है। यहाँ के लड़के गुन्डे होते हैं। तुम्हें उनसे झगड़ा नहीं करना चाहिए।"

मंजू की दुलार-भरी इन्हीं बातों में पूरन को बहुत-कुछ मिल जाता था। बसन्ती के पवित्र स्नेह के साथ-साथ, इन बातों में वह अपनी माँ के प्यार को भी पा लेता था, जिसे उसके दुर्भाग्य ने उससे बचपन में ही छीन लिया था।

पन्द्रह तारीख को सुबह से शाम तक पुलिस-लाइन और परेड-ग्राउन्ड पर बेशुमार चहल-पहल रही। पूरी वर्दी पहने हुए, सिपाही कई लम्बी कतारों में मार्च करते हुए प्रातःकाल ही मैदान में डट गए

थे। आधे-आधे घंटे के व्यवधान से एक निश्चित अन्दाज पर टुकड़ियों के अधिकारी अनुशासन-आज्ञा देते थे और बैन्ड की मन्द-मन्द ध्वनि के साथ परेड शुरू हो जाती थी। आरोहावरोह से युक्त बैन्ड की मधुर ध्वनि सिपाहियों के पदक्षेप को एक निश्चित स्फूर्तिमय गति प्रदान कर रही थी। उस परेड को देखकर दर्शकों के हृदय में भी उत्साह का स्पन्दन भर जाता था।

ग्यारह बजे वाइसराय को 'गार्ड-आफ-आनर' दिया गया। वे एक ऊँचे-मंच पर बैठे और विभिन्न कार्य-क्रम का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। सैनिकों के कार्यक्रम में सर्वप्रथम गोरखा-रेजिमेन्ट के सवा सौ सिपाहियों का मृदंग और पखावज के वादन पर युद्ध-नृत्य हुआ। इस नृत्य में शामिल होने वाले सिपाहियों ने सफेद पैन्ट, कमीज और किर-मिच के जूते पहन रक्खे थे। सभी के सिर पर फैल्ट-कैप-नुमा टोपी थी और सभी की कमर में नीले रंग की पेटी थी, जिसमें बड़े-बड़े घुँघरू लगे हुए थे। चारों दिशाओं से दो-दो क्षण के व्यवधान से बिगुल की आवाज आने पर, लगभग पाँच मिनट तक किसी स्थान से धौंसे की ध्वनि सुनाई पड़ती रही और फिर मृदंग के गंभीर घोष के साथ युद्ध-नृत्य प्रारम्भ हुआ। नगी कटारें हाथ में लिए हुए गढ़वाली सिपा-हियों के मारू-गान का दूसरा कार्यक्रम था। तीसरा कार्यक्रम पूर्वी जिलों के सिपाहियों का एक विशेष ढंग का परेड था। इस परेड में दो लम्बी-लम्बी कतारों में कदम मिलाकर चलने वाले सिपाही कुछ दूरी पर बजते हुए बैन्ड के निश्चित ध्वनि-संकेतों पर चतुष्कोण, त्रिकोण, परिधि, स्वस्तिका-आदि स्थिति-चित्रों का निर्माण करते हुए मार्च करते थे। चौथे कार्यक्रम के अन्तर्गत कुछ टुकड़ियों-द्वारा शारीरिक व्यायाम के सुन्दर नमूने दिखाए गए। पाँचवाँ कार्यक्रम सैनिक गीतों के आधार पर विभिन्न प्रकार की कवायदों का था। अन्त में कई सामूहिक कार्यक्रमों का प्रदर्शन हुआ। दो बजे वाइसराय ने प्रस्थान किया।

कोतवाल साहब दिन भर अपने बड़े अधिकारियों के साथ रहे,

इसलिए वे भोजन करने के लिए घर न आ सके। रात को तीन बजे वाइसराय स्पेशल ट्रेन से दिल्ली जानेवाले थे। इसलिए रात को भी उनके लिए घर पहुँचना असम्भव ही था। उन्होंने घर पर खबर भेज दी कि रात को वे बाहर ही भोजन करेंगे।

रात को पुलिस-लाइन में ड्रामा होने वाला था। पूरन शाम से ही उस जगह के आस-पास चक्कर काट रहा था। ड्रामा शुरू होने से काफी समय पहले से ही वह जाकर स्टेज के सामने बैठ गया। परदा उठने में जब बहुत थोड़ा समय बाकी रह गया, तो एक सिपाही ने आकर पूरन से कहा—"चलो, तुम्हें दीवानजी बुला रहे हैं।"

थोड़ी ही देर में खेल शुरू हो जाने वाला था। पूरन इतनी अच्छी जगह को छोड़ना नहीं चाहता था। उसने चिढ़कर कहा—"जाकर दीवानजी से कह दो कि इस समय मैं कहीं नहीं जा सकता।"

सिपाही चला गया। पूरन निश्चिन्त हो गया, किन्तु थोड़ी ही देर बाद उसे फिर दीवान का चिरपरिचित स्वर सुनाई पड़ा—"पूरन, मुझसे नाराज हो गये क्या?"

पूरन को और कुछ कहने का समय न देकर दीवान उसके हाथ पर पाँच रूपए का एक नोट रखते हुए उससे बोला—"पूरन! अभी परदा उठने में काफी देर है। थोड़ी देर के लिए मेरे साथ बाहर आओ, एक बहुत ही जरूरी काम है।"

पूरन के हाथ में पाँच रूपया एक साथ पहले बार आया था। अपने लोभ को वह संवरण न कर सका। नोट को अपनी जेब में रखते हुए उठकर वह दीवान के साथ चल पड़ा। पडाल के बाहर जाकर दीवान उसका हाथ पकड़कर एक किनारे ले गया और चारों तरफ सतर्क दृष्टि से देखने के बाद, खाँसकर बहुत ही धीमे स्वर में बोलना शुरु किया: "पूरन! मैं तुम्हें अपने भाई से भी बढ़कर मानता हूँ। तुम पर जितना मेरा विश्वास है, उतना किसी पर भी नहीं। आज तुम्हारे हाथों में मैं एक बहुत बड़ा काम सौंपने वाला हूँ। देखो, पूरन, मेरी लाज तुम्हारे हाथ में है।"

पूरन की समझ में कुछ भी न आया। भय और आश्चर्य से दीवान का मुँह देखता हुआ वह जल्दी से बोला—"कौन-सा काम है दीवानजी ?"

अपने पीछे की ओर देखकर दीवान ने कुछ काँपते हुए स्वर में कहा—"धीरे बोलो पूरन, काम तो तुम्हें बहुत ज्यादा करना है और उसके लिए तुम्हें रुपया भी खूब मिलेगा। इस समय तुम मेरी एक चिट्ठी मंजू के पास पहुँचा दो और उसका जवाब लेकर इसी जगह मुझसे मिलो। उसके बाद मैं तुम्हें आगे का काम बताऊँगा। इतने काम के लिए तुम्हारी मजदूरी छः रूपए है।"

दीवान ने पूरन की जेब में एक रुपया और रख दिया। पूरन की समझ में ही न आया कि वह दीवान को क्या उत्तर दे। थोड़ी देर तक वह अपनी जगह पर चुपचाप खड़ा रहा। तब तक दीवान ने अपनी जेब से एक कागज निकालकर उसके हाथ में दे दिया और उसकी पीठ थपथपाते हुए वह बोला—"अब देर मत करो पूरन ! तुम्हें अभी और भी बहुत-से काम करने हैं। जाओ, इस पत्र को मंजू को देना। लेकिन घर में किसी अन्य व्यक्ति को इस बात की कानोंकान खबर न हो।"

पूरन का हाथ पकड़े हुए दीवन उसे फाटक तक पहुँचा भी आया। अब उसके पास कोई दूसरा चारा न था। कागज को अपनी जेब में रखकर वह पुलिस-लाइन के अहाते के बाहर सड़क पर चलने लगा।

जिस समय पूरन ने घर में प्रवेश किया, उस समय मंजू रसोई वाले कमरे में थी। रजनी गोल कमरे में सोफे पर बैठी हुई एक किताब के पन्ने उलट रही थी। बलवन्त भीतरी कमरे में दोनों छोटे बच्चों के साथ खेल रहा था। पूरन ने चुपचाप ले जाकर उस पत्र को मंजू के हाथ पर रख दिया। बड़ी ही उत्सुकता से मंजू ने पत्र को खोलकर पढ़ना शुरू कर दिया। पत्र लेने से पहले उसने पूरन से पूछा तक नहीं कि वह उस पत्र को कहाँ से लाया है ? जैसे वह उसका इन्तजार

कर रही थी। पत्र को पढ़कर उसने पूरन के कन्धों पर हाथ रखते हुए कहा—"पूरन ! तुम कितने अच्छे हो !"

पूरन की प्रशंसा में चार-छः वाक्य और कहने के बाद मंजू ने अपने कमरे में जाकर एक पत्र लिखा। पत्र को मोड़कर पूरन के हाथ में रखती हुई उससे बोली—"पूरन ! आज तुम्हें हमारी मदद करनी पड़ेगी। यह चिट्ठी मैं तुम्हें दे रही हूँ। इसे ले जाकर दीवानजी को दे देना। तब फिर जो कुछ वे कहें, मुझसे आकर बताना। और सुनो, देखो, यह बात कहीं खुलने न पाए, नहीं तो मेरी कुशल नहीं।"

पत्र लेकर जब पूरन लौटने लगा, तो उसने देखा कि मंजू के चेहरे पर प्रसन्नता की एक आभा दमक रही है, उसके अंग-अंग में चंचलता और स्फूर्ति प्रकट हो रही है। दीवान पूरन से पंडाल के बाहर उसी निश्चित स्थान पर मिला। बड़ी ही उत्सुकता से वह उसकी राह देख रहा था। पास के खम्भे में लगी बिजली की रोशनी में दीवान ने मंजू के पत्र को पढ़ा और फिर पूरन की ओर रुख करके वह बोला—"पूरन ! तुम हमसे नाराज तो नहीं हो न ?"

पूरन को दीवान की सकुनतकिया पर हँसी आ गई। उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—"पूरन, मैं समझ गया। तुम हमारा काम जरूर करोगे। देखो, अब मैं तुमसे अपने मतलब की बात कहता हूँ। तुम्हारी मदद के बिना हमारा काम पूरा न पड़ेगा। पूरन ! आज रात को एक बजे तुम मंजू का सामान लेकर उसके साथ डालीगंज स्टेशन पर आ जाना। वहाँ पर मैं तुम लोगों की इन्तजार करूँगा।"

ग्यारह बजे रात तक रजनी, बलवन्त, दोनों बच्चे, महरी सभी लोग गाढ़ी निद्रा में सो गए। केवल पूरन और मंजू जाग रहे थे। जितने जरूरी कपड़े और सामान थे, मंजू ने उन्हें एक चमड़े के सूटकेस में रख लिया था। अब वह एक छोटे-से किरमिच के हैण्डबेग में कुछ अन्य चीजें रख रही थी। पूरन कमरे के एक कोने में बैठा हुआ मंजू की हरकतों को देख रहा था।

पुलिस-लाइन में बारह बजे का घंटा बजा। मंजू ने पूरन की पीठ

पर स्नेह से हाथ फेरकर उसे शाबाशी देते हुए कहा—"पूरन ! तुम बहादुर लड़के हो, तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो। तुमने गिना तो है न ? यह घंटा बारह बजे का ही तो था ? एक बजे तक हम लोगों को डालीगंज स्टेशन पहुँच जाना है। क्यों, बोलो, अब तो हम लोगों को चलना चाहिए न ?..... अच्छा, थोड़ी देर रुको, मैं जरा देख आऊँ, कोई जाग तो नहीं रहा है ?"

दो-तीन मिनट के बाद मंजू सारे घर के सोते हुए लोगों को देख कर लौट आई। उसने अपना सूटकेस और छोटा-सा बिस्तर पूरन के सर पर रख दिया। हैण्डबैग को उसने अपने हाथ में लिया। गोल कमरे से होते हुए दरवाजे तक पूरन आगे-आगे और मंजू उसके पीछे-पीछे चली। दरवाजे से नीचे उतरकर पूरन जरा देर के लिए रास्ते से अलग खड़ा हो गया। वह उम्मीद करता था कि मंजू अब उसके आगे-आगे चलने लगेगी। किन्तु वैसा नहीं हुआ। पूरन ने देखा—

मंजू मुड़कर दरवाजे की ओर देख रही थी। थोड़ी देर बाद पूरन को एक लम्बी हिचकी के साथ मंजू के सिसकने की आवाज सुनाई पड़ी। उसे लगा, जैसे उस हिचकी के साथ मंजू के हृदय की गहराइयों में से कोई वजनी वस्तु अपनी पूरी ताकत के साथ बाहर आ जाना चाहती थी। उसका सिसकना कुछ ही क्षणों बाद एक करुण रुदन में बदल गया। पूरन ने उसे उदास देखा था, शान्त देखा था, किन्तु रोते हुए कभी नहीं देखा था। उसे महसूस हुआ कि उसके सीने के भीतर जैसे किसी ने कुन्द छूरी से खरोंच दिया हो, उसके गले के भीतर जैसे कोई तरल पदार्थ जमने लगा हो। मंजू ने अपनी उसी रोती हुई आवाज में कहा—"पूरन ! तुम यहीं खड़े रहो, मैं अभी आती हूँ।"

मंजू तेज कदमों से बरामदे में जा पहुँची। किसी पागल की भाँति उसने दरवाजे से झाँककर गोल कमरे में देखा, काफी अरसे तक वह देखती रही। वह क्या देख रही थी ? कम-से-कम पूरन के पास इस प्रश्न का कोई भी उत्तर न था। संभवतः मंजू कुछ भी नहीं देख रही थी। और गोल कमरे में देखने लायक ऐसी चीज थी ही कौन-सी ?

वही पुराना सोफासेट, मेज, कुछ कुर्सियाँ, मुर्झाए फूलों के गुलदस्ते, दीवालों पर कुछ तस्वीरें तथा कुछ अन्य सामान, जिन्हें मंजू वर्षों से देखती चली आ रही थी। इन वस्तुओं में कोई ऐसा आकर्षण नहीं था, जो मंजू को रोक सकता। उन वस्तुओं से सम्बन्धित ये तो उसकी भावनाएँ-मात्र थीं, जो उसके पैरों की जंजीर बन गई थीं।

करीब दस मिनट के बाद दरवाजा बंद करके मंजू लौट पड़ी। पूरन के पास आकर उसने फिर दरवाजे की ओर मुँह फेर लिया और दोनों हाथ जोड़कर उस घर को प्रणाम किया। पूरन यह तो न समझ सका कि उसने किसे प्रणाम किया, किन्तु जब उसने उससे कहा, "अब जल्दी करो पूरन!" तब फिर वह जोर से फफक-फफककर रोने लगी थी। उसका रोना सुनकर पूरन के गले के भीतर की जमी हुई चीज जैसे पिघलने लगी और उसने सिसकियों के साथ अपने गालों पर भी ढुलकती हुई गरम-गरम आँसुओं की बूँदों को महसूस किया। फिर मंजू आगे-आगे और पूरन उसके पीछे-पीछे चलने लगा। मंजू बहुत ही तेजी से चल रही थी।

जब दोनों बड़े फाटक के निकट उस गोल चबूतरे के पास पहुँचे, तो सहसा मंजू फिर रुक गई और अपने बँगले की ओर मुड़कर देखने लगी। पूरन भी रुक गया। दोनों खामोश थे। सारा वातावरण रात की खामोशी में एक रहस्य छिपाए हुए था। बँगलों और पेड़ों की ऊपरी सतह से कुछ ऊपर आकाश में वितान की भाँति कुहरे की एक धूमिल चादर लटकी हुई थी। नगर का कोलाहल एकदम शान्त था। किसी मरते हुए भारी जीव की टूटती हुई आखिरी साँस की तरह बिजलीघर की 'साँय-साँय' आवाज दूर से सुनाई पड़ रही थी। बीच-बीच में कुत्तों के भौंकने का स्वर भी सुनाई दे जाता था। चबूतरे के पास वाले खम्भे में बिजली का प्रकाश मन्द पड़ गया था। जैसे उसे भी शीत लग गया था। बादामी रंग का चेस्टर पहने और सिर को प्याजी रंग के एक मफलर से ढँके हुए मंजू चबूतरे पर खड़ी थी। उसके पास ही

एक पुरानी कोट और निकर पहने हुए पूरन सर्दी से ठिठुरता हुआ खड़ा था।

लगभग पाँच मिनट तक चुपचाप खड़ी रहने के बाद मंजू सहसा बोल पड़ी—"पूरन, मेरे हृदय में तूफान उठ रहे हैं। इस समय मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ? यह घर जैसे मुझे अपनी तरफ खींच रहा है। लेकिन इस घर में फिर लौटकर मैं नहीं जा सकती। यह असम्भव है। यह मुझसे न होगा, पूरन! यह मुझसे न होगा....."

आगे के शब्द मंजू की जोर-जोर की सिसकियों में खो गए। अपनी साड़ी के छोर से आँसुओं को पोंछती हुई तेज कदमों से वह बाहरी फाटक की ओर बढ़ने लगी। पीछे-पीछे पूरन भी चल पड़ा। थोड़ी ही देर में वे दोनों कुहरे से लिपटे हुए रात के अँधेरे में विलीन हो गए।

पाचवाँ अध्याय

क्वार के अन्तिम दिनों में पूरन अपने गाँव लौटा था। इस साल बरसात देर से खत्म हुई थी। नन्दगाँव के सभी लोग रबी की फसल के लिए खेतों को तैयार करने में लगे हुए थे। वर्षा-सुहागिन नन्दगाँव के सीवान में धानी चूनर पहनकर आई थी और शस्य-श्यामल धान्य-परिधान में यहाँ से विदा हुई थी। उसके मांगलिक आगमन से किसानों के घरों की श्री बढ़ गई थी। खरीफ की फसल में सय था, दाने पुष्ट थे और रबी की फसल का भी भविष्य अच्छा था। इसलिए घर-घर में खुशी थी, आशाएँ और उमंगें थीं।

जब से पूरन गाँव में आया, तब से वहाँ की चहल-पहल और भी अधिक बढ़ गई। दोपहर के समय खरगोश का शिकार होता और शाम को कभी कीर्तन, कभी रामायण, तो कभी कौवाली होती। रात की शारदीय चाँदनी में दो-तीन डोंगी नावें आमी की प्रशान्त धारा में छोड़ दी जाती थीं और उस पार की जमुहानी के खोभों से होते हुए शंकरगढ़ की तलहटी तक पूरन अपने जवान साथियों के साथ जलयात्रा करता और सबेरे अच्छे किस्म की मछलियाँ लेकर लौटता।

न जाने कितनी पीढ़ियों की परम्परा से नन्दगाँव के जवानों का गीत शरद ऋतु की रातों में आमी की लहरों में स्पन्दन भरता था, उस पार जामुन के बनों में गूँजता था और शंकरगढ़ तक नदी की तलहटी में बसे हुए गाँवों के जवान दिलों में अनुराग जगाता था। किन्तु पिछली बीमारी में नन्दगाँव के कितने ही युवक उसी आमी के किनारे, मिट्टी में सदा के लिए सो गए और उनके गीत भी कुछ वर्षों के लिए विलीन हो गए थे। शरद ऋतु की चाँदनी रातों में आमी की लहरें सिसकियाँ भरती थीं और उस पार जामुन का बन उसाँसें खींचता था। पूरन के लौट आने से गाँव का जीवन लौट आया था।

एक बार मरजादपुर जाकर पूरन लौट आया था। दो-दिन बाद फिर वह बसन्ती को लाने के लिए वहाँ जाने वाला था। उसने तो पहले ही बार अपनी दीदी को साथ ले आने का आग्रह किया था, लेकिन बसन्ती के ससुर वृद्ध चौधरी विना शुभ लग्न के अपनी पतोहू को बिदा करने के लिए तैयार नहीं थे। पूरन कई दिनों तक अपने बहनोई का पाहुन बनकर मरजादपुर में रहा और वहाँ के पंडित से एक शुभ दिन सोधवाकर बिदा की तिथि निश्चित करके नन्दगाँव लौट आया था।

बसन्ती के ससुर दुर्बल चौधरी के एक पट्टीदार थे; त्रिबेनी महतो। दोनों घरों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। छोटी-मोटी चीजों से लेकर हजार, पाँच-सौ तक का लेन-देन आपसी विश्वास पर चलता था। अभी पिछले महीने में बसन्ती के ससुर ने एक गोई बैल ग्यारह सौ रूपयों पर पटाया था। उस समय उनके पास केवल चार-सौ रुपया मौजूद था। चार बीघे ऊख खेत में खड़ी थी, जिसकी कीमत गए-बीते भी हजार, बारह सौ रुपए से कम न थी। लेकिन गन्ने के बिकने में उस समय तीन महीने की देरी थी और बैल न खरीदने से कातिक की बोआई के लिए खेत नहीं तैयार हो सकते थे। ऐसे समय पर दुर्बल चौधरी ने अपनी कठिनाइयों का एक इशारा-मात्र त्रिबेनी महतो से कर दिया था और उन्होंने तुरन्त सात सौ रुपया अपने घर से लाकर बसन्ती की सास के हवाले कर दिया था। दूसरे दिन वे दुर्बल चौधरी के साथ बैल खरीदवाने के लिए भी गए थे और अपनी मोल-भाव करने की निपुणता से पहले की पटाई हुई कीमत ग्यारह सौ में से पच्चीस रुपया कम भी करा लिया था। शाम को त्रिबेनी महतो के साथ जब दुर्बल चौधरी बैलों की शानदार गोई लेकर वापस लौटे, तो गाँव के कितने ही लोगों को उन दोनों किसानों की मैत्री से डाह होने लगा था।

पिछली बीमारी की विभीषिका से मरजादपुर भी न बच सका था। काल की उस भयंकर छाया ने कितने ही लालों को अकाल-मृत्यु के अन्धकार में छिपा लिया था। त्रिबेनी महतो के इकलौते, जवान बेटे

को भी काल की उस विकराल छाया ने समेट लिया था। पुत्रशोक में महतो की कमर टूट गई थी। उन्हें इतना भारी सदमा लगा था कि उसका घाव आज छः वर्षों के बाद भी न भर पाया था। अब उनकी केवल एक सन्तान बची थी कौशल्या। वही अपने माता-पिता के जीवन का एकमात्र आधार थी। कौशल्या की आयु सत्रह वर्ष से कुछ ऊपर थी। लेकिन अभी तक त्रिबेनी महतो ने उसका घर-वर ढूँढ़ने के लिए कभी घर के बाहर पाँव तक नहीं दिया था। उनका पुत्रशोक इतना भारी था कि पुत्री के पाँव पूजने की साध उसके नीचे दब-सी गई थी।

पूरन को त्रिबेनी महतो ने कई दिन अपने घर पर निमंत्रित किया था। उसका हृष्ट-पुष्ट शरीर तो महतो के बेटे से काफी मिलता-जुलता ही था, उसकी सरल और शिष्टतापूर्ण बातों में भी वे अपने पुत्र का बहुत-कुछ प्रतिरूप देखते थे। पूरन के स्वभाव से वे अत्यधिक प्रभावित थे। पहले ही दिन जब पूरन उनके दरवाजे पर गया, तो उसके लिए त्रिबेनी महतो गगरा और उबहन लेकर पानी निकालने के लिए कुएँ पर गए। लेकिन पूरन ने बढ़कर उनके हाथ से रस्सी और घड़ा ले लिया। जिस समय पूरन कुएँ से पानी निकाल रहा था, उस समय कौशल्या और उसकी माँ, दोनों अपने दरवाजे पर खड़ी थीं। उन दोनों ने भी, पूरन की अत्युक्तिपूर्ण बढ़ी-चढ़ी प्रशंसा को एक अफसर की हैसियत से ही सुन रक्खा था। उनका अन्दाज था कि पूरन कोई घमंडी, गुमसुम और गाँव के लोगों से भिन्न प्रकार का आदमी होगा। किन्तु उसकी दो-चार बातें सुनकर तथा उसके विनम्र व्यवहार को देखा कर उनकी धारणा एकदम बदल गई। उन्हें वह अपने बीच का, अपनों-जैसा ही लगा। उस दिन से, जब-जब पूरन त्रिबेनी महतो का अतिथि रहता, तब-तब कौशल्या की माँ गाँव के बारी को घर का काम करने के लिए बुला लेती थी। मरजादपुर की पहली जवाई में पूरन त्रिबेनी महतो के यहाँ भी कई दिन मेहमान रहा।

अपनी दीदी को लिवा लाने के लिए जब पूरन दुबारा मरजादपुर जाने

को था, तो एक दिन पहले से ही उसके हृदय में बड़ी ही उत्सुकता थी। अपनी दीदी को नन्दगाँव ले आने का हर्ष तो उसे था ही, त्रिबेनी महतो के घर में दो भोली आँखों को देखने की उसकी लालसा भी प्रबल हो उठी थी। पिछले बार कौशल्या और पूरन की पर्याप्त देखादेखी हुई थी। कौशल्या ही क्या, मरजादपुर की सभी लड़कियों को उसने अच्छी तरह देखा था। चूँकि उस गाँव में उसने बहन दी थी और इस रिश्ते से वहाँ के युवक-युवतियों की मीठी गालियाँ सुनना, उसका हक था। अकेले में तो कौशल्या उससे बोलने में संकोच करती थी, किन्तु अपनी सखियों के साथ वह काफी मुखर हो जाती थी।

एक दिन त्रिबेनी महतो मटर के बीज बदलने के लिए किसी दूसरे गाँव को गए हुए थे। दोपहर को भोजन करके पूरन उन्हीं की चौपाल में सोया हुआ था। जब वह सोकर उठा, तो कौशल्या कुछ शरमाती, कुछ मुस्कराती-सी आकर उससे बोली—"चलो पहुना, घर में माँ बुला रही हैं। पानी पी लो।"

देहरी के भीतर खड़ी दरवाजे से कई अन्य लड़कियाँ झाँक रही थीं। कौशल्या के साथ जब पूरन घर में पहुँचा, तो वहाँ उसकी माँ नहीं थी। हाँ, उसकी सखियाँ टोली बाँधकर अवश्य जमा थीं। पूरन को देखकर सब ने जोर का कहकहा लगाया और काफी देर तक उस घर में उनकी हँसी गूँजती रही। पूरन की समझ में ही न आ रहा था कि आखिर बात क्या है? वह कुछ घबड़ा-सा गया और अपना सर नीचे कर लिया। खूब हँस लेने के बाद सभी लड़कियों ने एक एक करके पूरन पर फबतियाँ कसना शुरू किया। एक ने कहा—"पहुना का सोहाग अचल रहे।"

दूसरी ओर से आवाज आई—"कितनी अच्छी दुलहन है, लेकिन शर्म जरा कम करती है।"

तीसरी बोली—"इसके लिए क्या करोगी? नया रिवाज ही ऐसा है!"

इन टिप्पणियों के बीच-बीच में हँसी के फुहारे भी छूटते जाते

थे। इतने में बाहर से किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी। एक लड़की ने बढ़कर देहरी में देखा और उसका इशारा पाते ही सारी लड़कियाँ फुर्र हो गईं।

भीतर आने पर कौशल्या की माँ ने पूरन से पूछा—"भइया, इन शैतानों ने क्या हुरदंग मचा रक्खा था?"

किन्तु उसने जब पूरन को सामने से देखा, तो वह भी अपनी हँसी न दबा सकी। कौशल्या की माँ-जैसी गम्भीर स्त्री को अपने पर हँसते देखकर पूरन झेंप गया। उसके मुख पर शर्म की लाली दौड़ गई। कौशल्या की माँ उसके भावों को ताड़ गई। अपनी हँसी को दबाकर क्रोध का अभिनय करती हुई वह बोली—"मैं समझ गई, यह सब इसी कलमुँही गेनिया और कौशल्या की शरारत है। मैं देख रही हूँ, इन सब का रवैया दिन-दिन बिगड़ता जा रहा है। भला यह भी कोई मसखरी करने का ढंग है? अच्छा भइया, इन सब की तो आज शामत आ ही गई है, तुम अब अपना माथा धो डालो।"

अपनी बात कहकर कौशल्या की माँ आँगन में पानी लेने के लिए उतरी। पूरन ने अपने ललाट पर हाथ फेरा, तो उस पर चिपका हुआ एक लाल रंग का बुन्दा, नीचे जमीन पर गिर पड़ा। सामने ताख पर रक्खे हुए शीशे में जब उसने अपना मुँह देखा, तो उसे स्वयं अपनी मुद्रा पर हँसी आ गई। उसके लम्बे-लम्बे बालों के बीच में माँग निकालकर उसमें लड़कियों ने सिन्दूर भर दिया था।

दूसरे बार पूरन मरजादपुर गया, तो उसे वहाँ केवल ढाई दिन रहना था। 'मरजाद' के दिन गाँव की बारिन गेनिया ने एक विचित्र स्वाँग रचा। गाँव के लोगों ने पूरन से उसका कानपुर वाला पता तो पूछ ही लिया था। बस, गाँव के डाक-बाबू से तार के एक सादे परचे पर नन्दगाँव के पते से पूरन के नाम एक तार लिखवाया गया कि वह फौरन कानपुर लौट आए। थोड़ी रात बीतने पर पीतल की बड़ी-बड़ी बटनों वाला खाकी रंग का कोट, पायजामा नुमा खाकी पैन्ट और पुराना पम्प का जूता पहने, बढ़िया साफा लगाए, मुँह चिपकाए,

चमड़े का झोला और बर्छा लिए हुए गेनिया डाकिया के वेष में पूर्ण रूप से सुसज्जित हो गई।

रात के करीब आठ बजे दुर्बल चौधरी के दरवाजे पर मरजादपुर के बहुत-से लोग पूरन के साथ बैठे हुए हलकी-फुलकी बातें कर रहे थे। उसी समय बड़े रोब-दाब के साथ गेनिया डाकिए के वेश में उन लोगों के सामने आई। उसने आते ही दुर्बल चौधरी का घर पूछा, और फिर मिलेट्री के जमादार पूरनसिंह के विषय में प्रश्न किया। गाँव के सब लोग उसके सामने जा पहुँचे। पूरन की तरफ इशारा करके उन लोगों ने डाकिए को बताया। डाकिए ने फौरन अपने चमड़े के झोले से निकालकर लिफाफे में बन्द तार का परचा पूरन के हाथ में रख दिया। पूरन अँगरेजी बहुत कम जानता था, इसलिए गाँव के अँगरेजी पढ़ने वाले लड़के बुलाए गए। उन्होंने पढ़कर पूरन को तार का मतलब समझाया। उसके बाद गेनिया ने आठ रुपया तेरह आने की रसीद पूरन के हवाले की। पूरन ने उस रसीद का मतलब डाकिए से पूछा।

गेनिया अपना जवाब रटे हुए थी। रटे-रटाए अपने उन्हीं वाक्यों को उसने अभिनयात्मक ढंग से कहना प्रारम्भ किया—"हुजूर। एक दूसरा डाकिया नन्दगाँव में आप के दौलतखाने पर गया हुआ था। लेकिन वहाँ आप नहीं मिले। तार बहुत जरूरी था। रुद्रनगर की स्पेशल डाक से आप को यह तार मिल रहा है। उसी के खर्चे की यह रसीद है। आप को यह रुपया अपने विभाग से इस रसीद को दिखाते ही मिल जायगा। अब मुझे देर हो रही है गरीब परवर, जल्दी कीजिए।"

गेनिया पूरन से कई बार बातचीत कर चुकी थी। उसके उच्चारण के लहजे और स्वर से पूरन ने उसे अच्छी तरह पहचान लिया। लेकिन उस स्वाँग का मजा वह किरकिरा नहीं करना चाहता था। मरजादपुर के जितने लोग वहाँ पर बैठे हुए थे, वे सभी उस स्वाँग को सफल बनाना चाहते थे। वातावरण को स्वाभाविक बनाने के लिए वे सभी लोग भरपूर कोशिश कर रहे थे। ऐसे अवसर पर पूरन ने अपनी

चालाकी दिखाने के बजाय कुछ देर के लिए बेवकूफ ही बन जाना उचित समझा। उसने अपनी जेब से दस रूपए का एक नोट निकालकर उस बने हुए डाकिए के हाथ पर रख दिया। रूपया पाकर डाकिया बड़े ही अनुनय के स्वर में कुछ इनाम भी माँगने लगा। तब गाँव के कुछ लोगों ने बनावटी क्रोध से उसे डाँटना शुरू किया—"कौन-सी इतनी बड़ी खुशी की खबर ले आए हो, जो तुम्हें इनाम दिया जाय? लाओ, एक रूपया वापस करो। नौ रूपये में से बचे हुए तीन आने तुम्हारे इनाम के रहे।"

डाकिये ने झट अपने चमड़े के झोले में से एक एक रूपया निकालकर पूरन के हाथ पर रख दिया और तेजी से मुड़कर दूसरी तरफ जाने लगा। दालान में छिपी हुई स्त्रियों और लड़कियो की हँसी अब धीरे-धीरे सुनाई पड़ने लगी थी। अब और आगे पूरन मनोरंजन का साधन नहीं बनना चाहता था। दूसरे स्वाँग का लक्ष्य भी लगभग पूरा हो गया था। उसने डाकिए को पूरा इनाम देने के लिए फिर बुलाया। डाकिया दुबारा खुशी-खुशी उसके सामने आ पहुँचा। पूरन ने उस बचे हुए एक रूपए को उसके हाथ पर रख दिया। ऐसा करते समय उसने उसकी हथेली को भी धीरे से दबा दिया। गेनिया समझ गई कि उसका पोल खुल गया। तुरन्त उस जगह से वह दबे पाँव खिसकने की कोशिश करने लगी। उसी समय बड़े ही इतमीनान से उसके निकट पहुँचकर पूरन ने आहिस्ता से उस डाकिए के सर से उसका साफा उतार लिया। गेनिया अपना चमड़े का झोला, भाला और जूता-आदि फेंककर दुर्बल चौधरी के घर में भागी। भीतर-बाहर सभी जगह स्त्री-पुरुषों के कहकहे गूँज उठे। मरजादपुर में इस स्वाँग की चर्चा कई दिनों रही।

बसन्ती जब नन्दगाँव आई, तो वहाँ कातिक की बोवाई शुरू हो गई थी। लोग मटर और चने बो रहे थे। पूरन के पास कुल पन्द्रह बीघे खेत था, जिसमें से छः बीघे तो उसके चाचा लोचन चौधरी के कब्जे में था और शेष नौ बीघे पर जमींदारों ने कब्जा कर लिया था।

उसके चाचा ने तो मरजादपुर जाने के पहले ही उससे कहा था कि वह अपने खेतों के जोतने-बोने का इन्तजाम करे। उस समय पूरन ने उस बात को टाल दिया था, लेकिन बसन्ती जब नन्दगाँव आ गई, तो उसने अपने चाचा से बातचीत करके उन खेतों को बटाई पर दे दिया। बसन्ती के अनुरोध के कारण लोचन चौधरी भी एक फसल सँभाल लेने को तैयार हो गए। बसन्ती की हार्दिक इच्छा थी कि पूरन नन्द-गाँव में रहकर अपनी गृहस्थी बसा ले और उस गृहस्थी को बसाने के लिए खेत सब से अधिक जरूरी थे। इसी कारण वह पूरन को अपने खेतों पर जल्द-से-जल्द कब्जा कर लेने के लिए उकसाने लगी।

पूरन मंगल चौधरी और लोचन चौधरी के साथ लगातार कई दिन तक उन जमींदारों से मिला, जिनके कब्जे में उसके शेष नौ बीघे खेत पड़े हुए थे। इनमें से छः बीघे तो पूरन ने कुछ रूपये देकर छुड़ा लिये, किन्तु बाकी तीन बीघों पर एक जमीदार ने अपना नाम चढ़वा कर पक्का कर लिया था। इसलिए उन तीन बीघों पर कोई कार्रवाई करने से पहले किसी वकील से राय ले लेनी आवश्यक थी। फिर भी उस समय बसन्ती के प्रयत्नों की वजह से पूरन अपने बारह बीघे खेतों का पुनः काश्तकार हो गया। अपने पुरखों की उस धरती को जोतने-बोने का अवसर उसे फिर मिल गया, जो न जाने कितनी पीढ़ियों से उनके जीवन का आधार थी।

कातिक की शिवरात्रि को शंकरगढ़ का बहुत बड़ा मेला लगता था। आस-पास के गाँवों के अतिरिक्त दूर-दूर के लोग भी शंकरगढ़ के शिवजी की पूजा करने के निमित्त वहाँ इकट्ठे होते थे। वैसे तो हर सोमवार और हर महीने की दोनोंत्रयोदशियों के रोज वहाँ काफी भीड़ जमा होती थी, किन्तु वर्ष में तीन बार शंकरगढ़ का मेला देखने-योग्य होता था। सबसे बड़ा समारोह तो फागुन की महाशिवरात्रि के दिन होता था, लेकिन कातिक और बैसाख की तेरस को भी बहुत बड़ा मेला लगता था। मेले के रोज शंकरगढ़ के आस-पास आठ-दस मील की परिधि का आकाश-मंडल स्त्रियों के मधुर ग्रामगीतों से गूँज उठता था।

गाँव का सीवान प्रकृति की गोद में पलने वाली मुग्धा कुमारियों और बधुओं की रंग-बिरंगी लहराती हुई साड़ियों से चित्रित हो उठता था।

गाँव के अमीर, युवक वृद्ध; स्त्री, पुरुष, हिन्दू, मुसलमान, सभी उस मेले में जाते थे। मनोरंजन के अतिरिक्त शंकरगढ़ के मेले में देवपूजन का भी महत्त्व रहता था। इन तमाम मेलों के अतिरिक्त हर तीसरे वर्ष जब मलमास लगता था, तो पूरे एक महीने के लिए शंकरगढ़ बहुत ही मनोहर बन जाता था। मलमास हर तीसरे वर्ष बारह महीनों के अतिरिक्त एक खास महीना पड़ता है, जिसमें शिवजी के पूजन का विशेष माहात्म्य होता है। दूर-दूर के पंडित, कथावाचक, साधू, संन्यासी, दूकानदार, व्यापारी, तमाशबीन वहाँ महीने भर के लिए इकट्ठे होते थे। भावनाओं की भाँति बिखरी हुई पर्णकुटियाँ जगह-जगह छाई रहती थीं और उनमें कहीं रामायण, कहीं राधेश्याम, कहीं श्रीमद्भागवत, कहीं पुराणों की कथाएँ पंडित लोग जनता को सुनाया करते थे।

इस वर्ष कार्तिक की शिवरात्रि के समय रबी फसल की बोआई शुरू हो गई थी। फिर भी मेले की रौनक और चहल-पहल में कुछ भी अन्तर नहीं आया। हाँ, भीड़ अवश्य कम थी और स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक थी। नन्दगाँव से भी चारों टोलों के लोग सजधज के साथ मेला देखने गए। रेशम-टोला की जीनत और सुन्नत, कुर्मियाने की पार्वती, गुल्जार-टोले की कमला और चमरौटी की पारो, अपने-अपने टोले की कुमारियों के साथ एक झुण्ड में शंकरगढ़ की ओर चलीं। बसन्ती की तरह ससुराल आई-गई गाँव की लड़कियों का दूसरा समूह था। युवकों की गोल अलग थी। मरजादपुर से भी लोग मेला देखने के लिए शंकरगढ़ आए हुए थे। कौशल्या और गेनिया के साथ वहाँ की विवाहित और अविवाहित लड़कियाँ, अपने गाँव के होनहार युवकों, स्वाभिमानी भाइयों के साथ, मेले में आई हुई थीं।

मेले में पहुँचने पर पूरन की आँखों में एक उत्कट लालसा थी, मरजादपुर की एक मांसल, सुडौल मूर्ति को देखने के लिए उसके

हृदय में एक मधुर बेचैनी थी। नन्दगाँव के लोग जब मेले मे पहुँच गए, तब सर्वप्रथम उन्हें स्नान करना था और उसके उपरान्त पूजा करके ही मेले का कोई कार्य-क्रम प्रारम्भ हो सकता था। बिना पूजा किए कोई भी अन्न-जल नहीं ग्रहण करता था। शंकरगढ़ में स्नान का भी माहात्म्य था। वहाँ पर एक बहुत बड़ा और गहरा तालाब था, जिसका नाम उमाकुण्ड था। ऐसा कहा जाता था कि शैलराज हिमवान् की पुत्री उमा की आज्ञा से उस कुण्ड को शंकर के किसी अभिशप्त, बल-शालीगण ने शापमुक्त होने के लिए अकेले खोदा था।

शिवजी के सबसे बड़े मन्दिर का दरवाजा पूरब की ओर था और जहाँ पर ऊपर से उतरती हुई मन्दिर की सीढ़ियाँ समाप्त होती थीं, वहीं से उमाकुंड के नीचे जाने वाली सीढ़ियों का प्रारम्भ होता था। शंकर-गढ़ में उमाकुंड का ही जल शिवजी को चढ़ाया जाता था। सभी लोग जो वहाँ जाते थे, सबसे पहले देवपूजन में ही लगते थे। वहाँ के सभी मन्दिरो में पूजन करना कोई आसान काम नहीं था। संख्या में, छोटे-बड़े सब मिलाकर वहाँ पर बत्तीस मन्दिर से कम न थे। इसलिए वृद्ध और बालक तो अधिकतर बड़े मन्दिर में शिवजी की पूजा फूल, अक्षत, जल आदि चढ़ाकर ही समाप्त कर देते थे। किन्तु वे युवक और युवतियाँ जिनके दिलों में उमंगे थीं, जिन्दगी के सुनहरे हौसले थे, और जिनकी भावनाओं में भविष्य के अरमानो का बल था, वे छोटे-बड़े सभी मन्दिरों में देवताओं की पूजा करते थे। फूल, अक्षत, फल, बेलपत्र और दूध आदि चढ़ाते थे।

वहाँ के ग्रामीणों का ऐसा विश्वास था कि शंकरजी की पूजा करने से उनकी मनोकामना अवश्य सिद्ध होगी। शिवजी औघड़दानी जो ठहरे! वहाँ के मन्दिरों और देवताओं की पूजा एक प्रकार से ग्रामीण जनता के अरमानों की पूजा कही जा सकती थी। किसी कुँआरी की साँसों में किसी अनजान युवक की कामना थी, तो कोई अपने पहचाने प्रेमी की जीवन-संगिनी हो जाने के लिए अपनी मनौतियाँ लेकर आई थी। किसी के हृदय में अपनी गोद न भरने के कारण एक सन्तान के

लिए तड़पते हुए अरमान थे, तो कोई अपनी जीवित सन्तान के कुशल-क्षेम के लिए आर्त होकर श्रद्धानत था।

नन्दगाँव के लोग भी सीढ़ियों से तालाब में उतरे। सभी लोगों ने स्नान करके अपने-अपने लोटों में जल भरा, घाट पर बैठे हुए मालियों की दूकानों से फूल, बेलपत्र तथा पूजा की अन्य सामग्रियाँ लीं और एक झुंड बनाकर वे लोग बड़े मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। आगे गाँव की लड़कियाँ थीं और उनके पीछे भीड़ को रोकने के लिए युवक-समुदाय था। जब सभी लोग बड़े मन्दिर में जल चढ़ा चुके, तब पार्वती-मन्दिर में जाने की तैयारियाँ होने लगीं। वहाँ की पूजा के निमित्त सब लोगों ने धूप-दीप इत्यादि सामग्रियाँ तैयार कीं।

मरजादपुर के लोग कुछ देर पहले ही शंकरगढ़ पहुँच गए थे। कौशल्या तथा वहाँ की कई अन्य लड़कियों ने शिवजी के बड़े मन्दिर में पाँच-पाँच लोटे जल चढ़ाया था। पार्वती-मन्दिर में भी दीप जलाने और पाँच-पाँच लोटे जल चढ़ाने की उन सब की मनौती थी। उतनी भीड़ में यह काम बहुत ही दुस्तर था। शिव के बड़े मन्दिर में उन सब को पाँच बार प्रवेश कराने के लिए मरजादपुर के युवकों को लोहे के चने चबाने पड़े थे। सभी पसीने से तर हो गए थे। लेकिन उनकी कुँआरी बहनों की वे मनौतियाँ भी तो अत्यन्त ही बेश-कीमती और पाक थीं। तो, शिव-मन्दिर में जल चढ़ा लेने के बाद कौशल्या और गाँव की दूसरी लड़कियाँ पूजा की सामग्री लेकर पार्वती-मन्दिर की ओर चलीं। मरजादपुर के युवक भीड़ से उन सब को बचाने के लिए उनके साथ-साथ चले।

जिस समय नन्दगाँव के लोग पार्वती-मन्दिर की निचली सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे, उस समय कौशल्या अपनी सखियों के साथ पार्वती-मन्दिर के द्वार पर पहुँच गई थी। अन्दर भीड़ होने के कारण उन सब को मन्दिर के विशाल द्वार के सामने थोड़ी देर के लिए रुक जाना पड़ा था। जिस समय कौशल्या-आदि ने मन्दिर के भीतर प्रवेश किया, तब तक नन्दगाँव के लोग भी मुख्य द्वार के समीप पहुँच गए।

मन्दिर के भीतर विशाल दीवालों पर देवी-देवताओं की अनगिनत छोटी-बड़ी मूर्तियाँ बनी हुई थीं। मन्दिर के मध्य में गिरिजा-पार्वती की संगमरमर से निर्मित एक सुन्दर मूर्ति स्थापित थी। पार्वती की पूजा कर लेने के बाद जिस क्षण कौशल्या मन्दिर की दीवारों पर बनी हुई देवमूर्तियों के दर्शनार्थ मुड़ी उसी क्षण पूरन ने मन्दिर में प्रवेश किया। चार लालसा-भरी आँखें आपस में टकराईं। पूरन की दायीं हथेली पर पूजा का जल था और बाईं पर चंदन, अक्षत तथा बेलपत्र-आदि का दोना था। मुख्य द्वार के रास्ते से वह जरा बगल हटकर खड़ा हो गया। नन्दगाँव के लोग आगे बढ़ गए। देव-मन्दिर में कोई किसी से बोलता नहीं था। सभी के मुख पर वरदायिनी उमा का ही वास था। कौशल्या की सखियाँ भी उस समय परिक्रमा करने के लिए दूसरी तरफ बढ़ गई थीं। मन्दिर के उस कोने में, जहाँ पर पूरन और बसन्ती खड़े थे, वहाँ केवल तीन मूर्तियाँ थीं। एक ओर पूरन और उसके सामने खड़ी कौशिल्या थी। दोनों के ऊपर दीवार पर पार्वती की एक और विशाल संगमरमर की मूर्ति थी। शम्भुप्रिया की उस मुद्रा में मुसकान थी और उनके उठे हुए हाथ उमा के वरदायिनी नाम को सार्थक कर रहे थे।

पूरन और कौशल्या की आँखें झिझक और संकोच के भार से उठती-गिरती एक-दूसरे से मिलती थीं और फिर मूर्ति का दर्शन करने लगती थी। भीतर ही भीतर हिलोरे लेता हुआ उन दोनों का अनुराग शब्द बनकर एक-दूसरे के पास तक पहुँच जाना चाहता था। किन्तु देव-मन्दिर की मर्यादा उनकी मचलती हुई भावनाओं पर अंकुश का काम कर रही थी। थोड़ी देर बाद कौशल्या की सखियाँ मन्दिर की परिक्रमा करके फिर उसी जगह पर लौट आईं। वह जाकर पृष्ठद्वार से मन्दिर के बाहर चली गई और पूरन हड़बड़ाकर पूजा के लिए मन्दिर के मध्य में स्थित पार्वती की मूर्ति की ओर बढ़ा। उन दोनों के व्यवहार पर कौशल्या की सखियाँ मुसकरा पड़ी।

पूजा के बाद मेला घूमने की बारी थी। बसन्ती ने मरजादपुर की

सभी लड़कियों को नन्दगाँव के डेरे पर बुलाया। पूरन की जान-पहचान मरजादपुर के सभी लोगों से हो चुकी थी। उसने वहाँ के सभी लोगों को अपने साथ ले लिया। फिर दोनों गाँवों के लोग साथ-साथ मेला घूमने के लिए निकले। शाम तक सब लोग एक साथ मेले में घूमते रहे। पूरन और बसन्ती के माध्यम से जैसे दोनों गाँवों के लोग एक स्नेह-सूत्र में बँध गए थे।

जब भीड़ काफी छँट गई, सभी लोग एक दूसरे से बिदा होने की प्रार्थना करने लगे। उन चार-पाँच घंटों के हँसी-खुशी के वातावरण में कौशल्या और पूरन का अनुराग, उन दोनों के लाख छिपाने पर भी बसन्ती पर कुछ हद तक प्रकट ही हो गया। मरजादपुर की लड़कियों से तो कौशल्या का पूरन के प्रति प्रेम-भाव, पार्वती-मन्दिर में ही स्पष्ट हो गया था। गोधूलि के समय दोनों गाँवों के लोग एक दूसरे से बिदा हुए। पूरन कौशल्या की स्मृति को लिए हुए, नन्दगाँव की ओर मन्दगति से चला और पूरन के प्रति आसक्त हृदय के साथ कौशल्या ने मरजादपुर की ओर प्रस्थान किया।

— ——

छठा अध्याय

दूसरे दिन सर्दी से ठिठुरता हुआ पूरन डालीगंज स्टेशन पर बैठा हुआ था। मुसाफिरखाने में चाय की दूकान के पास एक अँगीठी पर पानी गरम हो रहा था। उसी की आँच से वह अपना हाथ सेंक रहा था। उसके सारे शरीर के रोंगटे जाड़े के कारण खड़े हो गये थे। एक बजे रात की गाड़ी के चले जाने के बाद से उसे नींद न आ सकी थी। उसकी आँखों के सामने रह-रह कर मंजू और दीवान आ जाते थे। गाड़ी में बैठने के पहले उन दोनों ने पाँच-पाँच रूपए उसे और दिये थे। इस तरह उस समय कुल मिलाकर उसके पास उस समय सोलह रूपए थे। दीवान ने उसे अपना एक पुराना कम्बल भी दे दिया था। मंजू ने उससे विदा लेने से थोड़ी देर पहले अपनी उसी चिरपरिचित एकरस आवाज में कहा था—"पूरन ! तुम्हें कोई भी बात छिपाने कि जरूरत नहीं। तुमने जो कुछ भी देखा है, उसे पिताजी से जाकर साफ-साफ कह देना।"

गाड़ी जब चलने लगी, तो आँखों में आँसू भरे हुए पूरन ने दोनों हाथ जोड़कर मंजू को प्रणाम किया था और मंजू ने अपने हाथों के संकेत से आशीर्वाद देते हुए उसके लिए कुछ शब्द भी कहे थे। लेकिन उन कीमती शब्दों को वह साफतौर पर सुन न सका था। गाड़ी की रोशनी जब तक अँधेरे में एकदम ओझल नहीं हो गई, तब तक वह उसी दिशा मे टकटकी लगाए देखता रहा। उसके बाद चाय की दूकान के सामने रक्खी हुई बेंच पर उसी कम्बल में अपने शरीर को लपेटकर सारी रात वह बैठा रहा। उसकी सारी अनुभूतियों और विचारों का केन्द्र उस समय मंजू बनी हुई थी। उसके हृदय पर अवसाद का जहर छाया हुआ था। एक बहुत ही कड़वी घुटन का सामना करता हुआ वह रह-रहकर रो भी पड़ता था।

अँगीठी के सामने बैठा हुआ वह बड़े ही असमंजस में पड़ा हुआ था। कोतवाल साहब के सामने कैसे वह जायेगा? अब उसकी समझ में कुछ-कुछ यह भी आ रहा था कि उसने अपने मालिक के साथ कितना बड़ा दगा किया है। और दगा भी उस मालिक से, जिसने उसे ऐसे समय में शरण दी, जब कि वह कैद के दरवाजे पर खड़ा था, जिसने उसे एक बार भी मारने की कौन कहे; कभी बुरी जबान तक नहीं कहा था। लेकिन अपने विश्वासघात के विषय में सोचते-सोचते सहसा उसे मंजू का स्नेह भी याद आ जाता, जिससे अभी कुछ घंटे पहले ही उसका वियोग हुआ था। मंजू के निर्भीक शब्द उसके कानों में गूँजने लगते—"पूरन, तुम्हें कुछ भी छिपाने की जरूरत नहीं है। तुमने जो कुछ भी देखा है, पिताजी से जाकर साफ-साफ कह देना।"

पूरन की निगाहों में मंजू निर्दोष थी। नहीं तो वह उतनी निर्भीक क्यों रहती? इस बात को छिपाने के लिए वह उससे जरूर कहती। सहसा उसने कोतवाल साहब को सामने से आते हुए देखा। उसकी आँखें अपने-आप दूसरी ओर फिर गईं। उसका हृदय धड़कने लगा। अपने सर को उसने कम्बल में छिपा लिया। फिर भी उसके कानों में अपने मालिक के जूतों की आवाज बढ़ती ही जा रही थी। उसे महसूस हो रहा था कि वे उसके पास पहुँच गए हैं। उसका गला पकड़ लेना चाहते हैं। किन्तु थोड़ी देर बाद जब उसने अपना सर उठाया, तो उसने स्पष्ट देखा, पंडित कुलदीप शुक्ल चाय की दूकान से सौ कदम आगे बढ़ गए थे। उनकी पोशाक आज भी वही थी, जो वे कल सबेरे पहनकर घर से बाहर निकले थे। पूरन के भय का कम्पन कुछ कम हो गया। उसके मन में कितने ही प्रकार के विचार आ रहे थे, किन्तु रात से ही परेशान करने वाले उन पैने विचारों और भावनाओं का शूल उसके लिए अब असह्य हो उठा। अपनी चेतना पर एक साहसिक झटका देकर उसने कोतवाल साहब के सामने चले जाने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय पर आते ही वह फौरन उठ खड़ा हुआ और दौड़कर उनके पास जा पहुँचा।

पं० कुलदीप शुक्ल ने पूरन को निर्दोष समझकर क्षमा कर दिया। लेकिन वे उसे अब अपने घर में क्या, लखनऊ में भी नहीं रहने देना चाहते थे। अपनी असहाय अवस्था पर जब वह बुरी तरह रोने लगा, तब उन्होंने उसे कानपुर तक का किराया दिया और वहाँ के अपने एक जानपहचानी मारवाड़ी मेढामल के नाम उसे कोई काम दे देने के लिए एक चिट्ठी भी लिख दी। जाते समय उन्होंने पूरन को एक बार फिर चेतावनी दी—"देखो पूरन, तुम्हें यहाँ से मैं केवल इसलिए हटा रहा हूँ कि यहाँ के लोग तुमसे तरह-तरह की बातें पूछेंगे। अगर तुमने इस बात को कानपुर में भी किसी से जाहिर की, तो मैं तुम्हारी जबान कटवा लूँगा। और मेढ़ामल से यह मत कहना कि तुम मेरे यहाँ नौकर थे।"

कानपुर में मेढ़ामल ने पूरन को नौकरी दी नहीं, बल्कि देने का वादा किया। उसके पास सोलह रूपयों के अतिरिक्त कुछ पैसे भी थे। शाम के वक्त वह कानपुर पहुँचा था और उस रात को थोड़े से चने और गुड़ खाकर उसने भर-पेट पानी पी लिया था। सोने के लिए थोड़ी-सी जगह की तलाश में वह बारह बजे रात तक घूमता रहा, किन्तु उसे अपने पसन्द की जगह न मिल सकी। कोई-कोई मुहल्ले तो इतने गन्दे और बदबूदार थे कि वह जल्द से जल्द वहाँ से भाग जाना चाहता था। वह दो-एक कारखानों के पास से होकर गुजरा और वहाँ के घरों व मुहल्लों की हालत देखकर उसे एक घबड़ाहट-सी हुई। गरीबी, गन्दगी और कपड़ों की तंगी उसने गाँवो में भी देखी थी, किन्तु वहाँ ये बुराइयाँ मुँह फैलाकर काटने नहीं दौड़ती थीं। वह शहर मधु-मक्खियों के एक बहुत बड़े छत्ते के समान था और उसमें उन आदमियों की हस्ती 'भन्-भन्' करती हुई मक्खियों से बढ़कर नहीं थी। वह थककर चूर हो गया था और चाहता था कि यदि कोई एक घना-सा पेड़ ही दिखाई पड़े, तो उसके नीचे वह सो रहे। लेकिन वहाँ गन्दी नालियों, दुर्गन्ध से भरे मुहल्लों तथा तेल और कोयले से काले हो गए मनुष्यों का ताँता टूटता ही न दिखाई पड़ता था।

काफी रात बीतने पर घूमते-घूमते पूरन एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ हवा में एक ताजगी थी। ऊपर आकाश में धुँधलापन वहाँ भी था, किन्तु चाँद और तारे भी दिखाई पड़ रहे थे। उस जगह पर सड़क काफी ऊँची थी और सामने सड़क के नीचे एक बहुत बड़ा बगीचा था। बगीचे के मध्य में एक जगह से धुँए के साथ मन्द-मन्द प्रकाश भी निकल रहा था। पूरन को वह जगह अपनी जानी-पहचानी-सी लगी। बाग-बगीचों, पेड़ों और झोपड़ियों से उसको कोई भय न लगता था। वह सड़क से नीचे उतरकर बगीचे के भीतर उसी ओर चलने लगा, जहाँ से धुँआँ उठ रहा था। वहाँ पहुँचने पर उसे अलाव के किनारे बैठकर तापते हुए पाँच व्यक्ति दिखाई पड़े। उनमें से दो पुरुष थे और तीन स्त्रियाँ। पुरुषों में लगभग एक पचास वर्ष का था और दूसरा तीस-बत्तीस वर्ष का रहा होगा। स्त्रियों में से एक तो उसी वृद्ध की पत्नी थी और शेष दो उसकी पुत्रियाँ। इनमें से एक की आयु पच्चीस वर्ष से कम न रही होगी और दूसरी बारह-तेरह वर्ष की थी।

पूरन को देखकर सभी की आँखें उस पर जा पड़ीं। यद्यपि वह उस जगह के लिए अजनबी था, फिर भी उसे किञ्चित् भी भय नहीं लग रहा था। वे लोग उसके गाँव के किसानों से बहुत-कुछ मिलते-जुलते थे। वह उनके निकट गया और जब उस परिवार के वृद्ध ने उसके विषय में पूछ-ताछ की, तो उसने अपनी सब हालत साफ-साफ उससे बता दी। स्त्री को पूरन की अवस्था पर दया आ गई, लड़कियों ने भी उसके प्रति हमदर्दी दिखायी। काफी पूछ-ताछ कर लेने के बाद उन लोगों ने अन्त में उसे अपनी झोपड़ी में सोने के लिए जगह दे दी। पूरन ने वह रात उसी जगह बितायी।

सुबह दिन निकलने के बाद तक पूरन सोता रहा। जब उसकी नींद खुली, तो दोनों मर्द और बड़ी लड़की वहाँ नहीं थे। केवल उस वृद्ध की पत्नी और छोटी लड़की वहाँ पर थी। उसने जब वहाँ चारों ओर के वातावरण को प्रकाश में देखा, तो मुग्ध हो गया। झोपड़ी के

सामने करीब दो बीघे के फैलाव में तरह-तरह के फूल उगाए गए थे। खिले हुए फूलों पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं और ओस की बूँदें धीरे-धीरे उनकी पँखुड़ियों के नीचे ढल रही थीं। समस्त वातावरण में सौरभ फैल रहा था। झोपड़ी के पीछे पके पपीतों से लदे हुए पेड़ों की लम्बी-लम्बी पाँतें लगी हुई थीं। जिधर से वह आया था, उधर दूर तक फैला हुआ एक अमरूद का बगीचा था। पूरन उठा और प्रातः-कर्म आदि से निपटने के लिए अमरूद के बगीचे की ओर चला गया। काफी दिन चढ़ने पर जब वह लौटा, तो झोपड़ी के सामने रात के पाँचों व्यक्ति मौजूद थे। वहीं पर चार टोकरियों में पके-पके, ताजे तोड़े हुए अमरूद रक्खे थे और जमीन पर बड़े-बड़े लाल-पीले पपीतों के कई ढेर लगे हुए थे।

इस झोपड़ी वाले परिवार के वृद्ध का नाम मनोहर था। वह जाति का माली था और फूलों के साथ फलों का भी व्यापार करता था। अमरूद के बगीचे तथा दस बीघे जमीन का उसने शहर के एक पुराने रायबहादुर साहब के लड़कों से बारह वर्ष का पट्टा लिखाया था। पिछले पाँच वर्षों से वह उस बाग और जमीन का स्वामी था। उसके कोई पुत्र न था, केवल दो लड़कियाँ थीं। बड़ी लड़की का नाम था लाली और छोटी को लोग रूपा कहते थे। इन दो लड़कियों पर मनोहर और उसकी पत्नी, दोनों का स्नेह केन्द्रित हो गया था। इसी कारण उन्होंने अपनी बड़ी लड़की लाली को उसके ब्याह के बाद विदा नहीं किया था। अपने दामाद सम्पत को उन्होंने 'घरबैठा' रख लिया था और इस तरह उनकी एक लड़की और दामाद हमेशा उन दो बृद्धों की आँखों के सामने रहते थे।

रूपा के लिए भी उसके पिता ने निकट के गाँव में एक लड़के को छेंक रक्खा था। उस लड़के की वर्षगाँठ तथा अन्य त्योहारों के अवसर पर उसके घर मनोहर कितने ही उपहार भेजता रहता था। अपने परिवार के सहयोग और स्वयं अपने परिश्रम के बल पर मनोहर अपने पट्टे की दस बीघे जमीन से एक अच्छी रकम निकाल लेता था।

दो बीघे जमीन में वह बेचने के लिए फूल उगाता था, जो उसका खान-दानी पेशा था। बाकी जमीन में मौसमी तरकारियाँ तथा कम समय में तैयार होकर अच्छी कीमत देने वाले केले और पपीते-जैसे फलों की खेती करता था। वर्ष भर में उसके खेतों से तरकारियों की तीन फसलें निकलती थीं और अमरूद का बाग दो बार फल देता था। इस तरह उसके बाग और खेतों में काम करने के लिए दो-चार मजदूरों की हमेशा जरूरत बनी रहती थी। फल और तरकारियों को शहर की मंडी में ले जाने के लिए संपत, लाली और स्वयं मनोहर के अलावा भी कुछ और मजदूर रखने पड़ते थे। अमरूद के पेड़ों में जब फल आ जाते थे, तो बाग की रखवाली करने के लिए चौबीस घन्टे एक आदमी की जरूरत रहती थी। इसी प्रकार तरकारियों की बुआई के समय कड़ी मजदूरी देकर भी आदमियों को रखना पड़ता था। उस समय मनोहर का अमरूदों वाला बगीचा खूब फला हुआ था। आस-पास के लड़के पके हुए फलों की चोरी में भी खूब निपुण थे। मनोहर की इच्छा थी कि उस समय कोई लड़का उसे बगीचे की रखवाली के लिए मिल जाय। यह उसकी किस्मत ही थी कि पूरन उसके यहाँ पहुँच गया। मनोहर की ही क्यों, यह पूरन का भी सौभाग्य ही था कि अपनी असहाय अवस्था में वह अचानक उसकी झोपड़ी में पहुँच गया।

पूरन के पास कोई दूसरा चारा न था। जब तक मेढ़ामल उसे कोई काम न दें, तब तक उसे कहीं रहना ही था। मनोहर ने जब उससे अपने बगीचे की रखवाली के विषय में कहा, तो पूरन ने उस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। अपने बेतन के बारे में उसने स्वयं एक शब्द भी न कहा। लेकिन मनोहर ब्यापारी आदमी था और रूपए-पैसे के मामले में साफ बात चाहता था। उसने पूरन को पाँच रूपया महीना और भोजन देने को कहा। पूरन को इन शर्तों पर काम करने में कोई एतराज नहीं था। उसके लिए उस अवस्था में वही लाख नियामत थी। वह लखनऊ के कोतवाल कुलदीप शुक्ल के यहाँ नौ-दस महीने रहा,,

किन्तु तनख्वाह के नाम पर उसे एक पैसा भी न मिला था। सोलह रूपया उसे मिला था जरूर, लेकिन यह रकम उसे इनाम के रूप में मिली थी। मंजू और दीवान ने उससे खुश होकर, अपनी मरजी से उसे सोलह रूपए दे दिये थे। वह कोई उसके परिश्रम की कीमत नहीं थी।

पूरन को जीवन में पहले बार अपने परिश्रम की कीमत का भान हुआ। लखनऊ में बीते हुए अपने दस महीनों पर उसका ध्यान गया और हिसाब लगाकर उसने देखा, तो पता चला कि यदि कोतवाल साहब उसे पाँच ही रूपया महीना देते, तो अब तक उसके पास पचास रूपए से अधिक रकम इकट्ठी हो गई होती। भोजन और फटे-पुराने कपड़े तो वहाँ मिल ही जाते थे। उसे अपने अभी तीन दिन पहले के मालिक कुलदीप शुक्ल के प्रति एक प्रकार की खीझ का अनुभव हुआ जो अब तक उसे कभी नहीं हुआ था। उसके काम से छुट्टी मिल जाने की बात को सोचकर उसे एक सन्तोष का अनुभव हुआ। उसने अपने मन में कहा—"अच्छा हुआ मंजू भाग गई, नहीं तो मुझे जिन्दगी-भर बेगार करनी पड़ती।"

दूसरे दिन से पूरन बाग की रखवाली के लिये नियुक्त हो गया। पूरे दिन वह तोतों की टें-टें तथा अन्य पक्षियों के कलरव के बीच उस अमरूद के बाग में निश्चिन्त होकर घूमता था। दोपहर को उसके लिए रूपा खाना लाती थी और थोड़ी देर उसके साथ बाग में रहकर फिर अपने झोपड़े में चली जाती जाती थी। दिन में एकाध बार मनोहर भी पूरन के काम की निगरानी करने के लिये आ जाया करता था। पूरन से वह अक्सर कहता—"तुम्हें अमरूद खाने की कोई रोक नहीं है। जितने चाहो, उतने फल तुम खा सकते हो, लेकिन किसी भी दूसरे आदमी को बाग में पैर मत रखने देना।"

मनोहर की बातों को सुनकर, पूरन किसी बहुत ही जिम्मेदार और बहादुर आदमी की तरह कहता—"किसकी मजाल है, जो मेरे रहते

इस बाग में पाँव रख दे। मैं चिड़ियों तक की नाकों में दम किए रहता हूँ। वे बेचारीं चार-छः फलों से ज्यादा काट ही नहीं पातीं।"

बगीचे के छोर पर सड़क के किनारे बंगालियों के आठ-दस मकान थे। उन घरों के लड़के अक्सर बाग में घुसकर चोरी से अमरूद तोड़ ले जाते थे। बीरू नाम का एक लड़का उनमें बहुत ही शरारती था और वह दूसरे लड़कों को लेकर न जाने कहाँ छिपा रहता था, कि थोड़ा-सा मौका पाते ही बाग में चुपके से घुस पड़ता था। उसकी वजह से हर रोज कुछ न कुछ अमरूद चोरी से टूट ही जाते थे। एक दिन सबेरे से लेकर दोपहर तक पूरन बाग के एक कोने में छिपा बैठा रहा, लेकिन बीरू या उसके साथियों का कुछ भी पता न चला। दोपहर को रूपा जब उसके लिए खाना लेकर आई, तो पूरन को वहाँ न देखकर उसने उसे पुकारना शुरू किया। झाड़ी में छिपा हुआ पूरन निकला और उसने रूपा को चुप रहने का संकेत किया। जब वह भोजन कर चुका और रूपा भी थाली और लोटा लेकर झोपड़ी की ओर जाने को हुई तभी बगीचे के दूसरे कोने में खड़खड़ाहट हुई। पूरन दबे पाँव उस तरफ बढ़ा, रूपा भी उसके पीछे-पीछे चली। लेकिन जब वे दोनों बाग के दूसरे छोर पर पहुँचे तो बीरू अपने साथियों के साथ बेड़ा फाँदकर सड़क पर जा पहुँचा। बीरू ने एक झोला भरकर अमरूद तोड़ा था। पूरन और रूपा को अपने अमरूद दिखा-दिखाकर वह उन्हें चिढ़ाने लगा। पूरन को उसका पाजीपन बहुत बुरा लगा। बगीचा इतना लम्बा था कि अकेला पूरन दोनों किनारों की खबरगीरी नहीं रख पाता था। बीरू को मजा चखाने के लिए उसने रूपा से मदद माँगी। दूसरे दिन सबेरे से ही सड़क वाले छोर पर पूरन और दूसरे छोर पर रूपा झाड़ियों में छिपकर बैठने लगे। दो-तीन दिन तक बाग में कोई भी लड़का नहीं आया।

तीसरे दिन बड़े सबेरे जब पूरन और रूपा अपनी-अपनी जगह पर छिपने के लिए जा रहे थे, तो उन्होंने एक पेड़ की डाल को हिलते

हुए देखा। उन्हें कुछ शक हुआ। दोनों ने दूर-दूर तक निगाह दौड़ाकर देखा, तो उन्हें कोई भी लड़का न दिखाई पड़ा और उस पेड़ की डालियों का हिलना भी बन्द नहीं हुआ। दबे पाँव जब दोनों उस पेड़ के नीचे पहुँचे, तो उन्होंने देखा, तो बीरू पेड़ पर चढ़ा हुआ था। उसका झोला एक डाल में लटक रहा था और वह एक हाथ से डाल पकड़े हुए था, और दूसरे हाथ से अमरूद तोड़-तोड़कर झोले में रख रहा था। पूरन पेड़ के नीचे पहुँचकर जोर से चिल्ला पड़ा और उछलकर उसने उसी डाल को जोर से झकझोर दिया, जिसपर बीरू चढ़ा हुआ था। कुछ तो अचानक पूरन की आवाज से चौंककर, कुछ भय से और कुछ डाल के हिल जाने से बीरू 'धम्' से जमीन पर गिर पड़ा। रूपा खिलखिलाकर हँस पड़ी। पूरन ने बीरू के कोट का कालर पकड़ लिया और बोला—"पाजी कहीं के! फिर चिढ़ाओ! आज कहाँ भागकर जाओगे बच्चू!"

पूरन और रूपा ने बीरू की कोट और कमीज उतरवा ली। पेड़ पर टँगा हुआ उसका झोला भी पूरन ने उतार लिया। केवल पैन्ट और बनयान पहने रोता हुआ बीरू अपने घर की ओर चला। पूरन और रूपा उसका सारा सामान लेकर मनोहर के पास पहुँचे।

मनोहर पूरन के उस काम को देखकर बहुत खुश हुआ। बीरू के पिता को वह जानता था, इसलिए तुरन्त ही उस छीनी हुई कोट और कमीज को ले जाकर उसने उनके हवाले कर दिया। पूरन फिर अकेला बगीचे में लौट आया। दोपहर को रूपा जब उसका खाना लेकर आई, तो दोनों काफी समय तक बीरू के ही विषय में आपस में बातें करते रहे। बन्दरों की तरह वह कैसे पेड़ पर चढ़ा हुआ था! किस तरह वह धड़ाम से नीचे गिरा! फिर उसने कैसा मुँह बनाया! भीगी बिल्ली की तरह किस ढंग से उसने अपनी कोट और कमीज उतार दी! दुम दबाकर फिर कैसे वह बगीचे के बाहर चला गया? आदि प्रश्नों को रूपा कुरेद-कुरेद कर पूछती और कुछ का स्वयं ही अभिनयात्मक ढंग से उत्तर भी देती थी। उसी एक विषय को लेकर दोनों काफी समय तक एक

दूसरे को हँसाते और हँसते रहे। रूपा को अफसोस इस बात का था कि मनोहर ने बीरू के कपड़ों को क्यों लौटा दिया। वह पूरन से कहती—"पूरन, तुमने आज बीरु को खूब मजा चखाया। वह बहुत बड़ा पाजी है। कितने ही बार मेरे बाग से अमरूद तोड़कर वह सड़क पर से मुझे भी चिढ़ाया करता था। लेकिन दादा को यह क्या सूझी कि उन्होंने उसके कपड़े ही लौटा दिये।"

इस जगह पर पूरन को काफी स्वच्छन्दता थी। यहाँ वह वैसा नौकर नहीं था, जैसा कि लखनऊ में कोतवाल साहब के यहाँ था। इस जगह पर उसे अपनी हीनता का अनुभव नहीं होता था। मेहनत उसे अवश्य यहाँ कभी-कभी ज्यादा करनी पड़ती थी। जब मजदूर नहीं मिलते थे, तो फल और तरकारियों की टोकरी लेकर उसे बाजार भी जाना पड़ता था। जब खेत की सिंचाई होती, तो उसे खेत में भी रहना पड़ता था। लेकिन पूरन इन कामों को खुशी से करता था, जैसे वे सब उसके घर के काम हों। पूरन के स्वभाव में इस परिवर्तन का कारण मनोहर का स्नेहपूर्ण व्यवहार तो था ही, किन्तु बाग की रखवाली के अलावा अधिक परिश्रम करने पर वह पूरन को कभी दो आने, कभी चार आने, मिठाई खाने के लिए अथवा इनाम के ही बहाने दे दिया करता था। मनोहर की यह व्यापारिक नीति थी, एक रुपए की मजदूरी का काम वह दो आने और चार आने में करा लेता था। और पूरन के लिए उन पैसों का आकर्षण बहुत ही प्रबल था। जो काम उससे पिता की मार और सौतेली माँ की गालियाँ और फटकार न करा पाते थे, उससे कहीं अधिक काम मनोहर उससे अपनी स्नेहपूर्ण बातों और अपनेपन के व्यवहार के द्वारा करा लेता था।

जाड़े का मौसम समाप्त हो गया और अमरूदों की फसल भी खत्म हो गई। मेढ़ामल के यहाँ पूरन कई बार गया, किन्तु हर बार वे उसे वादा ही दिया करते थे। मार्च भी आधा खत्म हो गया, फिर भी वे उसे काम न दे सके। पूरन को मनोहर ने केवल दो महीने के लिए अपने यहाँ रखने का बचन दिया था और अब तीसरा महीना भी बीत

रहा था। इस महीने में पूरन को अक्सर बेकार ही बैठा रहना पड़ता था। केवल सबेरे उसे तरकारियों की टोकरियाँ बाजार पहुँचानी पड़ती थीं।

जब पूरन लखनऊ मे था, तब उसे अपना गाँव, वहाँ के साथी और बसन्ती दीदी आदि ही याद आते थे। किन्तु यहाँ पर उसे महसूस हो रहा था कि पिछले दस महीनो में लखनऊ के प्रति भी उसका अनुराग हो गया है। कोतवाल साहब के घर के प्राणी तो उसे याद आते ही थे, पुलिस-लाइन की वह चहल-पहल भी हमेशा उसकी आँखों के सामने फिरा करती थी। वहाँ के उत्साह और उमंग-भरे सैनिक वातावरण ने अनजाने रूप से ही उसके हृदय में एक सिपाही बनने की चाह पैदा कर दी थी। उसके मन में कभी-कभी उत्कट इच्छा होती कि कानपुर की पुलिस-लाइन को भी वह जाकर देखे किन्तु पूछने पर उसे पता चला कि मनोहर के बगीचे से पुलिस-लाइन बहुत दूर है। जब तक अमरूदों की फसल खत्म नहीं हुई थी, तब तक तो उसे कहीं आने-जाने की फुरसत न मिलती थी और बाग की रखवाली तथा दूसरे कामों में उसकी तबियत लगी रहती थी। मार्च के महीने में जब वह दिन भर बेकार रहने लगा, तो उसकी यह दबी हुई चाह बलवती हो उठी। एक दिन दोपहर को भोजन करके वह कानपुर की पुलिस-लाइन देखने के लिए निकल पड़ा।

लखनऊ की पुलिस-लाइन और कानपुर की पुलिस-लइन में कोई अन्तर नहीं था। दोनो जगहें एक-सी थीं। वैसा ही लम्बा-चौड़ा परेड-ग्राउण्ड, वैसे ही फुटबाल, हाकी-वगैरह खेलने के मैदान, सिपाहियों के बैरक तथा अधिकारियों के क्वार्टर सभी एक-से थे। पूरन को यह सब देखकर बेहद खुशी हुई। शाम तक वह वहीं रुका रहा। जब परेड खत्म हो गई, खेल के मैदान से सभी सिपाही अपने अपने बैरकों में चले गये, तब वह वहाँ से लौटा। रास्ते में उसने हर रोज पुलिस-लाइन आने का निश्चय किया। उसे केवल सबेरे ही तरकारी लेकर बाजार जाना पड़ता था। वहाँ से लौटने के बाद रूपा के साथ उसे दो टोकरी फूल तोड़ना पड़ता था। उसके बाद थोड़े से फूल लेकर वह

मनोहर के जमींदार रायसाहब के ठाकुरद्वारे पर जाता था। वहाँ मन्दिर में पुजारी को फूल देकर वह लौट आता था और बाकी दिन भर बेकार पड़ा रहता था। इसीलिए उसने इस बेकार समय के उपयोग का एक अच्छा साधन ढूँढ़ निकाला।

दूसरे दिन से रोज दोपहर के बाद भोजन करके पूरन पुलिस-लाइन की ओर चल देता था और वहाँ के खेल-व्यायाम और परेड देखकर, थोड़ी रात बीते अपने बगीचे को लौटता था। रास्ते में बाजार, दूकानें, बिजली की रोशनी, तथा और तमाम किस्म की तड़क-भड़क से होकर वह गुजरता था। उसका मन उन चीजों और दृश्यों के देखने में रमता जरूर था, किन्तु अधिक नहीं। उसे तो सबसे ज्यादा हाकी और फुटबाल के खेल, शान से कदम मिलाकर चलते हुए सिपाहियों की परेड, अथवा अखाड़े में दो तगड़े सिपाहियों की कुश्ती आदि के ही दृश्य अधिक पसन्द थे। इसीलिए उसे रास्ते के बाजारों और वहाँ के लुभावने दृश्यों से कोई विशेष आकर्षण नहीं था।

पूरन समझता था, कि उसे मार्च महीने की कुछ भी तनख्वाह न मिलेगी। जितना काम वह करता था, उतने के लिए भोजन मिल जाना ही वह अधिक समझता था। किन्तु उसके विचारों के प्रतिकूल मनोहर ने उसे मार्च महीने का भी पाँच रुपया वेतन दिया। पूरन की उमर अभी कुछ ऐसी ज्यादा नहीं थी, कि वह चक्करदार दुनिया-दारी को समझ सके, या आदमी की कीमत आँक सके। किन्तु, अब तक के जीवन में उसे जितने आदमियों से पाला पड़ा था, उन सब में मनोहर उसे सबसे नेक जान पड़ा। उसके प्रति पूरन के हृदय में श्रद्धा हो गई।

मार्च बीतते-बीतते मनोहर ने गर्मी की तरकारियों के लिए खेत तैयार करना शुरू कर दिया। अब फिर पूरन के लिए काम लग गया। वैसे मनोहर को दो-तीन मजदूर रोज रखने पड़ते थे, तब कहीं जाकर खेतों में पानी भर पाता था। खेतों की जुताई के समय तो मजदूरों की

संख्या और बढ़ानी पड़ती थी। जुताई हो जाने के बाद, घास निकालने, बोने और फिर सींचने के लिए भी उसे एक-दो मजदूर रखने ही पड़ते थे। एक मजदूर दिन भर का बीस आने से कम मजदूरी न लेता था। और यदि शहर में उनकी माँग अधिक रहती, तो डेढ़ रुपए पर भी वे मुश्किल से राजी होते थे। किन्तु पूरन के रहने से मनोहर ने खेतों में पानी भरते समय केवल एक मजदूर रक्खा था। संपत उसके साथ ढेकुल चलाता था और इन दोनों का जोआ बदलने के बाद मनोहर के साथ पूरन ढेकुल चलाता था। खेत का पानी कभी रूपा और कभी लाली देखती थी।

वैसे रूपा माँ-बाप के दुलार की वजह से घर का कोई काम न करती थी, किन्तु पूरन के साथ-साथ वह बहुत-सा काम करने लग गई थी। जब पूरन तरकारी तोड़ने जाता उस सयम वह उससे पहले ही टोकरी लेकर खेत में पहुँच जाती थी। तोड़ते समय भी वह उससे बाजी लगाती थी। फूल तोड़ने में भी वह पूरन से पीछे नहीं रहती थी। जब कभी पूरन खेत में पानी काटता या बाँधता रहता, उस समय भी यदि काम में साथ देने के लिए नहीं, तो उससे छेड़खानी या कुछ धौल-धप्पा ही करने के लिए वह उसके साथ हो लेती थी। जब पूरन ढेकुल चलाता और वह खेत में पानी को बाँधती-काटती होती तो घूम-घाम-कर वह दो-एक बार कुँए पर जरूर पहुँच जाती थी।

पहले दिन तो ढेकुल के रस्से से पूरन की हथेलियों में छाले पड़ गए। फिर दो-तीन दिन तक वह ढेकुल चलाने नहीं गया। किन्तु जब फिर उसने ढेकुल चलाना शुरू कर दिया, तो धीरे-धीरे उसके छाले घट्ठों में परिणत हो गए। लगभग एक हफ्ते में वह ढेकुल चलाने में निपुण हो गया।

यद्यपि मनोहर ने पूरन को अपने यहाँ काम देते समय उसे कपड़ा देने के लिए कोई वादा नहीं किया था, किन्तु होली के दिन जब उसने रूपा, लाली और सम्पत के लिए नया कपड़ा बनवाया तो पूरन के लिए भी उसने एक मोटी धोती और कमीज ला दिया। मनोहर के

इस स्नेहपूर्ण व्यवहार से पूरन उसके प्रति बहुत ही कृतज्ञ हो गया था। उसके काम को वह अपना काम समझकर करता था। नए रोपे हुए तरकारी और फूलों के पौधों को बढ़ते हुए देखकर उसके मन में खुशी होती थी। अपनी इच्छा से वह उनमें मिट्टी चढ़ाता था, घास-फूस उखाड़ता था और नई क्यारियाँ तैयार करता था।

———

सातवाँ अध्याय

हवा का एक हलका झोंका गहरे जलाशय में पानी के वह छींटे नहीं उठा सकता जो उसके कगारों को सराबोर कर दे। वह तो कुछ मामूली लहरियों को ही पैदा कर सकता है, जिनसे जलाशय की सतह पर कुछ हलचल मात्र हो सकती है। इस हलचल से जलाशय के गर्भ में स्थित उस विशाल जल-राशि में कुछ भी विकार नहीं आता। ऊपर की लहरें तो उसकी खूबसूरती को ही बढ़ाती हैं। लेकिन यदि वह हवा का झोंका शक्तिशाली हुआ तो सम्भवतः जलाशय का अस्तित्व हिल जायगा। उसमें से पानी की जबर्दस्त लहरें उठेंगी और उसके मजबूत कगारों को ढा देंगी।

पूरन के जीवन में कौशल्या तेज हवा के झोंके सी आई और उसके रग-रग में समा गई। संघर्ष की लपटों में सूखा हुआ अंकुर फूट-कर निकल पड़ा। जीवन का स्वाभाविक रस उफनकर उस अंकुर को सींचने लगा। पूरन का अब तक का जीवन एक ऐसे जबर्दस्त लड़ाकू का-सा था जिसे लड़ाई की हार जीत के सिवा, जीवन के किसी अन्य पहलू के अनुभव का मौका ही न था। उसके जीवन का सारा रस कितनी ही बार वेग से टकराकर भी उसके चरित्र के मजबूत कगारों को नहीं तोड़ पाता था। उसके चरित्र का सारा ओज, उसके व्यक्तित्व को ठोस बनाए हुए था। किन्तु इस फुरसत के समय में उसका रूखा और सख्त जीवन बदलना चाहता था। जिन्दगी की स्वाभाविक मिठास अपना रास्ता बना चुकी थी।

मेले से लौटने के बाद पूरन ने अपने में एक परिवर्तन देखा। ऐसा परिवर्तन जिसकी गहराई वह स्वयं नहीं जान पा रहा था। अब तक का उसका जीवन आग का जीवन था। उसमें तप कर उसके चरित्र

का नकली तत्व नष्ट हो गया था। क्या शारीरिक, क्या मानसिक उसका हर पहलू निखर कर सोना बन गया था। उसकी पेशियों में बल था, आँखों में तेज था, सीने में उभार और चाल में एक मस्ती थी। दुनियाँ उसने देखी थी। परिस्थितियों ने अनुभव की ठोकरों से उसे दुनियाँदारी का पाठ पढ़ा दिया था। उसके व्यवहारिक विचारों में उलझन नहीं था। उसकी बातों में वजन था।

इतना सब होते हुए भी पूरन दया कर सकता था, उसकी ममता अपने गाँव के पेड़ पौधों तक से थी, सहानुभूति के लिए वह तरस चुका था, इसलिए उसके मर्म को वह समझता था, बसन्ती का स्नेह उसके जीवन का अमृत-पाथेय था, इसलिए स्नेह भी वह कर सकता था। इस तरह इन सभी मानवोचित गुणों का उसे अनुभव था। लेकिन यह जबर्दस्त तूफान कैसा ? ऐसी वेगवती झंझा का अनुभव तो उसने कभी नहीं किया था। पूरन को लग रहा था जैसे कौशल्या ने उसकी एक भयंकर कमजोरी को छू लिया हो।

अभी उसकी छुट्टी केवल एक महीने बीती थी। पूरा एक महीना, उसे और घर पर रहना था। इस बीच में उसने कोशल्या के प्रति अपने आकर्षण को दबाने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु उसका परिणाम उल्टा ही होता था। भीतर उठते हुए उफान को वह रोकता था। उसके बाद प्रतिक्रिया होती थी। पहले से कहीं अधिक वेग से लहरा कर कौशल्या उसके ऊपर छा जाती थी। खेत उसके पास हो गए थे, किन्तु उन खेतों में इस समय कोई काम न था। दूसरे कामों में वह अपने को व्यस्त रखता था, एक ही बिन्दु के चारों ओर अपनी भावनाओं की घुमड़न से वह उदासीन हो जाना चाहता था। कुछ देर तक वह सफल भी होता था। लेकिन अन्त में घूम-फिरकर वही चक्कर खाती हुई भँवर फिर उसकी चेतना को अपने में समेट लेती थी।

एक दिन बसन्ती ने उससे पूछा—"क्यों पूरन, आजकल तुम्हें क्या हो गया है ? तुम इतने उदास क्यों रहते हो ? हरदम क्या सोचा करते हो ?"

पूरन आजकल अपने आप को अच्छी तरह जानता था। स्वयं से वह लड़ रहा था और अपनी भीतरी उथल-पुथल को वह किसी पर प्रकट नहीं होने देना चाहता था। उसने बसन्ती से कुछ चौंककर कहा—"नहीं बहन, मैं तो रोज जैसा ही खुश हूँ! मुझमें कोई फरक नहीं है!"

छुट्टी पन्द्रह दिन और रह गई। पूरन अब तक अपने मन के राज को सबसे छिपाए रहा। उसकी खोई-खोई हालत लोगों पर प्रकट हो ही जाती थी, लेकिन कोई कुछ समझ न पाता था। बसन्ती उसकी उदासी को अच्छी तरह जान गई थी। अपनी स्त्री-सुलभ महीन दृष्टि से वह उस उदासी का कारण भी जानने की कोशिश कर रही थी, इतना तो उसे निश्चय हो गया था कि पूरन उससे कोई बात छिपा रहा है। वह कौन सी बात है? इस प्रश्न का उत्तर खोजने में उसका मन कई जगह भटकता था, किन्तु अन्त में वह कुछ भी निर्णय न कर पाती थी।

उधर पूरन को, भीतर ही भीतर उमड़-घुमड़ कर छाई हुई भावनाएँ असह्य हो उठीं। उन्हें दबाने में या कोई रास्ता निकालने में अपने को असमर्थ पाकर वह किसी के सामने अपनी बेचैनी प्रकट करने के लिए आतुर हो उठा। लेकिन किससे? अपने गाँव में अभी तक उसका कोई ऐसा अन्तरंग मित्र न बन पाया था, जिसके सामने वह अपने हृदय को खोलकर रख दे। नन्दगाँव के उसके हम उमर युवक उसकी इज्जत करते थे, उसे अपने से बड़ा मानते थे लेकिन वे अभी तक उसके जिगरी दोस्त नहीं बन पाए थे। उनके और अपने बीच की दरार मिटाने के लिए उसे ही कोशिश करनी पड़ती थी। उसे एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो उससे काफी मुखर हो। उसकी बातों से केवल होठों की हमदर्दी न दिखाकर वह उसकी कुछ सहायता भी करे। नन्दगाँव में कोई भी स्त्री या पुरुष उससे उतना हिला मिला नहीं था, जिसके सामने वह अपने हृदय के इस राज को खोल सके। सभी उससे कुछ अदब और संकोच से बातें करते थे। एक बेतकल्लुफ दोस्त

की कमी उसे बहुत ही खल रही थी। घूम फिरकर उसका मन एक ही व्यक्ति पर जाता था, और वह थी मरजादपुर की गेनिया। उससे सम्भवतः वह अपनी परेशानी को बता सके।

गेनिया स्वभाव से ही बहुत खुले दिल की और निसंकोच थी। जो दिल में, वही जबान पर। उसके दिल में कुछ छिपा हुआ नहीं था, जो कुछ था वह बाहर था। मजाक वह चुनकर करती थी। दबना वह किसी से न जानती थी। इसी कारण पति के डंडे से भी उसका कभी-कभी स्वागत हो जाया करता था। और उसकी उमर? यही करीब सत्ताइस वर्ष। लेकिन दिल सोलह वर्ष का। सिर से पाँव तक वह अलमस्त थी, जरा-सा रंज था तो यही कि अभी तक उसके कोई बाल-बच्चा नहीं था। लेकिन इस गम को वह ज्यादा देर तक अपने पास फटकने नहीं देती थी।

पूरन को न जाने क्यों वह बहुत अच्छी लगती थी। मरजादपुर में उसने जितनी बातें उससे किया, उतनी शायद ही किसी और से किया हो। इसका कारण सम्भवतः यही था, कि पूरन को उसके बहु-मुखी तथा कठोर जीवन ने संयमी बना दिया था। जिन्दादिल होते हुए भी वह ऊपर से चुप्पा लगता था। और गेनिया थी नम्बर एक की चुहलबाज और बला की पारखी। पूरन के अन्य गुणों को चाहे उसने न देखा हो, लेकिन उसकी सरलता के भीतर छिपे हुए निर्दोष चरित्र को उसने जरूर देख लिया था। बिना किसी झिझक या संकोच के वह उससे घंटों बातें करती थी। उलटी, सीधी, जैसी भी मन में आ गई। उस दिन स्वाँग के बाद रात में वह पूरन से काफी देर तक हँसी-मजाक करके अपने घर गई थी। बसन्ती को बिदा करा के आते समय पूरन ने उसे दो रुपया देना चाहा था लेकिन उसने लेने से इनकार कर दिया।

"नेह बनाए रखना पूरन बाबू, रुपया-पैसा तो हम गरीबों को भी ईश्वर ने थोड़ा-बहुत दिया ही है।" ये उसके शब्द थे।

पूरन ने मरजादपुर जाने का निश्चय किया। लेकिन वहाँ जाने का

कोई मतलब भी तो होना चाहिए। किस बात को लेकर वह बसन्ती से मरजादपुर जाने की अनुमति ले ! और वहाँ भी तो अब उसकी दीदी थी नहीं, जो जब चाहे तब उससे भेंट करने मरजादपुर चला जाय। उसके सामने यह एक समस्या थी। कोई बहाना उसे नहीं मिल रहा था।"

एक दिन वह गुलजार टोले में घमंडी साह की दूकान के सामने खाट पर बैठा हुआ था। बेचू हलवाई भी आकर उसके पास बैठे हुए अपना नारियल पी रहे थे। कलकत्ता, बम्बई और कानपुर से लेकर रुद्रनगर और नन्दगाँव तक की बातें चल रही थी। इतने में मोटर आई। अपना नारियल लेकर बेचू तुरन्त अपनी दूकान की तरफ बढ़े। मोटर का क्लीनर बाल्टी लेकर नदी में से पानी भरकर लाया और मोटर के इञ्जन में डालने लगा। ड्राइवर सिगरेट पीता हुआ माधो तमोली की दूकान पर आया। यात्री मोटर से उतरकर इधर-उधर चहल-कदमी करने लगे। दो अप-टू-डेट नौजवान मोटर से उतरे। उन्होंने एक हरकत-भरी निगाहों से उन दूकानों को देखा और टहलते हुए पक्के-घाट की ओर जाने लगे। विशाल पत्थरों से बने हुए आमी के उस ऊँचे घाट पर दोनों खड़े हो गए। आमी के उस पार जमुहानी की ओर संकेत करते हुए एक ने कहा—"कितनी नफीस सीनरी है ! जरा उस जगह तो देखो, नदी कैसी बल खाकर घूम गई है।"

दूसरे ने कहा—"जब से पिताजी का तबादला रुद्रनगर हुआ तब से मैं यहाँ दो बार आ चुका हूँ। यार, इस नदी की यह वादी मुझे बेहद पसन्द है। जरा उधर तो देखो, नदी के चौड़े पाट में रुपहली लहरें कैसी चमक रही हैं। इसके दामन में बसा हुआ यह गाँव बड़ा ही खुशकिस्मती है।"

पहला नौजवान फिर बोला—"मेरा तो ख्याल है कि इस जगह पर पुराने जमाने में किसी राजाका महल अथवा किला या ऐसी ही कोई चीज जरूर रही होगी। इन बड़े-बड़े पत्थरों को तो देखो और वहाँ

नदी की धार में बनी हुई दीवारें कितनी मजबूत रही होगी जो आज तक खड़ी हैं।"

दूसरे ने कहा—"अमा, क्या बात करते हो! पिताजी बतला रहे थे, कि पुरातत्व-विभाग से इस जगह की खुदाई के लिए सरकार के पास लिखा-पढ़ी हुई थी। सरकार ने आज्ञा भी दे दिया था लेकिन बाद में रुपयों की मुनासिब मंजूरी न मिल पाई, इसलिए काम रुक गया। उन दिनों आर्कलजी के कितने ही प्रोफेसर यहाँ डेरा जमाए पड़े थे। यहीं की बदौलत कितनों को डाक्ट्रेट मिल जाती, डाक्ट्रेट।"

पीछे से कंडक्टर ने आवाज दिया कि मोटर जा रही है। दोनों युवक चौंक पड़े। एक ने हड़बड़ाकर कन्धे से लटकता हुआ अपना कैमरा उतारते हुए कहा—"यार, जल्दी करो, अब इधर न जाने कब तक आने का मौका मिले। इन दृश्यों के एकाध स्नैप-शाट तो ले ही लें। और सुनो, तुम जरा नीचे उतर आओ, सबसे पहले इस ऊँचे घाट की बैकग्राउण्ड में तुम्हारा एक चित्र मैं लेना चाहता हूँ।"

थोड़ी देर बाद दोनों नौजवान दौड़कर मोटर के पास आ गए। अन्य यात्री पहले ही बैठ चुके थे। उन दोनों को लेकर मोटर रवाना हुई। मोटर के चले जाने के बाद तीन नए यात्री माधो तमोली की दूकान पर आकर खड़े हो गए। उन्होंने पान खाया और बीड़ी सुलगा कर चलने लगे, जाते समय उनमें से एक को जैसे कोई भूली बात याद आ गई। उसने रुककर माधो से पूछा—"क्यों भाई, यहाँ घमंडी साह की कौन-सी दूकान है?"

अपनी दूकान पर से ही साह जी ने चिल्लाकर कहा—"आइए, यहाँ आइए, क्या काम है?"

वे तीनों उनके पास गए। उनमें से एक बोला—"साहजी, हम लोग रुद्रनगर अस्पताल से आ रहें हैं। वहाँ हमसे आपके समधी का लड़का मिला था। उसने कहा है कि आपके समधी बहुत बीमार हैं। मुँह देखना हो तो....."

घमंडी साह ने अपने होठों पर उँगली रखकर उसे चुप रहने का

संकेत किया और बड़ी ही फुर्ती के साथ खाट से उठकर उस यात्री का हाथ पकड़े हुए बेचू की दूकान की ओर ले जाने लगे। वे मुश्किल से बीस कदम गए होंगे कि उनके घर के भीतर से एक लम्बी अलाप के साथ रोने की आवाज आई। उनकी पतोहू देहरी में बैठी हुई थी और उसने उस यात्री की बात को सुन लिया था। घमंडी साह बड़े असमंजस में पड़े। जिस बात को वे बचाना चाहते थे आखिर वही होकर रही। उन्होंने अपना क्रोध बेचारे यात्री पर उतारा—"हत्तेरे की! इतनी मोटी अकल थी तो संदेशा ही क्यों लाये? भला ऐसे राहचलन्तू से किसी का संदेशा कहा जाता है। लट्ठमार कहीं के!! अब तो मुझे पचीस-पचास के खर्चे में डाल ही दिया।"

साह जी ऐसा मुँह बनाए हुए थे कि उन्हें देख-देखकर पूरन को हँसी आ रही थी। अपनी उसी खूबसूरत मुद्रा में वे पूरन के पास आए। गालों को मींचकर, आँखें धँसाकर, दाँत निकालकर वे उससे कहने लगे – "चाहे बीमारी जरा सी ही क्यों न हो लेकिन अब जब तक मैके न पहुँच जायँगी तब तक भला चुप हो सकती हैं! बहूजी! जमीन आसमान एक कर देंगी, एक! मेरी अब इस घर में रहाइस नहीं है। देखो पूरन भइया, अभी चार दिन पहले तो बेटी का गौना दिया है और अब इनके मैके की साज ठीक करो।"

दोपहर हो गई। पूरन रेशम टोले के बाहर वाली राह से अपने घर आ रहा था। वह रेशम टोले में रुकना नहीं चाहता था क्योंकि भोजन का समय बीत रहा था। सहसा उसके कानों में आवाज आई—"पूरन भइया! ओ पूरन भइया!!"

उसने पीछे मुड़कर देखा तो जीनत उसे पुकार रही थी।

"क्या है रे?" पूरन ने चिढ़कर कहा।

"अरे सुनो तो, तुम तो मुफ्त में नाराज हो रहे हो।"

"अरी बात क्या है? मुझे भूख लगी है।"

"बड़ी कीमती बात है। जरा नजदीक तो आने दो, सुनकर बाग-बाग हो जाओगे।"

"मैं जा रहा हूँ। तू अपनी कीमती बात अपने पास रख, मुझे बाग-बाग नहीं होना है।"

"पूरन भइया, रुको तो। असली बात तो तुम समझते नहीं। तुम्हें तो केवल पेट की पड़ी है। अरे, अफजाल भइया के दोनों साले आए हुए हैं। सबेरे ही आए और अभी चले जा रहे हैं। कोई उन्हें रोकने वाला तक नहीं है। अफजाल भइया तो दो कौड़ी के आदमी हैं, वे उन्हें रोक तक नहीं सकते।"

"आखिर उन्हें रोककर तू करेगी क्या?"

"ओफओह! तुम्हें इतना भी नहीं पता। अरे, वे लोग इतनी अच्छी कौव्वाली गाते हैं, इतनी अच्छी गाते हैं कि.....।"

"कि.....यही न कि दिल बाग-बाग हो जाय। बस रहने दे मुझे भूख लगी है।"

"आए हैं, बड़े भूख वाले बनकर! चलो मेरे घर, ऐसी चीज खिलाऊँ, कि जब से नन्दगाँव आए होगे तब से वह तुम्हें नसीब ही न हुई होगी।" इतना कहकर जीनत पूरन के रास्ते में आ गई।

"अच्छा, चल तेरी ही बात सही। लेकिन खिलाएगी क्या तू?"

"पूरन भइया, उन लोगों को चलकर रोक तो दो। खिलाऊँगी तो ऐसी नफीस चीज कि तुम भी क्या कहोगे कि किसी रईस से पाला पड़ा था।"

"अच्छा, तो आज कल तू बड़ी रईस हो गई है?"

जीनत के साथ पूरन उसके घर पहुँचा। वहाँ अफजाल अपने दोनों मेहमानों के साथ बैठा हुआ था। अफजाल ने पूरन का परिचय अपने सालों से कराया। दोनों ने पूरन से हाथ मिलाया। उसके बाद कुछ देर तक बातचीत हुई। दोनों मेहमानों को पूरन और अफजाल के अनुरोधों और आग्रहों के कारण रुक ही जाना पड़ा। रात के कौव्वाली होने की बात तै हो गई। पूरन ने उन मेहमानों से भोजन कर आने की इजाजत माँगी। अफजाल बोला—"पूरन भाई, सौगात तो लेते जाओ।"

"उसके लिए तुम्हें कहने की जरूरत नहीं। वह तो मैं जीनत से पहले ही तै करके यहाँ आया हूँ।" पूरन ने कहा।

उसी समय जीनत घर से निकली। उसके एक हाथ में शीशे की तश्तरी थी, जिसमें सफेद लाइयाँ, खजूर, कुछ मिठाइयाँ, और एक तस्वी थी। दूसरे हाथ की एक टाँड़े की रूमाल में बँधे हुए कुछ फल थे। अफजाल के ससुर हज करके लौटे थे। तश्तरी में रक्खी हुई खजूर वगैरह मक्के मदीने का एक तरह से प्रसाद था और रुमाल में बँधे हुए थे केले, बुटवल के संतरे और टाँड़े के बने हुए विख्यात मूँग के लड्डू।

रात को खाना खाकर सोते समय पूरन काफी खुश था। टाँड़े से आए हुए अफजाल के दोनों सालों ने इतनी अच्छी कौव्वाली गाया कि गाँव के युवकों के अनुरोध पर उन्हें एक रात के लिए और रुकना पड़ा। ढोलक बजाने में एक माहिर था तो दूसरा हरमोनियम बजाने में कमाल करता था। और सबसे ऊपर थी उन दोनों की सुरीली आवाज जो बिना किसी साज-बाज के भी अपना प्रभाव डाले बिना न रहत थी। बिस्तर पर लेटे-लेटे उसके मन में घमंडी साह और उनके समधी की बीमारी का सँदेशा लाने वाले उन राहगीरों का दृश्य आया। एका-एक हँसी आने के साथ ही, उसे वह समस्या सुलझती हुई जान पड़ी जिसका हल वह पिछले कई दिनों से लाख माथापच्ची करने पर भी नहीं कर पा रहा था।

मरजादपुर जाने का पूरन को एक बहाना मिल गया। बस, थोड़ा सा झूठ भर बोलना था। लेकिन इससे क्या, कानपुर जाते-जाते एक बार कौशल्या से भेंट तो हो जायगी। प्रेम और युद्ध में सब कुछ न्यायसंगत है। बसन्ती से कहने के लिए उसने एक झूठे संदेशे की कल्पना किया। 'कि उससे सड़क पर एक राही मिला था, उसने कहा है कि दुर्बल चौधरी बहुत बीमार हैं, उनकी हालत बहुत अजलस्त हो गई है।' इस झूठी बात को सोचकर उसने अपने मन में कहा कि आखिर इतनी सीधी सी बात उसके बुद्धि में पहले ही क्यों न आई?

अपनी इस नई खोज पर उसके भावों में इतना फैलाव आया कि उसी समय उठकर वह बसन्ती के पास जा पहुँचा। भोजन करके वह पूरन के लिए दूध गरम कर रही थी। पूरन ने पहले उसे अपनी काल्पनिक खबर को सुनाया और फिर मरजादपुर जाने के लिए उसकी अनुमति माँगी। "दीदी, सोचता हूँ, कल जाकर चौधरी को देख आऊँ। नाता रिश्ता और होता है किसलिए? मेरी छुट्टी भी अब केवल सात-आठ दिन और रह गई है।"

मरजादपुर जाने के लिए पूरन को बसन्ती की अनुमति मिल गई। दूसरे दिन सबेरे ही दुर्बल चौधरी को देखने के लिए उसने प्रस्थान किया। जिस समय वह मरजादपुर पहुँचा, उस समय दुर्बल चौधरी अपने दरवाजे पर ही थे। पूरन उनसे बनावटी आश्चर्य से मिला और वे उसे अचानक आया देख कर सचमुच चकित हो उठे। जब पूरन ने अपने आने का कारण बताया तो हँसते हुए वे उसके गले लिपट गए और उसका हाथ पकड़ कर सीधे घर के भीतर ले गए। पूरन की बात सुनकर घर की सारी स्त्रियों ने कहकहा लगाया। बसन्ती की सास ने कहा—"भइया, तुम आए तो सही, जैसे भी आए। लेकिन उस दाढ़ी-जार मुरहे को, ऐसी झूठ बोलने की क्या बात पड़ गई थी। चौधरी के सर में तो दर्द तक नहीं हुआ!"

दुर्बल चौधरी बोले—"उसने बड़ा अच्छा किया, अब पूरन हमारे यहाँ चार छः दिन रहकर ही जाने पाएँगे।"

कौशल्या को दूसरे दिन सुबह पूरन के आने की खबर मिली। बताना आसान नहीं, कि उसे कितनी खुशी हुई उस समय? पहली रचना, के प्रकाशित होने पर किसी नए लेखक की खुशी से भी सम्भवतः बढ़कर। तैयार होकर न बैठने वाले विद्यार्थी के परीक्षा में पास हो जाने की खुशी से भी सम्भवतः बढ़कर। क्योंकि ये खुशियाँ आती हैं, और वेग से आती हैं। लेकिन फिर ये अपना विकास चाहती हैं, चार-छः लोगों में फैल कर, चार छः दिन में गायब हो जाती हैं। लेकिन कौशल्या की समस्त भावनाएँ एकमुखी होकर एक ही व्यक्ति की ओर

केन्द्रित हो रही थीं। वे भीतर से उमड़-घुमड़ कर उठती थीं और भीतर ही बरस भी पड़ती थीं। अपनी पूरी स्पष्टता के साथ पूरन कौशल्या के सामने आ गया। वह उससे अपनी कल्पना में बातें भी करने लगी—"आप बड़े हजरत हैं, कैसा बहाना ढूँढ़ लिया। बेचारे दुर्बल दास को बीमार बनाकर ही छोड़ा। साफ-साफ यह क्यों नहीं कहते कि आप खुद ही बीमार हो गए हैं। लड़कियों को देखने की बीमारी कोई छोटी बीमारी नहीं है जनाब।"

त्रिबेनी महतो अपना नाज बेचने के लिए बैलगाड़ी लेकर पिछले दिन हाँड़ा गए हुए थे। वे होते तो स्वयं पूरन को अपने घर बुला लाते। दोपहर को भोजन करते समय दुर्बल चौधरी के घर जाकर कौशल्या स्वयं पूरन को देख आई थी। वहाँ से लौटते समय वह गेनिया के पास गई। थोड़ी देर बात करके फिर उसे अपने यहाँ आने के लिए कहकर फिर वह घर लौट आई।

पूरन दोपहर को खा-पी कर सो गया। करीब चार बजे उसे गेनिया ने आकर जगाया। उस समय दुर्बल चौधरी खेत में थे। गेनिया ने ही उसे पानी पिलाया। उसने चबैना और रस वगैरह भी लाने के लिए पूछा, किन्तु उस समय पूरन को भूख नहीं थी। उसके बाद गेनिया आकर उसके सिरहाने जमीन पर बैठ गई और उसकी बातें शुरू हुईं। पूरन ने भी एक साधारण शिष्टाचार वश उसके पति की हाल-चाल पूछा। लेकिन गेनिया ने, आज अपने घर के बावत कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। घर में उसके था ही कौन, एक पति के सिवा? आए दिन दोनों में कुछ बोल-ठोल हो ही जाया करती थी। उसने कहा—"उनकी हाल-चाल क्या पूछते हो पूरन बाबू? क्या कन्ता के घर रहे का चलि गए बिदेश? ऐसा मतलबी आदमी है कि कुछ कहते नहीं बनता। अभी कल मेरा भाई आया था। मैंने कहा कि उसके साथ चार छः दिन के लिए मैके जाकर मनफेर कर आऊँ लेकिन मुझे नहीं ही जाने दिया। गुड़ के चींटे की तरह जैसे हमेशा लिपटा रहना चाहता है। बड़ा शक्की आदमी है पूरन बाबू। किसी पर उसका विश्वास ही नहीं।"

"जो गुड़ की तरह मीठा हो, उस पर चींटे की तरह लिपटा रहना तो कोई बुरी बात नहीं।" पूरन ने गेनिया की चुटकी ली।

गेनिया कब चूकने वाली थी। दो कदम और आगे बढ़कर उसने निशाना मारा। बोली—"तभी तो बेचारे दुर्बल दादा बीमार बना दिए गए। पूरन बाबू, जिस गुड़ के चारों तरफ तुम चक्कर काट रहे हो वह दरअसल बेहद मीठा है। लेकिन इस तरह अभी से चिपकना तो ठीक नहीं।"

पूरन अपने अस्त्र से स्वयं परास्त हुआ। अपने मरजादपुर आने के असली कारण को अभी तक केवल पूरन ही जानता था। दूसरे सभी लोग अँधेरे में थे। गेनिया की बातों से उसे ऐसा लगा कि उसके झूठे बहाने को उसने ताड़ लिया है। पूरन जानता था कि गेनिया बुझक्कड़ है, पात-पात उड़ने वाली है और वह उसकी शुभेच्छु भी है। इसीलिए घर से ही उसने गेनिया के सामने अपने हृदय की बात खोलकर रख देने का निश्चय किया था। और सब लोगों से झूठ बोलने का सबसे बड़ा कारण उसका स्वाभाविक संकोच था। लेकिन गेनिया की निसंकोच और खुली बातों ने उससे पूरन का संकोच दूर कर दिया था। किन्तु पूरन की गम्भीरता गेनिया को पसन्द नहीं थी। वह चाहती थी कि वह सबके साथ खूब हँसे, बोले। अपनी बातों के बीच-बीच में वह पूरन से कह भी देती थी—"तुम्हारी और सब बातें मुझे पसन्द है, लेकिन हरदम गुमसुम रहने की तुम्हारी यह आदत मुझे बिलकुल नहीं भाती। जवानी में ऐसी आदत ठीक नहीं।"

गेनिया पूरन से बातचीत के सिलसिले में अपनी कितनी व्यक्तिगत बातें तक कह डालती थी। इसीलिए पूरन भी उससे बहुत कुछ कह सुन लेता था। आज वह उससे अपने हृदय का राज खोल देने का उचित प्रसंग ढूढ़ रहा था। उसके मन में बात उठती थी, फिर संकोचवश दब जाती थी। वह उससे अपने मन की परेशानी कहने के लिए दूसरी बातों का सिलसिला बाँधता था लेकिन मुख्य बात को वह खुलकर कह नहीं पाता था। कैसे, किन शब्दों से, उस विषय का सूत्रपात करे, इसके

लिए वह अवसर ही ढूढ़ता रहा लेकिन काफी देर तक वह अपने प्रयत्न में असफल रहा ।

बात करते-करते बीच में एकाएक गेनिया बोल पड़ी – "पूरन बाबू, मैं तुम्हें बुलाने आई थी और यहाँ तुमसे बातचीत करने में फँस गई। अच्छा, अब उठो, चलो तुम्हारी होने वाली सास ने तुम्हें बुलाया है।"

"होने वाली सास ने बुलाया है! तुम्हारी बात तो समझ में नहीं आती! क्यों नाहक पहेली बुझाती हो?" पूरन ने बड़ी सावधानी से कहा।

"हमसे उड़ो मत। शंकरगढ में मैं हमेशा तुम्हारी आँखों को ही देख रही थी। पार्वती-मन्दिर की बात तो मुझसे यहाँ आकर लड़कियों ने बतलाया।"

"क्या बतलाया गाँव की लड़कियो ने?"

"यही की पूरन बाबू को दुनियाँ से कोई मतलब नहीं। खैर, बीती बातों को छोड़ो। लेकिन पूरन बाबू, गजब का रूप पाया है कौशल्या ने! तुम तो अपना फूल, अक्षत, जल उसी के पैरों पर चढ़ा देते यदि उसी बीच में गाँव की लड़कियाँ न आ जातीं।"

'हाँ, हाँ, तुम्हारी कौशल्या परी सही। मैं उसके पैरों पर फूल अक्षत भी चढ़ा देता, लेकिन यह होने वाली सास वाली क्या बात है?"

बड़े किस्मतदार हो पूरन बाबू। इस गाँव में जितने भी पाहुने आए, सभी कौशल्या के रूप पर रीझे उसकी गढ़न को सराहा, और उसके पाक चरित्र से कुछ सीखकर भी गए। उसने किसी की ओर दो से तीन बार आँख उठाकर देखा तक नहीं। लेकिन तुम.....अच्छा जाने दो, तुम्हारी उसकी जोड़ी कितनी अच्छी रहेगी।"

"अच्छा इन बातों को रहने दो। जो मैं पूछता हूँ, उसका जबाब दो।"

"हाँ, हाँ, कान खोलकर सुन लो और जब तुम्हारी कामना सिद्ध हो जाय तब दिल में आए तो गेनिया का भी मुँह मीठा करा देना, जिसने सबसे पहले इस खुशी की खबर को तुम्हें सुनाया है। हाँ, तो बात

यों है कि त्रिबेनी दादा कौशल्या का व्याह नन्दगाँव में करना चाहते हैं।"

संध्या होने को आ गई। गेनिया और पूरन की बातें नहीं खतम हुईं। इतने में दुर्बल चौधरी अपना हल-बैल लेकर आते दिखाई पड़े। गेनिया फौरन घर में चली गई। पूरन के रग-रग में खुशी की एक लहर दौड़ गई। वह खाट पर से उतरकर गुनगुनाने लगा। दुर्बल चौधरी के पास जाकर अनायास ही वह उनसे कुछ बातें करने लगा, उनके बैलों की पीठ पर हाथ फेरते हुए उनकी सराहना करने लगा। दुर्बल चौधरी बोले: "पूरन बाबू, खेती से तो तुम हमेशा दूर ही रहे। बैलों की कीमत तुम क्या जानो? हम लोगों के तो ये ही सर्वस्व हैं।"

"नहीं चौधरी, मैं लाख खेती से दूर रहा, लेकिन अपना जवार, हल, बैल, और खेत मुझे कभी नहीं भूले। आज मेरी नौकरी भी अच्छी लग गई है, वहाँ सब तरह का आराम भी है, फिर भी मेरी तबीयत जितनी अपने देहात में लगती है, उतनी और कहीं नहीं।"

"हाँ भइया। घर का सर्वनाश तो अब हो ही गया। अकेले तुम बचे हो, कब तक रहोगे कानपुर और कलकत्ता? अब अपना घर बसाओ और खेती-बारी सँभालो।"

रात-भर पूरन अपने मचलते हुए अरमानों को लेकर सोया। सबेरे उसकी साँसों में खुशी की सुगन्ध थी, उसकी भावनाओं में एक ताजगी थी, उसकी आत्मा में एक विस्तार था। आज वह नन्दगाँव लौट जाने की बात सोच रहा था। किन्तु त्रिबेनी महतो पिछली रात टाँडा से लौट आए थे। आज वे पूरन को अपने घर पर जरूर बुलाएँगे। अतः उसने अपना लौटना उस दिन के लिए और स्थगित कर दिया।

दोपहर को पूरन त्रिबेनी महतो के यहाँ मेहमान रहा और शाम को भी उन्होंने उसे अपने यहाँ ही भोजन करने के लिए रोक रक्खा। पहले बार और दूस बार जब पूरन मरजादपुर आया था, तो कौशल्या उससे लजाती-सकुचाती; और कभी ढिठाई से भी बातचीत कर लेती

थी। दिन में दो-चार बार किसी न किसी बहाने वह उससे अकेले में बातें भी कर जाती थी। अपनी सहेलियों के साथ तो वह उससे काफी मजाक कर लेती थी। किन्तु इस बार वह दो-तीन दफे पूरन को किवाड़ की आड़ से ही देखकर चली गई। पूरन के सामने से भी यदि वह गुजर जाती, तो उसका मुँह शर्म से लाल पड़ जाता था। पिछले बार जब वह चौके पर खाने बैठता, तो कभी अचार, कभी दही, कभी कोई अन्य चीज ले आने के लिए उसकी माँ उसे बुलाती थी। किन्तु इस बार उसके खाते समय कौशल्या कोने वाले कमरे में बैठी हुई किवाड़ की आड़ से ही उसे देखती रही। बीच-बीच में उन दोनों की आँखें मिल जाती थीं और दोनों के बीच की दूरी में फूलों की पंखुड़ियाँ झड़ने लगती थीं। कौशल्या शर्म से और भी सुन्दर बन जाती थी और पूरन के चेहरे पर परेशानी की कुछ रेखाएँ उभरकर मिट जाती थीं।

पाँचवें दिन पूरन नन्दगाँव लौटा। उसका झूठा बहाना उसके लिए बहुत ही कीमती साबित हुआ। कितने ही तरह की मानसिक उथल-पुथल और बोझ से वह मुक्त हो गया। उसकी छुट्टी अब केवल चार दिन और रह गई थी। इस बार वह कानपुर में केवल दो-तीन महीने रहकर फागुन के प्रारम्भ में ही फिर अपने घर लौट आना चाहता था। इसीलिए उसने बसन्ती को विदा नहीं किया। घर क किसी की निगरानी में छोड़कर ही वह बाहर निश्चिन्त रह सकता था। और पूरन के घर की निगरानी के लिए बसन्ती से बढ़कर था ही कौन ? जब तक पूरन की खेती और गृहस्थी एक ढर्रे पर न चलने लगे तब तक के लिए उसके चाचा उसे खर्च देने के लिए तैयार थे। मरजादपुर से लौटते समय पूरन ने दुर्बल चौधरी से बसन्ती को फागुन तक नन्दगाँव में रखने की अनुमति माँगी थी। वे बसन्ती को तीन महीने नन्दगाँव में छोड़ने के लिए तैयार तो हो गए, लेकिन इस शर्त पर कि पूरन उसके खाने-पीने के लिए अनाज अपने चाचा के यहाँ से न ले। अपनी पतोहू के लिए वे स्वयं अपने घर से खर्च भेजना चाहते थे। उनके इस प्रस्ताव पर पूरन को मजबूरन राजी हो जाना पड़ा।

जिस दिन पूरन को जाना था, उस दिन दुर्बल चौधरी भी नन्द-गाँव आए। उसे गाँव के बाहर सड़क तक पहुँचाने के लिए उसके साथ गाँव के बहुत से लोग आए। रेशम टोले से रज्जन चाचा और अफजाल, गुल्जार टोले से घमंडी साह का लड़का, कुरमियाने के कई जवान, उसके चाचा तथा दुर्बल चौधरी उसके साथ स्टेशन तक आए। उसके चाचा ने उसके लिए अपने घर की इकट्ठा किया हुआ दो सेर घी दिया। तीन सेर घी दुर्बल चौधरी भी अपने घर से लाए थे। जीनत और पार्वती अपने लिए वैसा ही पायजेब मँगाने के लिए बसन्ती को रूपया दे गई थीं जैसा कि पार्वती की भाभी को पूरन ने भेंट किया था। मंगल चौधरी के लड़के किशोर ने पूरन से अपने घोड़े के लिए एक जेरबन्द और कोड़ा लाने का अनुरोध किया था। जीनत, पार्वती, सुभागी, सरीखी गाँव की सभी छोटी बहनें उसे बिदा देने के लिए उसके घर आई थीं। बसन्ती ने कम से कम चार दिन खाने भर को पर्याप्त पूरियाँ, मूँग के लड्डू, गोझिया, अनरसा और न जाने क्या क्या सामान एक झपोली में भर कर रख दिया। दिन भर बड़ी ही रुचि और परिश्रम से उसने यह सब सामग्री तैयार की थी।

दोपहर की गाड़ी से पूरन कानपुर के लिए रवाना हुआ। इसी समय जाने वाली गाड़ी से, आज से दस वर्ष पहले अनजान संसार में कूद पड़ने के लिए भी उसने प्रस्थान किया था।

———

आठवाँ अध्याय

गिरिमालाओं से रूठकर, चट्टानों पर उछलते कूदते मैदान में आने वाले झरने के स्वच्छन्द प्रवाह को कैसे रोकेंगे आप ? उसके रास्ते में आकर ? यह सम्भव नहीं। वह नटखट अपना दूसरा रास्ता न बना लेगा ? बाँध बाँधकर भी आप उसे आगे बढ़ने से नहीं रोक सकते। बाँध को तो वह तोड़ ही डालेगा, चाहे फिर आगे का नीरस मैदान उसे सोख कर समाप्त ही क्यों न कर दे। वह शिलाखंडों पर खेलनेवाला जो ठहरा। तो, उसे रोकना असम्भव है। अलबत्ता, उसे वश में किया जा सकता है, बहाव की दिशा में उसे मोड़ा जा सकता है। आप पूछेंगे, कैसे ? स्नेह के दो कगारों में बाँध कर।

घर पर पूरन को उसके पिता खेत में काम न करने के कारण, ढोरों को छोड़कर खेल में लग जाने के कारण, हमउमर लड़कों से झगड़ने के कारण, आए दिन पीटते थे। लेकिन नतीजा उसका उल्टा होता था। हर मार बालक पूरन की चेतना पर पिता के प्रति घृणा की एक रेखा छोड़ जाती थी। यही घृणा की रेखाएँ बढ़ते-बढ़ते एक दिन पूरन के लिए शक्ति की किरणें बन गईं। अपने पिता को, अपने घर को, पराया समझकर एक दिन वह अनजान रास्ते पर निकल पड़ा।

वही अक्खड़ पूरन चार महीनों से मनोहर के बगीचे में एक जवान आदमी का काम कर रहा था। वह मनोहर के दाहिने ढेकुल से पानी निकालता था, दिन भर फावड़े से धरती खोदता था, खेत से घास-फूस निकालता था, बढ़ते हुए पौदों को देखकर उसे खुशी होती थी।

आखिर क्यों ?

इसलिए कि, मनोहर ने पराया होते हुए भी पूरन को स्नेह दिया था, उसके पीछे उसका चाहे जो भी उद्देश्य रहा हो। मनोहर ही

नहीं, उसके परिवार के पाँचों प्राणी उससे अपनेपन का व्यवहार करते थे। लाली उसे छोटे भाई की तरह मानती, उसकी माँ का व्यवहार उसके प्रति बेटे का-सा था और रूपा से उसका सम्बन्ध दो हमउमर भाई-बहन-जैसा था।

आम के बौरों की भीनी-भीनी खुशबू में लुकी-छिपी गर्मी आई। उमस बढ़ाकर, पसीना बहाकर, धरती को तपाकर, वह चली गई। लगभग इन्हीं दिनों पूरन ने अपना गाँव छोड़ा था। अब उसे पूरा एक वर्ष परदेश में रहते हुए बीत गया था। गुजरे हुए बारह महीने कितने उतार-चढ़ाव के साथ बीते थे, यह सोचकर उसे स्वयं अपने ऊपर आश्चर्य हो रहा था। घटनाओं का नाटकीय हेर-फेर कभी-कभी बहुत ही साफ होकर उसके मानस-पट पर उभर आता था और पूरन का हृदय उद्वेलित हो उठता था।

पके आमों की सुगन्धि पाकर उमड़ती-घुमड़ती, गरजती-चमकती बरसात आ गई। अमरूदों के बाग में फूल आ गए। मनोहर के बगीचे में लगाए हुए पपीतों के फल बढ़ने लगे। नई-नई तरकारियाँ बरसात के लिए बोई जाने लगीं। गेंदे के पौधे मुलायम धरती पर हर जगह बेतरतीब उग आए। सुगन्धि और सौन्दर्य बिखेरने के लिए उन्हें किसी क्यारी की सीमा या माली की काट-छाँट मान्य नहीं। इस समय पूरन के लिए इतना अधिक काम रहने लगा कि उसे और कुछ सोचने का मौका ही नहीं मिलता था। मनोहर का सारा परिवार अपने फूलों और तरकारियों की खेती को अगले चार महीनों के लिए तैयार कर देने में तल्लीन था।

दो महीने बाद अमरूद पकने लगे। पूरन फिर बगीचे में अमरूदों की रखवाली में लग गया। उसके लिए मनोहर ने वहाँ एक छप्पर डाल दिया था। पूरन का स्वच्छन्द एवं अवकाशपूर्ण जीवन पुनः शुरू हो गया। दिन भर वह पक्षियों के कलरव की झंकार के बीच रहने लगा। अब उसके हाथ में घट्ठे पड़ गए थे। पिछले पाँच-छः महीनों की मेहनत के कारण अब बाग में रहना उसे आरामदेह लग रहा था।

साथ ही साथ अब उसकी कल्पना भी उड़ानें भरती थीं। उसकी तबियत होती थी कि वह पुलिस-लाइन देखने जाया करे। कभी वह सोचता कि कुछ और बड़ा होकर वह भी पुलिस में भर्ती होगा, तरक्की करके दीवान बनेगा, फिर जमादार होगा और उसके बाद कप्तान और कम्पनी कमान्डर बनेगा।

जब झमाके के साथ पानी बरसने लगता, तो पूरन अपने छप्पर के नीचे आ जाया करता था, और वहाँ बैठे-बैठे कितनी ही किस्म की बातें वह सोचा करता था। ऐसे समय में अक्सर उसे अपना गाँव, लहराती हुई आमी नदी, और उसका विस्तृत हरा-भरा कछार उसके सामने घूम जाता था। हृदय में एक तकलीफ-भरी चाह पैदा होती थी, उन दृश्यों को देखने की और मन मसोसकर रह जाता था। ऐसे समय में वह उदास हो जाया करता था। एक दिन दोपहर को अचानक पानी बरसने लगा। पूरन छप्पर के नीचे हथेलियों पर सर रक्खे हुए अपनी चिन्ताओं की कल्पना में लीन बाँस की बनी हुई एक छोटी-सी खटिया पर सो गया। उसी समय छप्पर के पीछे से रूपा ने प्रवेश किया। उसके दाहिने हाथ में एक थाली थी, जिसमें पूरन के लिए भोजन रक्खा हुआ था और उसके बाएँ हाथ में लोटे में पानी था। वह केवल एक हरे रंग की साड़ी भर पहने हुई थी। आँचल के दोनों छोरों को उसने नीचे कमर से बाँध लिया था। जल्दी-जल्दी आने से उसकी साँसें तेज चल रही थीं और महीन साड़ी के भीग जाने से उसके शरीर के कमर से ऊपर का भाग अर्धनग्न-सा हो रहा था। उस अज्ञात-यौवना के वक्षदेश का वर्तुल उभार साँस की तेजी से उछल रहा था। नाभि के नीचे का क्षीण उदर-देश भी वक्ष के भार से डगमग था। निरावरण कन्धों पर पानी की बूँदें गिरती थीं, टूट जाती थीं और चिकनी बाँहों पर ढुलक पड़ती थीं।

दबे पाँव पूरन के ऊपर झुककर रूपा ने देखा, तो वह बेखबर सो रहा था। उसने हाथ की थाली और लोटे को जमीन पर रक्खा। अपने माथे पर से पानी की बूँदों को उँगलियों में समेटकर उसने पूरन के

मुँह पर छींटा मारा। वह चौंककर उठा और उसके हाथ रूपा के गले में उलझ गए। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसके भीगे हुए शरीर का ठंड लगने से पूरन पूरी तरह से जाग गया। उसने रूपा के उस भीगे हुए रूप को देखा और काफी देर तक एक अनमने भाव से देखता रहा। रूपा हँसी को रोककर, अपनी काली भँवों को उठाकर, छुरे की फाल से सफेद अपाङ्गों को फैलाकर, हलके रोष का प्रदर्शन करती हुई बोली—"क्यों पूरन, आज खाना नहीं खाओगे क्या? जानते हो कितने बज गए?"

पूरन अभी तक अलसाया हुआ उसी को देख रहा था। रूपा ने उसके दोनों हाथ पकड़कर झकझोरते हुए कहा—"ओफ ओह! अभी तुम्हारी नींद ही पूरी नहीं हुई! तीन बज गये, तीन! उठो, अब खाट छोड़ो, खाना खा लो।"

पूरन अँगड़ाई लेकर उठ पड़ा। खटिया के नीचे एक चटाई पर बैठकर वह भोजन करने लगा। छप्पर के एक किनारे टोकरी में रक्खे हुए पके-पके अमरूदों में से दो अमरूद निकालकर रूपा ने खाना शुरू किया।

वर्षा बीत चली। धरती पर खंजन उतर आए। अमरूद की फसल खत्म हो गई। पूरन को अब फिर जाड़े की तरकारियों के बोने और सींचने के काम में लगना पड़ा। खेत में कुदाल चलाने, ढेकुल से पानी निकालने, क्वार की तपती धूप में जुते खेतों की घास निकालने जैसे काम फिर शुरू हो गए। कमर कसकर पूरन फिर संघर्ष में जुट गया।

पूरन के शरीर की गठन बहुत अच्छी थी। उसके बल्ले मजबूत थे। वह खिलाड़ी था, इसलिए उसका कस भी अच्छा था। इतना सब होते हुए भी वह अभी नरम आयु का था। मनोहर के साथ ढेकुल चलाने से वह बुरी तरह थक जाता था। बेदम होकर कभी-कभी तो वह खेत में ही सो भी जाया करता था और तब सूरज की गरम किरणें, ठंढ़ी हवा के झोंके, या फिर हँसती-खिलखिलाती रूपा ही आकर उसे जगाती थी।

एक दिन पूरन लगातार दो-तीन दिन से ढेकुल चलाने के कारण बुरी तरह थककर चूर हो गया। संध्या का समय था, ढेकुल की बल्लियों से रस्सा खोलकर लिए हुए वह मनोहर की झोपड़ी की ओर आ रहा था। डूबते हुए सूरज की सुनहरी किरणें पेड़ों की पत्तियों से छन-छन कर पूरे बगीचे की खूबसूरती पर चार चाँद लगा रही थीं। खेतों की मेड़ों पर कहीं-कहीं उगे हुए कास के पौधे अपने सफेद फूलों पर इठलाकर मस्ती से झूम उठते थे। पूरन की निगाह सन्ध्या की नीरवता में सिहरते हुए उन कास के फूलों पर पड़ी। उसके भीतर एक हूक उठी और आमी के कछार में दूर तक क्षितिज को छूने वाला, कास के फूलों का सफेद मैदान उसकी आँखों में फैल गया। ऐसी ही शामों को माँ की गोद-जैसी पावन उस नदी की तलहटी से वह अपने ढोर लेकर वापस लौटता था। उसके हाथों में मछलियों का सेल्हा और उसकी बंसी रहती थी।

अति परिश्रम के कारण पूरन के शरीर का एक-एक अणु रो देना चाहता था, लेकिन उसका मन बहुत ही दृढ़ था। शरीर की तकलीफ से, भूख से, या किसी भय से वह दबना नहीं जानता था। उसका शरीर शिथिल पड़ गया था, सीने की हड्डियाँ दिखाई पड़ने लगी थीं। उसकी मुलायम अँगलियों के सुन्दर पोर ऐंठे-से जा रहे थे, हथेलियों में घट्ठे पड़ गए थे और उसके लचीले शरीर की जोड़ों में रात को सोते समय दर्द होता था। लेकिन अपने पिता और माता के प्रति उसकी घृणा इतनी बलवती थी कि उसे घर की याद नहीं आती थी।

लेकिन आज सहसा कास के फूलों को देखकर पूरन के मन पर एक जबर्दस्त धक्का लगा। उसके सामने दो-तीन वर्ष पहले का एक दूसरा पूरन अपने कई रूपों में पूरी स्पष्टता के साथ आने लगा—कभी गुल्ली पर खींचकर डंडा मारता हुआ, कभी आमी के कछार में भैंस की पीठ पर बैठकर गाँव के गीतों को गाता हुआ, कभी पूर्वी क्षितिज में सुनहरे बादलों के छँट जाने पर अपनी गाय-भैंसों के साथ नदी की ओर आता हुआ, कभी शरद की दूधिया रातों में अपने हम-

उमर दोस्तों के साथ कंठासुर और कबड्डी खेलता हुआ, कभी डुँड़वा पीपल पर लगे हुए शहद के छत्ते में से मधु निकालता हुआ, कभी काली घटाओं के छा जाने पर जल्दी-जल्दी गाँव की ओर भागता हुआ और कभी आकाश में तैरते हुए रंगीन बादलों के वितान-तले आमी की धार पर नाव खेता हुआ।

मनोहर के बगीचे का नौकर पूरन, इस आजाद पूरन की याद से तड़प उठा। हृदय की चोट आँखों से आँसू बनकर बह चली। उसने हाथ के रस्से को वहीं जमीन पर रख दिया और फफक-फफककर रोने लगा।

अँधेरे की कालिमा ने गोधूली को रात्रि में बदल दिया। पूरन अभी तक रो रहा था। उसके मन में न जाने कितना विषाद भरा था, जो आज अपना निकास खोज रहा था। उसके रूखे गालों पर मोटी-मोटी आँसुओं की रेखाएँ उभर आई थीं। उसने घुटनों पर अपना सर रक्खा था और उसकी सिसकियाँ अभी बन्द नहीं हुई थीं कि सहसा उसने रूपा की आवाज सुनी। वह उसके पीछे खड़ी थी।

"तुम रो क्यों रहे हो पूरन?" रूपा ने उसके पास बैठते हुए कहा।

पूरन चुप हो जाना चाहता था। वह अपने आँसू पोंछने लगा। लेकिन सहानुभूति पाकर उसका भीतरी विषाद उमड़ पड़ा। वह और भी सिसक-सिसककर रोने लगा। उसका मुँह अपनी साड़ी के छोर से पोंछते हुए रूपा ने पूरन के हाथों को अपने हाथों में ले लिया। उसके सामने बैठते हुए उसने पूछा—"बोलो पूरन, तुम क्यों रो रहे हो? क्या तुम्हें किसी ने मारा या कुछ कहा है? बताओ, मैं तुम्हें शाम से ही ढूँढ़ रही थी। आज क्या हो गया है तुम्हें?"

"मुझे आज अपने गाँव की बहुत याद आ रही है रूपा।" पूरन ने सिसकते हुए कहा।

"तो रोने की कौन-सी ऐसी बात है? मैं दादा से कह दूँगी, कल ही तुम अपने गाँव चले जाना। वे जाकर तुम्हें गाड़ी पर बैठा देंगे।"

"नहीं रूपा, मैं अपने गाँव अभी नहीं जाऊँगा। बड़ा होकर जब मैं अच्छी नौकरी कर लूँगा, तभी घर जाऊँगा।"

"यही तो तुम हमेशा कहते थे। तुम पुलिस में ही नौकरी करना चाहते हो न? दादा भी तो कहते हैं, कि तीन साल बाद पूरन को कोशिश करके पुलिस में भर्ती करा दूँगा। अभी उसकी उमर ही बहुत कम है। तो फिर क्यों रोते हो तुम? दादा की पहचान बड़े-बड़े लोगों से है। वे तुम्हें जरूर नौकरी दिला देंगे।"

"अच्छा, आगे मैं कभी नहीं रोऊँगा। आज तो न जाने क्यों एकाएक मुझे अपना गाँव याद आने लगा था।"

"तो अब उठो, मैं तुम्हें मुँह-हाथ धोने के लिए पानी लाती हूँ।"

रूपा ने रस्से को अपने हाथ में उठा लिया और वह अपनी झोपड़ी की ओर चली। उसके साथ-साथ पूरन भी चला। भीतर जाकर रूपा ने पूरन के रोने की बात कुछ बढ़ा-चढ़ाकर अपनी माँ से बतायी। वह चौके में अगस्त के फूल तल रही थी। मनोहर भोजन करने के लिए बैठा था। रूपा जब पूरन के लिए लोटे में पानी लेकर बाहर चली गई, तो उसकी माँ ने अपने पति मनोहर से कहा—"मैंने कहा था न, पूरन से ढेकुल मत चलवाओ। पराए बालक की हाय क्यों मोल लेते हो? न जाने किस पाप से तीन-तीन लाल चले गए, अब अगला समय भी क्यों बिगाड़ते हो?"

मनोहर ने पहले तो यही कहा कि पाँच रूपया महीना और खाना-कपड़ा मुफ्त नहीं देता हूँ, लेकिन बाद में उसे भी अपनी गलती का भान हुआ। वह अपनी पत्नी से बोला – "तुम ठीक कहती हो। सच-मुच ही मैंने ऐसा होनहार और जीवट का लड़का नहीं देखा। किसी सुखी घर का मालूम पड़ता है। न जाने क्यों घर से इस तरह बेगाना हो गया है! कहता है पुलिस में भरती होऊँगा।"

दूसरे दिन पूरन के जिद करने पर भी मनोहर ने उसे कुँए पर नहीं खड़ा होने दिया। उसकी जगह पर उसने एक मजदूर रख लिया। उसने पूरन के लिए खेत में पानी बाँधने और काटने का काम रक्खा।

शाम को भोजन कर चुकने बाद रूपा की माँ उससे काफी रात-तक तरह-तरह की बातें करती रही और रूपा ने उसके सर में तेल लगाकर दबाया भी था। रूपा और पूरन, माँ से दो-तीन कहानियाँ सुन लेने के बाद उस रात को सोने के लिए गए। इस तरह पूरन के हृदय को दुःख पहुँचानेवाली नन्दगाँव की याद कम हो गई। चार-पाँच व्यक्तियों के उस परिवार में वह अपने को पराया समझ ही न पाता था। इतनी मात्रा में स्नेह का अनुभव उसने अपने जीवन में अभी तक नहीं किया था।

* * *

अनेक कड़ुवे और मीठे अनुभवों का सामना करते हुए पूरन ने मनोहर के उसी बगीचे में तीन वर्ष बिता दिये। इस बीच में वह कई बार मेढ़ामल के यहाँ भी गया, किन्तु वे हमेशा ही अफसोस के साथ अपनी तोंद पर हाथ रखते हुए 'कुछ दिन और' सब्र करने के लिए उससे कहा करते थे। मनोहर के छोटे-से परिवार में इन तीन वर्षों की अवधि में दो महत्वपूर्ण घटनाएँ घटीं। एक तो रूपा का विवाह हुआ और दूसरे लाली को एक लड़का पैदा हुआ।

शादी के एक वर्ष बाद रूपा का गौना गया। ससुराल जाते समय रूपा की जिद पर ही मनोहर ने पूरन को भी चार-छः दिन के लिए उसके साथ भेज दिया था। लेकिन पूरन वहाँ पर पन्द्रह दिन रह गया। रूपा उसे किसी तरह लौटने ही न देती थी। जब वह लौटने को कहता, तो वह उसका मुँह बन्द कर देती, स्वयं रोने लगती और उसका हाथ पकड़कर काफी देर तक अपने पास उसे बैठाए रहती थी। रूपा का व्यवहार ससुराल में भी पूरन के साथ वही अपने मैके-जैसा ही था। वह उसे अपने कमरे में बुलाती थी, घन्टों उसके साथ घुल-मिलकर बातें करती थी, उसके सर में तेल लगा देती थी, अपने ही पास उसे चबेना कराती थी।

लेकिन रूपा की ससुराल वालों को यह बात ज्ञात थी कि पूरन

मनोहर के यहाँ नौकर है। उसके साथ रूपा का वैसा घनिष्ठ व्यवहार उन लोगों को बहुत बुरा लगता था। उसकी सास ने रूपा से उसके व्यवहार के अनौचित्य की ओर इशारा किया और पूरन को घर भेज देने के लिए उससे स्पष्ट कहा भी। किन्तु रूपा ने किसी की रत्ती भर भी परवाह नहीं की। अन्त में पन्द्रहवें दिन उसके ससुर ने रूपा को बिना बताए ही, पूरन को मनोहर के यहाँ भेज दिया।

एक महीने बाद रूपा फिर लौटी। मनोहर स्वयं उसे ले आने के लिए गया था। इस बार रूपा की हालत को देखकर उसकी माँ ने प्रण कर लिया कि वह अपनी बेटी को दुबारा कतई न बिदा करेगी। वह उसकी ससुराल वालों को कसाई कहकर दिन-रात शाप देती रहती थी। रूपा के जिन गदराए गालों को देखकर उसकी बड़ी बहन लाली उसे गलफुलनी कहती थी, उसी रूपा का मुँह एक ही महीने में चुचके आम-जैसा हो गया था। उसके शरीर की दमकती हुई आभा पीली पड़ गई थी। जिस रूपा की पाक हँसी से प्रायः उस छोटे से बगीचे की हवा में खुशी की लहरें फैलने लगती थीं, वही यदि अब हँसने की कोशिश भी करती थी, तो विषाद ढलने लगता था।

इसी बीच में एक और घटना घटी। मनोहर ने उस बगीचे और खेतों का बारह साल के लिए पट्टा लिखवाया था और अभी पट्टे की मियाद भी चार वर्ष और बाकी थी। उसके जमींदार शहर के एक पुराने रायबहादुर के लड़के थे। उन लोगो के मन में बेइमानी बसी और जबर्दस्ती मनोहर को उस जमीन और बाग से बेदखल कर देने के लिए उन्होंने निश्चय कर लिया। पहले तो उन लोगों ने कुछ झूठे कागजात बनाकर मनोहर को दिखाया और उससे खेत छोड़ देने के लिए कहने लगे। यह धमकी भी दी कि यदि मनोहर ने उस जमीन और बाग को जल्द से जल्द नहीं छोड़ देगा, तो वे लोग उसे वहाँ से उजाड़कर उस सम्पति पर जबर्दस्ती कब्जा कर लेंगे। लेकिन मनोहर जिन्दगी भर ऐसे ही बिगड़े रईसों से पट्टे, रेहन और बैनामे लिख-लिखाकर अपना व्यापार करता था। उसकी इसी कुशल नीतिमत्ता की बदौलत उसके

दो बगीचे और थे, जिनमें उसके बड़े भाई के लड़के रहते थे और उसका असली घर भी वहीं पर था। वह कानून की बातों से वाकिब था और कई मुकदमे लड़ चुका था। माल के, और फौजदारी के भी। इसलिए उस पर जमींदार की घुड़कियों का कुछ भी असर नहीं हुआ, अपने पट्टे के सिलसिले में उसने रायसाहब के लड़कों के खिलाफ दफा एक-सौ सात (भविष्य में आक्रमण की आशंका) की एक नालिश कोतवाली में जाकर कर दी और उसके बाद वह फिर निश्चिन्त होकर अपना काम करने लगा।

जब से रूपा ससुराल से लौटकर आई, तब से वह दिन-प्रति-दिन स्वस्थ होने लगी थी। अपनी ससुराल की उसने अपनी माँ से बहुत शिकायत की थी। उसने उससे यह भी कहा था कि यदि उसे फिर उस घर में बिदा किया जायगा, तो वह जहर खा लेगी, या किसी कुएँ या तालाब में डूब मरेगी। फलस्वरूप रूपा की माँ कम से कम दिन में दस बार उसकी ससुराल वालों को गालियाँ देती, कोसती और उनके लिए अपशकुन मनाया करती थी। उसने अपनी बेटी को उस घर में दुबारा न बिदा करने का निश्चय कर लिया था।

एक दिन सुबह ही मनोहर अपनी पत्नी के साथ पुराने घर पर अपने भाई के लड़कों से मिलने और वहाँ के बगीचे की निगरानी करने के लिए गया हुआ था। वे दोनों शाम तक लौटने वाले थे। थोड़ा दिन चढ़ने पर पूरन खेत में तरकारियाँ तोड़ने के लिए गया। उन दिनों तरकारी कम निकलती थी और अकेला पूरन उन्हें तोड़कर सब्जी-मंडी पहुँचा आता था। पूरन अधिक से अधिक सेर भर तरकारी तोड़ पाया था कि रूपा भी झोपड़ी से बाहर निकलकर खेत में उसके पास आई। पूरन ने देखा कि अभी दो महीने पहले की रूपा और उसके सामने वाली रूपा में बहुत अन्तर था। ससुराल जाने से पहले वह कभी भी सुस्त चाल से खेत में नहीं आती थी। वह पूरन के साथ ही टोकरी लेकर मचलती हुई, इठलाती और उससे चुहल करती हुई खेत में आती थी और तरकारियों के तोड़ने में उससे होड़ लगा देती

थी। 'देखें किसकी टोकरी पहले भर जाती है', यह छोटी-सी दुलार-भरी उसकी चुनौती पूरन के लिए तरकारी तोड़ने के उस काम को खिलवाड़ बना देती थी। लेकिन पिछले महीने से वही काम उसे अखरता था। टोकरी कब आधी भर गई और कितनी देर में वह उसे पूरा भर लेगा, इन बातों का उसे तरकारी तोड़ते समय ध्यान रहने लगा था।

"आज रहने दो तरकारी तोड़ने को।" पूरन के पास रक्खी हुई टोकरी को उठाते हुए रूपा ने कहा।

पूरन उसे अवाक् देख रहा था। रूपा के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। पहले भी जब कई मजदूर रहते थे, तो पूरन को काम से बचाने के लिए वह उसकी टोकरी कहीं छिपा आती थी। घर वालों से छिपाकर अच्छे-अच्छे पपीते या आम के फल वह उसे लाकर देती थी। लेकिन इधर जब से वह अपनी ससुराल से लौटकर आई, तब से बहुत ही अनमनी रहा करती थी। पूरन उसके भावों को समझने की कोशिश करता था। कुछ-कुछ तो वह समझता था, लेकिन बहुत-कुछ उसकी समझ के बाहर था। आज सहसा रूपा के उसी पुराने रूप का आभास पाकर उसके रगों में खुशी की एक लहर दौड़ गई। उसने उससे पूछा —

"तो क्या आज तरकारी बिकने के लिए नहीं जायगी?"

"हाँ, नहीं जायगी। उठो, चलो, मेरे साथ। कितने दिन हो गए, मैंने तुमसे बात तक नहीं की।"

"लेकिन कल भी तो मुझे ही तोड़नी पड़ेगी?"

"क्यों तुम्हें ही तोड़नी पड़ेगी! बड़े तोड़ने वाले बन गए हो। कल तुम्हारे साथ मैं भी तोड़ूँगी, देखूँगी कितना तोड़ते हो?" इतना कह कर रूपा पूरन का हाथ पकड़कर उसे मेंड़ पर घसीट लाई और उसके हाथ में टोकरी देते हुए उसने पूरन को झोपड़ी में चलने के लिए कहा। जब पूरन झोपड़ी की ओर चला तो रूपा ने थोड़े से कुम्हड़ों के फूल तोड़कर अपने आँचल में रख लिया और वह फिर झोपड़ी की ओर लौट पड़ी।

घर में आकर रूपा ने चूल्हा जलाया। शाम के रक्खे हुए अगस्त के फूल चौके में मौजूद थे। अभी-अभी तोड़े हुए सफेद बैगन पूरन की टोकरी में थे और अपने तोड़े हुए कुम्हड़ों के फूल भी रूपा ने उसी टोकरी में रख दिया था। बैगन तथा अगस्त और कुम्हड़ों के फूलों को बेसन लगाकर रूपा ने तला और थोड़ी-सी पकौड़ियाँ भी बनाईं। पूरन के साथ उसने जल-पान में भी सहयोग दिया। लेकिन रूपा का पहले वाला साथ खाने का उल्लास न जाने कहाँ गायब हो गया था? पूरन के मन में उसकी इस उदासी का कारण पूछने की इच्छा तो जब से वह यहाँ आई, तभी से थी, लेकिन ठीक अवसर न मिल पाने के कारण वह अभी तक पूछ न सका था। जलपान कर चुकने के बाद दोनों थोड़ी देर तक चुप रहे। मानो वे दोनों ही कुछ कहने की तैयारी में हों। रह-रह कर घनी बरौनियों वाली दो आँखें रूपा के मुरझाए चेहरे को देख लेतीं और फिर झुक पड़ती थीं, और दूसरी ओर विषाद से मँडरा कर दो बड़ी-बड़ी आँखें पूरन को देखकर फिर कजरारे अपाङ्गों में छिप जाती थीं।

"रूपा, तुम आजकल पहले-जैसी क्यों नहीं रहतीं?" पूरन ने शुरू किया।

छुरे की फाल-जैसी अपनी सफेद आँखों से रूपा ने कुछ क्षणों के लिए पूरन की आँखों में देखा। पूरन को लगा कि वे आँखें उसके भीतर विषाद के पैने काँटे चुभो रही हैं। फिर रूपा बोली—'क्या बताऊँ पूरन, कुछ समझ में नहीं आता। मेरे भीतर एक आग लगी रहती है। लगता है कि मेरा मन किसी बहुत ही प्यारी चीज से बिछुड़ गया है, वह उसी के लिए हमेशा तड़पता रहता है।"

"वह कौन-सी चीज है रूपा, जिसके लिए तुम्हारा मन हमेशा तड़पता रहता है। मुझे भी बताओ, उसे तुम्हारे पास लाने के लिए मैं अपनी जान की बाजी लगा दूँगा।"

"यह तो मैं नहीं जानती पूरन, किन्तु जिस समय तुम मेरे पास रहते हो, उस समय मेरा हृदय उतना व्याकुल नहीं रहता। जिस दिन

तुम वहाँ से चले आए, उसी दिन से मेरे मन में यह हूक पैदा हो गई है।"

"मैं तो हमेशा तुम्हारे साथ हूँ रूपा। आखिर इसमें....."
पूरन ने देखा कि कपोलों पर दो मोटी रेखाएँ डालती हुई बड़ी-बड़ी आँसू की बूँदे रूपा के वक्ष-देश पर चू पड़ीं। जैसे जलती हुई मोमबत्ती के सिरे से पिघलती हुई मोम की बूँदें।

"सच कहती हूँ पूरन, तुम्हारे पास रहने से मेरे मन की आग बहुत शान्त हो जाती है। तुमसे बातें करते-करते मेरा जी कभी अघाता नहीं। न जाने कब की यह मेरी प्यास है? उठो, आज मैं तुमसे जी भर कर बातें करना चाहती हूँ।" इतना कहकर आँसू पोंछती हुई रूपा सहसा उठकर खड़ी हो गई। पूरन का हाथ पकड़कर उसे वह उधर ले गई, जहाँ उसकी माँ सोती थी। कितनी ही देर तक वहाँ बैठे हुए दोनों बातें करते रहे।

एक दिन करीब दस बजे पूरन तरकारी-मंडी से लौट रहा था। उसी समय एक ताँगे पर बैठे हुए सेठ मेढ़ामल कहीं से आ रहे थे। पूरन को देखकर उन्होंने अपना ताँगा रुकवा दिया। बढ़कर पूरन ने उन्हें सलाम किया। सेठ जितने बार उससे मिलते, हर बार वे उसका नाम भूले रहते थे। उस दिन भी उन्होंने पूरन से पहले उसका नाम पूछा, फिर उससे बोले—"तीन दिन बाद तुम मुझसे मिलो, मैं तुम्हें नौकरी दूँगा।"

सेठ का ताँगा आगे बढ़ा। पूरन लौटकर अपने बगीचे में आ गया। उस समय मनोहर के परिवार के सभी लोग झोपड़ी के बाहर धूप मे बैठे हुए थे। फूल अभी तोड़े नहीं गए थे, इसलिए झोपड़ी के सामने दो बीघों के विस्तार में फैले हुए बिभिन्न प्रकार के फूलों के पौधे रंग-बिरंगे और छोटे-बड़े पुष्पों से लदे हुए थे। अगहन का महीना था। धूप आकाश में काफी चढ़ आई थी, किन्तु वह असह्य नहीं थी। फूलों की पंखुड़ियों से ओस की बूँदें गिर चुकी थीं और एक मादक सुगन्धि चारों ओर फैल रही थी।

साथ फूल तोड़ने के लिए रूपा पूरन का इन्तजार कर रही थी। पूरन के आते ही उसे साथ लेकर वह फूलों के खेत की ओर चली। उसके हाथ की फूलों वाली टोकरी में आज ढक्कन भी लगा हुआ था। खेत की मेंड़ पर पहुँचकर रूपा ने टोकरी का ढक्कन खोलकर उसमें से मूँग के दो बड़े-बड़े लड्डू, एक ढूढ़ी और थोड़ी-सी बुनिया निकाल कर पूरन को दिया। यह सब सामान सौगात के रूप में रूपा के घर आया था। मनोहर के बड़े भतीजे का गौना हुआ था और अभी थोड़ी देर पहले एक बारिन तरह-तरह के सामान, खिलौने, कपड़े तथा मिठाइयाँ-वगैरह लेकर आई थी। पूरन के हिस्से की मिठाइयाँ रूपा की माँ ने अलग रखवा दी थी। रूपा ने उसे अपने हिस्से की सारी मिठाइयाँ दे दी। पूरन के कहने पर भी जब रूपा ने उन मिठाइयों में से एक कण भी न खाया, तो उसने पूछा—"क्यों रूपा, क्या बात है? अपने चचेरे भाई के गौने का बैना तुम क्यों नहीं खा रही हो?"

"पूरन! विवाह और गौने से मुझे नफरत हो गई है। इस विवाह और गौने ने ही तो मेरी आत्मा में सदा के लिए एक कसक पैदा कर दी। ऐसी कसक, जिसका जहर न जाने कब तक मेरे तन-मन पर छाया रहेगा? मैं इस गौने की सौगात नहीं खा सकती।"

"तो मैं भी यह सौगात नहीं खाऊँगा रूपा।"

"क्यों पूरन? डर गए क्या? अभी तो तुम्हारी शादी होगी, गौना होगा....."

आगे रूपा कुछ और न कह सकी। पूरन को बड़े जोर से लगातार तीन छींकें आईं। छींक चुकने के बाद वह बोला—"रूपा, शादी का नाम मत लो। कहीं तुम्हारी तरह मेरे प्राणों में भी यह सदा के लिए कसक न पैदा कर दे? मैं शादी न...हीं....."

आगे के शब्द पूरन के मुँह में ही रह गए। एक छींक फिर उसे तड़ाक् से हुई। रूपा एकाएक चिल्ला उठी—"पूरन! तुम्हें क्या हो गया? इस तरह तुम क्यों छींक रहे हो?"

"मैं जानबूझ कर नहीं छींक रहा हूँ रूपा। जाने क्यों आज मुझे बहुत छींक आ रही है ?"

रूपा के मुख पर घबड़ाहट के चिह्न स्पष्ट हो गए। वह जैसे काँपने लगी। पूरन ने उससे पूछा—"रूपा! आखिर तुम इतनी परेशान क्यों हो ?"

"ऐसी छींकें बड़ी अपशकुन होती हैं पूरन। अच्छा, इस सौगात को तुम भी मत खावो। सब मिठाइयाँ उधर फेंक दो.....अच्छा फेंको मत, इसे मोतिया को दे दो.....वह बैठा है। अभी बुलाती हूँ उसे।.....मोती, आ...आ...तू...तू...।"

एक चितकबरे रंग का कुत्ता झोपड़ी के सामने से दौड़ता हुआ रूपा के पास आ गया। पूरन ने लड्डू, ढूढ़ी और बुनिया उसके सामने फेंक दिया। कुत्ता उन सौगात की मिठाइयों को खाने लगा। रूपा और पूरन ने साथ ही फूल तोड़ने के लिए खेत में प्रवेश किया।

मनोहर के जमींदार रायबहादुर साहब के लड़के ने पट्टे की लिखित शर्तों के बावजूद भी जबर्दस्ती उसे उस बगीचे से निकाल देने का निश्चय कर लिया। इसके लिए उन लोगों ने कुछ कञ्जरों और मुसलमानों को रूपया-पैसा देकर तैयार किया। फलस्वरूप एक दिन जब मनोहर का पूरा परिवार अपनी झोपड़ी में ही मौजूद था, तभी पन्द्रह-बीस बदमाश लाठी-डंडा लिए हुए बगीचे में घुस आए। खिले हुए फूलों के पौदों को उन लोगों ने उखाड़ डाला, फली हुई लौकी और कुम्हड़ों की नारों की जड़ों को काट दिया, बतिया पपीतों से लदे हुए पेड़ों को कुल्हाड़ी से धराशायी कर दिया। उन सब का यह सब अत्याचार देखकर पूरन का खून खौल उठा। वह ईंट-पत्थर चलाना शुरू करने वाला था, किन्तु मनोहर ने उसे डाँटकर मना कर दिया। अभी उन लोगों का उत्पात जारी ही था कि मनोहर छिपकर बगीचे से बाहर निकल गया।

अपनी जीविका को आँखों के सामने ही उजड़ते देखकर मनोहर जरा-सा भी विचलित नहीं हुआ। इस उपद्रव का उसने पहले से अन्दाज कर रक्खा था। जाते समय वह अपने घर वालों को सचेत करता गया कि वे लोग उन बदमाशों से कुछ भी न बोलें। यदि वे सब झोपड़ी में आग भी लगा दें, तो वे लोग बाहर निकलकर बैठे रहें। जब तक वह फिर लौट न आए, तब तक वे लोग बगीचे से बाहर किसी भी हालत में न जायँ। जाते समय अपने परिवार को सान्त्वना देने के लिए उसने बड़े अभिमान से कहा: "इन लोगो का कमीनापन मैं पहले से जानता था और इसके लिए मैंने इन्तजाम कर लिया है। बारह साल के बाद कौन कहे; मैं अब इस बगीचे और जमीन को कभी न छोड़ूँगा। शराफत से मुझे कोई झुकाना चाहे तो झुका ले, लेकिन जबर्दस्ती मुझे कैसे कोई दबा सकता है ? अब देखना है, यदि पूरे इस बगीचे को अपने नाम काश्तकारी न करवा लूँ, तो मेरा मनोहर नाम नहीं।"

आठ-दस बीघे में लगे हुए उस हरे-भरे बगीचे को बीरान करके वे बदमाश अपने साथ लाए हुए बोरों में तरकारियाँ बाँध-बाँध कर रवाना हुए। रायबहादुर के बड़े लड़के लल्लू बाबू ने उन सब को मनोहर की झोपड़ी को भी उजाड़ देने के लिए ललकारा। लेकिन एक तो उनमें से किसी ने आकर अपनी गिरोहवालों को बताया कि मनोहर दौड़ता हुआ थाने पर गया है, दूसरे सबो को तरकारियाँ ढोने की फिक्र अधिक हुई थी। इसलिए वे सब झोपड़ी की ओर नहीं बढ़े।

उन सब के चले जाने के बाद रायसाहब के दोनों लड़के अपने एक नौकर के साथ, जिसको आज के इस उपद्रव के लिए थोड़ी-सी शराब भी पिलायी गयी थी, मनोहर की झोपड़ी के पास आए। नौकर ने लल्लू बाबू का इशारा पाकर छप्पर को अपनी लाठी से पीटना शुरू किया। यहाँ तक तो गनीमत थी। संपत, लाली, रूपा उसकी माँ, और पूरन अपनी-अपनी झोपड़ियों से निकलकर बाहर खड़े हो गए। लल्लू बाबू जोश में आकर मनोहर का नाम ले-लेकर गालियाँ देने लगे। उनका

आदमी मनोहर की माँ, बेटी, बहन सभी को बनावटी नशे में गालियाँ दिए जा रहा था। सम्पत विष की घूँट पीकर उसकी गालियों को सुन रहा था, लेकिन पूरन के लिए उस नौकर का व्यवहार थोड़ी देर बाद असह्य हो गया। उसकी शारीरिक शक्ति का अन्दाजा उसने लगा लिया था। अपने को न सँभाल सकने के कारण अन्त में पूरन बोल पड़ा। उसकी आवाज सुनते ही वह आदमी पूरन के ऊपर लाठी लेकर झपटा। रूपा चीखकर पूरन से लिपट गई। सम्पत उसे बचाने दौड़ा।

संयोग से लाठी पूरन की पीठ पर पड़ी। ऐसी चोट तो वह कितने बार खा चुका था। नन्दगाँव में ताजियादारी के दिनों में गतका-फरी खेलते समय ऐसे कितने बार वह दूसरों को मारता था और स्वयं भी चार-छः बार पिट ही जाता था। लेकिन चोट के कारण उस समय उसका क्रोध उग्र हो उठा। रूपा से अलग होकर वह तेजी से उस आदमी की ओर झपटा और पहली ही सलामी में उसका लम्बा कुर्ता उसने फाड़ डाला। अब उस आदमी की भी नाटकीय उछल-कूद जाती रही। उसके क्रोध का पारा भी चढ़ गया। दूसरी चपेट में दोनों परस्पर गुथ गए। अब सम्पत भी अपने को न रोक सका। उसने बढ़कर उस आदमी की लाठी छीन ली। फिर पूरन और सम्पत दोनों ने मिलकर उसकी मरम्मत करना शुरू किया। लल्लू बाबू अपने भाई के साथ चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें गालियाँ देने लगे। लेकिन गालियाँ तो सब हवा में गईं और लात, घूँसे, थप्पड़ तथा ईंटों से सम्पत और पूरन ने उन बने हुए शराबी महोदय की खूब खातिर कर दी। जब वे तीनों आपस में गुथे ही हुए थे, तभी लल्लू बाबू ने गुस्से में आकर पूरन के सिर पर जूते की ठोकर से मारा। रायसाहबी की विरासत में गुस्से के साथ उन्हें दुबली-पतली देह भी मिली थी।

पूरन को अपने सिर की चोट खल गई। उसका क्रोध सीमा के बाहर हो गया। उस नौकर को छोड़कर वह लल्लू बाबू की ओर दौड़ा। उनकी पतली लम्बी टाँगों के नीचे जाकर उसने उन्हें अपने बराबर उठा लिया। सम्पत अभी उस नौकर से ही उलझा हुआ था।

अपने जमींदार से उलझने की हिम्मत उसमें नहीं थी। पूरन का वैसा साहसिक और भयंकर कार्य देखकर वह डर गया। उस नौकर को छोड़कर वह पूरन को मना करने के लिए चिल्लाने लगा—"पूरन ! पागल मत बन, छोड़ दे ! छोड़ दे, लल्लू बाबू को।"

वह नौकर अपनी लाठी और कुर्ता वहीं छोड़कर कुत्ते की-सी सरपट चाल से बगीचे के बाहर भागा। पूरन अपने क्रोध में सम्पत की आवाज न सुन सका। लल्लू बाबू को एकदम धम्म् से जमीन पर पटक कर वह उनके सीने पर चढ़ बैठा। लल्लू बाबू के भाई भी पूरन की ओर झपटे, उसे घसीटकर उन्होंने अपने भाई के ऊपर से अलग किया। उसके बाद दोनों भाई मिलकर उसे मारने लगे। पूरन की नाक से खून निकलने लगा, उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। फिर भी उन लोगों ने उसे मारना बन्द नहीं किया। दो आदमियों का सामना अकेले न कर सकने के कारण अन्त में पूरन ने एक ईंट चलाकर मारा और लल्लू बाबू के भाई का सर फट गया। लल्लू बाबू चिल्ला पड़े—"खून ! खून !! पकड़ो ! पकड़ो !!"

पूरन ने एक बार सहमी निगाहों से रूपा, लाली और सम्पत की ओर देखा। किसी ओर से कोई संकेत नहीं मिला। सभी जैसे जड़ हो गए थे। फिर उसने एक बार अपने चारों ओर देखा और उसी क्षण वह बगीचे से भाग निकला।

———

नवाँ अध्याय

फागुन में पूरन फिर अपने गाँव लौट आया। बहुत कोशिश-सिफारिश करने के बाद उसकी एक महीने की छुट्टी मंजूर हुई थी। उसके कानपुर चले जाने के बाद त्रिबेनी महतो दुर्बल चौधरी के साथ तीन बार नन्दगाँव आ चुके थे। पूरन का घर, खेत, पेड़, कुआँ, जो भी सम्पत्ति थी, उसे वे देख गए थे। बसन्ती से उन्होंने कौशल्या के विवाह की बात भी चलाई थी। पूरन उनकी निगाह में है, इस बात को भी उन्होंने बसन्ती से जाहिर कर दिया था। बसन्ती ने अपने चाचा को भी पूरन की शादी के विषय में बातचीत करने के लिए बुलाया था और दोनों ने मिलकर दुर्बल चौधरी को एक तरह से विवाह का अगुआ बना दिया था। पूरन को शादी के लिए राजी कर लेने का भार बसन्ती ने अपने ऊपर लिया था। त्रिबेनी महतो से, एक तरह से, अप्रत्यक्ष रूप में, कह दिया गया था कि वे अपने घर पर विवाह की आवश्यक तैयारियाँ करें।

जिस दिन पूरन घर आया, प्रायः उसी दिन से बसन्ती उससे विवाह की बात चलाने के लिए अवसर की ताक में रहने लगी। दो-चार दिन तो उसे नया-पुराना होने में लगा। एक दिन शाम को पूरन कहीं घूमने के लिए जा रहा था, तभी बसन्ती ने उसे बुलाकर अपने पास बैठने को कहा। पूरन के बैठने के बाद, दोनों थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर बसन्ती अनायास और अकारण ही मुस्करा पड़ी, फिर उसे छिपाने के लिए उसने अपना चेहरा नीचा कर लिया। पूरन ने पूछा—"क्या बात है दीदी? बड़ी खुश हो आज।"

"खुश नहीं खाक हूँ। मुझे तो आजकल बड़ी चिन्ता रहा करती है।" बसन्ती ने बनावटी भाव से कहा।

"क्यों, किस बात की चिन्ता है तुम्हें ?"

"चिन्ता इस बात की है, कि तुम्हारा घर अब मैं कब तक सँभालूँगी ? आखिर तुम अपनी शादी कब करोगे ? या जिन्दगी भर कुँआरे ही रहोगे ?"

"क्या करना है ब्याह-शादी करके दीदी ? यह भी एक जंजाल है। मैं नौकरी करूँगा और तुम यहाँ रहना, घर-खेत सँभालना।"

"वाह रे ! जैसे दुनिया में एक तुम्हारा ही घर-खेत है। मेरा कोई घर नहीं क्या, जो तुम्हारे घर का इन्जाम देखती फिरूँ ?.. ..... अच्छा, अब हँसी रहने दो। मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ। सोच-समझ कर जवाब देना।" अन्तिम वाक्य समाप्त करते-करते बसन्ती के होठों पर फिर बरबस मुसकराहट आ गई।

'हाँ, हाँ, पूछो तो सही, खूब सोच-समझ कर जवाब दूँगा।"

"तो, एक बात पहले यह बताओ कि जब तुम मरजादपुर गए थे, तो त्रिबेनी दादा की लड़की, कौशल्या को तुमने देखा था ?"

"त्रिबेनी महतो की लड़की को ?.....शंकरगढ़ के मेले में भी तो वह आई थी ? हाँ दीदी, क्या बात है ? उसे मैंने ऐसे ही देखा था। लेकिन तुम यह सवाल मुझसे क्यों पूछ रही हो ?"

"पूरन, अब तुमसे छिपाने की क्या बात है ? तुम्हारे कानपुर चले जाने के बाद त्रिबेनी दादा कई बार मेरे पास आए थे। तुम जानते ही होगे कि कौशल्या को छोड़कर उनकी कोई दूसरी सन्तान तो है नहीं। वे उसका ब्याह बहुत ही जान-बूझ कर करना चाहते हैं। न जाने क्यों तुम्हारा स्वभाव उन्हें, बेहद पसन्द है। तुम्हें राजी कर लेने के लिए मैंने उन्हें बात भी दे दी है।"

आखिर लिखा कैसे जाय कि पूरन को उस समय कितनी खुशी हुई ? इसका अन्दाजा सम्भवतः वे लोग आसानी से लगा सकते हैं, जिन्हें ऐसे अवसर का अनुभव है। ऐसा कीमती अनुभव दिल के भीतर छिपा रखने की चीज है और जो जितना ही चतुर होगा, वह उतनी सफलता से ऐसे अवसर पर अपने भावों को छिपा लेगा। ऐसी

अनमोल चीज को भी जो छिपाकर न रख सका, उसे बेवकूफ नहीं तो लापरवाह जरूर कहा जायगा। भीतरी खुशी से पूरन का चेहरा दमक उठा। लेकिन वह लापरवाह नहीं था। अपने भावों को छिपाकर वह बोला—"दीदी, तुम तो ऐसी बातें करती हो, जैसे मैं कोई पराया होऊँ। जो तुम्हारे मन में आए, मेरा कान पकड़कर करवा लो। अब फिर मुझसे कभी ऐसी बात मत पूछना।"

बसन्ती को वहीं छोड़कर पूरन सड़क की ओर चला। रास्ते में उसके हृदय की खुशी बरबस गुनगुनाहट के रूप में बाहर निकल ही पड़ती थी। रेशम-टोले में आकर वह अफजल के घर पर रुका। जीनत ने लाकर उसे अपनी टाँडे के सिल्क की ओढ़नी और सूथन के लिए बूटेदार रंगीन पाट का कपड़ा दिखाया। यह सब सामान अफजल ने उसके लिए फागुन की महाशिवरात्रि को शंकरगढ़ के मेले में पहनने के लिए ला दिया था। कुर्ती के लिए वह अपने करघे के एक रंगीन कपड़े पर बेलबूटे काढ़ रही थी। थोड़ी देर तक वह अफजल के घर पर रुका, लेकिन उसकी तबीयत वहाँ न लगी। वह गुलजार-टोले की ओर चल पड़ा। एकाएक अमराई की आड़ में उसने किसी को ऊँची अलाप में गाते सुना :—

"अइहो कि ना बरसाने, खेलन होरी ॥"

पूरन अपनी जगह पर रुक गया। ध्यान से सुनने लगा कि कौन गा रहा है। वही बुलन्द आवाज फिर आई।

"तब तो कह्यो आवन दस दिन में,
अब लाग्यो तरसाने।
खेलन होरी ॥"

वह आदमी जब अमराई के कोने पर आ गया, तब पूरन ने उसे पहचाना। रज्जब चाचा ताना-पाई करके, सूत की गड्डी कन्धे पर रक्खे और सरकण्डे की तीलियाँ बगैरह लादे-लादे चले आ रहे थे। पूरन की तबीयत में आया कि वह उन्हें उनके मीठे सुर पर दाद दे। किन्तु

वह रुका नहीं; आगे बढ़ गया। उसे एक अपनी ही मस्ती थी, जिसका आनन्द वह एकान्त में लेना चाहता था।

मोटर के अड्डे पर आकर माधो की दूकान से उसने दो बीड़ा पान खाया और आमी के पक्के घाट पर आकर खड़ा हो गया। नदी के उस पार पूर्वी क्षितिज पर चन्द्रमा निकल रहा था। पुरवाई के मन्द झोंके आमी की लहरों से छेड़छाड़ कर रहे थे। उस पार जमुहानी में पक्षियों का कलरव शान्त हो गया था। हवा मचलती हुई किसी अभिसारिका की तरह अपने पीछे एक भीनी खुशबू छोड़ती हुई जाने कहाँ भागी चली जा रही थी। पूरन के मन में आया कि वह नदी की तलहटी में जाकर खूब घूमे।

थोड़ी देर तक वह वहीं घाट पर खड़ा रहा। उसकी आँखों के सामने बदलते हुए अनेक नए-नए चित्र आ-जा रहे थे। कभी घूँघट के भीतर से मुसकाती, कौशल्या उसके बाएँ आकर खड़ी हो जाती, कभी अपने कीमती कपड़ों और जेवरों के भार से दबी-सी दूल्हन कौशल्या उसके साथ भाँवर घूमती होती। कभी पूर्वी क्षितिज से आँचल सँभालती, झिझकती, सिमटती आती थी और कभी आमी की लहरों पर लज्जा से मिटती, बनती, उन्नत वृक्षों को ढकती, अलस गति से चलती दीख पड़ती थी।

दूसरे दिन सबेरे ही बसन्ती ने एक आदमी मरजादपुर भेजा और तीसरे दिन शाम को दुर्बल चौधरी और त्रिबेनी महतो नन्दगाँव आ गए। पूरन एक ही महीने की छुट्टी लेकर आया था, इसलिए इसी अवधि के भीतर ब्याह की तिथि निश्चित करनी थी। गाँव के पंडित से लगन सोधवाकर फागुन के दूसरे पाख की पञ्चमी को ब्याह की तिथि निश्चित की गई। पन्द्रह दिन के भीतर ही ब्याह की अन्य छोटी-बड़ी रश्मों के लिए दिन तै कर दिए गए। फलदान देकर त्रिबेनी महतो दुर्बल चौधरी के साथ मरजादपुर की ओर रवाना हुए।

गाँव भर में पूरन के ब्याह की बात फैल गई। औरत, मर्द, जवान, बूढ़े सभी उसके ब्याह की चर्चा चला रहे थे, उसके भाग्य की सराहना

कर रहे थे। पूरन को यह बात कुछ नागवार मालूम पड़ती, कि बच्चों के विवाह की तरह पन्द्रह रोज पहले से ही उसके घर में विवाह के गीत गाए जायँ, दुनिया भर के रश्म-रिवाजों का धूमधाम से पालन हो। किन्तु बसन्ती के सामने उसकी एक भी न चल पाती थी। उसके मन में अपने भाई के विवाह को अपनी ही मान्यताओं के अनुसार अच्छे से अच्छे ढंग पर करने की एक साध थी, बारात बिदा करने और दूल्हन-सहित पूरन को पालकी से उतारने की स्त्री-सुलभ एक अतृप्त लालसा थी। इन दिनों उसे अपनी-जैसी खुशनसीब कोई भी गाँव की दूसरी स्त्री नहीं लग रही थी।

जिस दिन पूरन की तिलक आई, उसी रोज से उसका घर मंगल-गीतों से गूँजने लगा। शाम को उसके आँगन में गाँव की लड़कियाँ भर जाती थीं। आकाश का चाँद भी उनके मधुर गीतों पर रुपहली चाँदनी बिखेरता हुआ उन्हें दाद देता था। मलय-पवन की सुरभित लहरियाँ उन मधुर गीतों को नन्दगाँव के सीवान भर में फैला देती थीं। ऐसी शामों को पूरन आमी की तलहटी में जाकर बड़ी देर तक घूमता रहता था। करवन, बेला और खरहद के फूलों की खुशबू में उसके अरमान अँगड़ाई लेने लगते थे। वह आने वाली पञ्चमी की मीठी याद में गुनगुनाने लगता था।

ज्यों-ज्यों पूरन के विवाह का दिन निकट आ रहा था, त्यों-त्यों उसके घर में उत्सव और भीड़-भाड़ अधिक रहने लगी। बसन्ती विवाह की तैयारी में दिन-रात एक किए हुए थी। घर की सफाई हो जाने के बाद द्वार पर बन्दनवार सजाए गए, आँगन में मंगल-कलश रक्खा गया। जिस घर में कोहबर था, उसे विशेष मांगलिक उपकरणों से अलंकृत किया गया। पार्वती ने मूँज के रंग-बिरंगे वरुओं से तोते, हिरन, बछड़ा पिलाती हुई गाय और विभिन्न मुद्राओं में स्त्री-पुरुषों की तस्वीरें बनाई थीं, जिन्हें उसने पतले सूत के धागों के सहारे प्रत्येक दरवाजे के सामने लटकवाया था। जीनत ने अपने करघे के रंग-बिरंगे, झिलमिल पाट के सूतों की कई लहरदार झालरें तैयार की

थीं, जिनसे कोहबर तथा दूसरे कमरों के दरवाजों को सजाया गया था।

बसन्ती ने उस घर को, जिसमें पूरन अपनी सुहागरात मनाने वाला था; विशेष रूप से सजाया था। इस कमरे के लिए उसने जीनत, सुभागी और पार्वती के सहयोग से दो सजावट की चीजें विशेष रूप से तैयार कराई थीं। एक तो था रंगीन कपड़े का वितान, जिस पर रेशमी तागों से सुन्दर चित्र खचित थे और दूसरा था रंग-बिरंगे पाट के सूतों से बुना हुआ सींक का परदा। इसकी रूप-रेखा जीनत अपने मामू के यहाँ से देखकर आई थी और उसने ही बसन्ती को वैसा परदा तैयार कराने की राय भी दी थी।

पञ्चमी को बारात मरजादपुर गई। दूसरे दिन लोग मरजाद रहे, और तीसरे दिन बारात फिर वापस आ गई। पूरन और कौशल्या को वर-वधू के रूप में बसन्ती ने पालकी से उतारा। रंग-बिरंगे मूँज के डलवे उनके रास्ते में, दरवाजे के बाहर से लेकर घर के भीतर तक रक्खे गए थे, जिन पर पाँव रखते हुए वर-वधू ने घर के भीतर प्रवेश किया। गाँव की सोहागिन स्त्रियाँ कोहबर वाले कमरे में गीत गा रही थीं। गाँव की बहनें द्वार पर पूरन का रास्ता रोकती थीं और नन्दगाँव के रिवाज के अनुसार पूरन से जब कुछ भेंट पा जाती थीं, तभी वे उसके रास्ते से अलग हटती थीं। इस तरह विविध मांगलिक समारंभों के बीच पूरन ने अपने घर में प्रवेश किया।

मादक सन्ध्या के उन्मादी मलय-पवन के झोकों ने पूरन को जगाया। वह दोपहर से ही सोया हुआ था। जब वह उठा, तो दरवाजे पर कोई नहीं था। दिन और निशा की मिलन बेला थी। उसके दरवाजे के उत्तर की ओर कुएँ पर गाँव की तीन-चार स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। वे आपस में बातें भी करती जा रही थीं।

एक कह रही थी "·····जेवर से तो लद कर आई है।"

दूसरी बोली—"मैंने तो अच्छी तरह देखा है, मुँह की ऐसी गढ़न तो कम देखने में आती है।"

तीसरी बोली—"भगवान् कसम, आँखें तो उसकी ऐसी हैं कि मेरे मन में तो चोर बस गया।"

पूरन उठकर सड़क की ओर टहलने गया। पक्के घाट पर वह थोड़ी देर तक खड़ा रहा। आज उसकी तबीयत नदी की तलहटी की ओर जाने की नहीं हो रही थी। थोड़ी रात बीते वह फिर घर लौट आया। उसके आँगन में गाँव की स्त्रियों और लड़कियों की एक बाढ़-सी आई हुई थी। उनकी मुक्त हँसी समीर की लहरों पर खेल रही थी। पार्वती छल्लियों को खींचकर, थाप देकर, ठुनकियाँ मारकर ढोलक का साज-बाज दुरुस्त कर रही थी। जीनत अपनी नई दूल्हन भाभी के साथ सोहागरात वाले कमरे में बैठी हुई थी। कोशिश उसकी यही थी कि सबसे पहले वही नन्दगाँव में नई-नई आई हुई उस चिड़िया से घुल-मिल जाय। बसन्ती पूरन की ही राह देख रही थी। उसने उसे घर में ले जाकर भोजन कराया। पूरन जब खाकर दरवाजे पर चला आया, तब स्त्रियाँ चौके पर आईं।

काफी रात बीत जाने पर धीरे-धीरे सभी स्त्रियाँ अपने-अपने घर जाने लगीं। पूरन बाहर दरवाजे पर सोया हुआ था। सबसे पिछली गिरोह में मंगल चौधरी के परिवार के साथ बसन्ती भी घर में से निकली। उसने पूरन को जगाकर कहा—"मुझे तो आज पार्वती अपने घर ले जा रही है। यह पगली किसी तरह मानती ही नहीं।"

पूरन कुछ बोलने वाला ही था कि पार्वती की माँ बोल पड़ी—"हाँ बेटा, आज बसन्ती को मैं अपने घर ले जा रही हूँ। आज ही नहीं, अब फागुन भर वह मेरे घर रहेगी। और सुनो, कहीं यह मत समझ लेना कि मैं उसे खाना भी दूँगी, भोजन वह तुम्हारे यहाँ ही करेगा।"

"क्या समझे पूरन भइया?" पार्वती की भाभी ने एक मीठी चुटकी ली और सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं।

थोड़ी ही देर में पूरन का दरवाजा बिलकुल खाली हो गया। बसन्ती मंगल चौधरी के घर चली गई। वातावरण एकदम शान्त हो

गया। पूरन ने आकाश की ओर देखा और एक अँगड़ाई ली। उसके सीने के भीतर कोई चीज मचल-मचल कर उसे गुदगुदा देती थी। बसन्त ऋतु के समीर के झोंके उसके रग-रग में पैठकर उसे मदहोश किए दे रहे थे। वह खाट पर से उठा। एक मधुमय पुलक, एक मीठी सिहरन, एक मादक रोमांच-सा उसने अनुभव किया और फिर उसके पाँव घर के भीतर की ओर अपने आप बढ़ने लगे।

उसने अपने कमरे में प्रवेश किया। लाल चूनर में लिपटी हुई एक सुडौल मूर्ति पलङ्ग से उतर पड़ी। पायल भी अपनी हँसी न दबा सके। एक झंकार सारे कमरे में गूँज उठी। जमीन पर रक्खी हुई दरी पर कौशल्या बैठने ही वाली थी कि उसकी बाँहें दो अन्य भुजाओं में उलझ गईं। दो कुशल उँगलियों ने उसके मुख से घूँघट उठाया। दो खूबसूरत कपोलों पर लज्जा की लाली दौड़ गई। उन्नत वक्ष साँसों के कम्पन पर खेलने लगे। पूरन पलङ्ग पर बैठ गया। उसने कौशल्या की मांसल बाँहों को खींचकर उसे भी अपने पास बैठाना चाहा। लेकिन लचीले बेंत की तरह झुककर वह फिर सीधी हो गई। उसकी झुकी हुई पलकें ऊपर उठीं और उन्होंने धनुषाकार काली भँवों को छू लिया।

"कहीं ऐसा भी होता है ?" कौशल्या ने धीरे से कहा और वह झमककर दरी पर बैठ गई। अपनी बाँहों को उसने जाँघों के बीच दबा लिया था। तब ठोढ़ी के नीचे दो उँगलियाँ रखकर पूरन ने उसके मुँह को ऊपर उठाया। कौशल्या ने होंठ बिचकाकर, भौंहें चढ़ाकर फिर घूँघट में मुँह छिपा लिया।

"कहीं ऐसा भी होता है ?" पूरन ने उसकी कंचुकी के नीचे के निरावरण कटि भाग में गुदगुदा दिया और वह एकदम सिहर कर उसके आलिंगन में आ गई।

"सुनो तो, तुम्हें कुछ लाज-शरम भी है ? दिया तो बुझा दूँ।" कौशल्या ने पूरन के बाहुपाश से अलग होकर कहा।

आँचल की हवा से दीपक बुझा दिया गया।

रात के पिछले पहर में पूरन अचानक बड़े जोर से चीख उठा, जैसे कोई उसका गला दबा रहा हो। अभी वे दोनों जाग रहे थे। थोड़ी ही देर के लिए एक हलकी-सी उनींदी तन्द्रा ने उन पर अपना मादक आवरण डाल दिया था। उसकी आवाज से चौंककर कौशल्या उठ बैठी। पूरन भी जाग पड़ा।

"क्या हो गया है तुम्हें पहुना ?" कौशल्या ने पूछा।

"मैंने एक बहुत भयंकर सपना देखा है कौशल्या !" पूरन का दम जैसे घुट रहा था।

"कैसा सपना ? अभी तो हम लोग जाग रहे थे।"

"नहीं कौशल्या, मैंने बड़ा डरावना सपना देखा है। बड़ा ही अशुभ।"

"तुम्हारी आवाज कितनी काँप रही है ? मुझे तो बड़ा भय लग रहा है। बताओ तो, क्या देखा है सपने में ?"

"कौशल्या ! मैंने देखा है कि एक खूँख्वार जादूगर मेरे गाँव में आया हुआ है। वह तरह-तरह के खेल कर रहा है। गाँव के सभी लोग उसे देखने के लिए इकट्ठा होते हैं। तुम भी मेरे साथ वहाँ आती हो। तुम्हें देखते ही वह जादूगर अपना खेला बन्द कर देता है और जोर-जोर से चिल्लाने लगता है : "मिल गई। मिल गई !! मैंने पा लिया वह अनमोल रतन ! आज मेरी साधना सफल हो गई। अब मुझे भटकना नहीं पड़ेगा।"

"उसके बाद मन्त्र पढ़कर वह अपने हाथ में से कोई चीज फेंकता है, जो तुम्हारे पैरों के पास आकर ढेरों अशर्फियों और रुपयों में बदल जाती है। पहले तो तुम पीछे हटकर मेरे सीने से लिपट जाती हो। लेकिन जादूगर फिर एक मन्त्र पढ़ता हुआ तुम्हारी तरफ आने लगता है। ज्यों-ज्यों वह तुम्हारे निकट पहुँचता जाता है, त्यों-त्यों उसकी कुरूपता और भयंकरता गायब होती जाती है। तुम्हारे सामने आकर वह खूँख्वार और बदसूरत जादूगर एक सुन्दर राजकुमार के रूप में बदल जाता है। तब, तब उसके बाद कौशिल्या !.....कौशल्या, मुझे

अच्छी तरह याद है, मैं उस समय तुम्हारे साथ ही था। तुम मुझे छोड़-कर उसके पास चली गईं। मेरे सामने ही तुमने उसके गले में बाँहें डाल दीं। उसने तुम्हें अपनी गोद में उठा लिया और वह तुरन्त आकाश-मार्ग में उड़ने लगा। मैंने तुम्हें जोर से पुकारा, लेकिन तुमने कहा,.....वह आवाज ! वह आवाज अब भी मेरे कानों में गूँज रही है : 'पूरन ! तुम्हारा हमारा साथ अचानक हो गया था। अब मुझे तुम भूल जाओ। मैं राजकुमारी हूँ, और यह मेरा राजकुमार है। हमारा और इसका युग का सम्बन्ध है, सैकड़ों जन्मों से हम दोनों साथ रहे हैं और आज फिर मिल गए हैं। अब मैं जा रही हूँ। तुम मुझे भूल जाना ! भूल जाना !"

"बड़ा भयंकर सपना था पहुना।"

"हाँ कौशल्या, तुम्हारी वाणी सुनकर मैं बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। गाँव के लोग शोर मचाने लगे। फिर जब मुझे होश आया, तो मैंने देखा कि तुम उसके साथ आकाश-मार्ग से चली जा रही हो। तुम्हारी हरी चूनर हवा में उड़ रही है। फिर मैं जोर-जोर से चिल्लाने लगा : "कौशल्या ! कौशल्या !! "

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। अभी थोड़ी रात बाकी थी, लेकिन उजाला बढ़ रहा था। कौशल्या को चिन्तित देखकर पूरन हँस पड़ा : "ये सपने भी कैसे होते हैं ! झूठ-मूठ के लिए मैं नींद में कितना परेशान हो रहा था !"

कौशल्या बोली—"सुबह के सपने कुछ-न-कुछ जरूर सच्चे होते हैं। देखना कहीं-न-कहीं नाते-रिश्ते या भाई-बिरादरी में कोई आकस्मिक घटना जरूर घटेगी।"

"तुम कितनी भोली हो कौशल्या ! सपने भी कहीं सच्चे होते हैं ? यह सब झूठ है।" पूरन ने कौशल्या के मुँख पर लटक आई केश-राशि को ठीक करते हुए कहा।

कौशल्या का आँचल खिसक गया था। उसके धवल उन्नत उरोज निरावरण थे। धूमिल प्रकाश में जब पूरन ने उसकी आँखों में देखा, तो

शर्मा कर वह अपनी कंचुकी के बटन बन्द करने लगी। पूरन का एक हाथ उसके मक्खन से मुलायम कन्धे पर धीरे से जा पहुँचा और उसके दूसरे हाथ में कौशल्या की गोरी, गोल और सुडौल बाँहें आ गईं।

"तुम बड़े निर्दयी हो! मेरी कञ्चुकी के सारे बटन टूट गए।" कौशल्या ने देह मरोड़कर अलसाए स्वर में कहा।

उसके बाद एक हलका-सा झटका लगा। पूरन की बाँहों की परिधि में कसाव आ गया। कौशल्या का कठोर कुचप्रदेश एक विशाल पुरुष-वक्ष में सामने लगा।

———

दसवाँ अध्याय

रात के अंधेरे में पूरन फिर दबे पाँव मनोहर की झोपड़ी में आया। उस समय मनोहर भोजन कर रहा था। रूपा और लाली बाहर बैठी हुई थीं। पूरन के मन में उस समय भी आशंका और भय समाया हुआ था। इसीलिए जब वह झोपड़ी के निकट पहुँचा, तो थोड़ा ठमक गया, खड़ा होकर अन्दाज लेने लगा कि इस समय झोपड़ी में कौन-कौन हैं। जब उसने रूपा और लाली की बातचीत सुनी, तो उसका डर कुछ कम हो गया। उन दोनों के सामने जिस समय वह पहुँचा, उस समय उसका चेहरा सूखा हुआ था, बाल-बिखरे हुए थे और सारा शरीर शिथिल हो उठा था।

किसी कसूरवर फरियादी की भाँति वह आकर चुपचाप झोपड़ी के सामने खड़ा हो गया। लाली ने उसका हाथ पकड़कर अपने पास बिठाया और उससे वह दिन भर की हाल-चाल पूछने लगी। जब पूरन अपना दिन भर का दास्तान बता चुका, तब उसको अपने साथ लेकर रूपा झोपड़ी के भीतर गई। पूरन को भय था कि मनोहर उससे नाराज होगा, उसे डाँटेगा। शायद उसे अपने यहाँ से वह निकाल भी दे। और इन सब बातों के लिए वह तैयार होकर आया था। सेठ मेढ़ामल ने उसे नौकरी देने के लिए अभी एक सप्ताह पहले बुलाया था। लेकिन पूरन के विचारों के एकदम प्रतिकूल, मनोहर ने उसे देखते ही जोश के साथ कहा—"शाबाश पूरन! शाबाश!! तुम आ गए? मैं तुम्हारी ही इन्तजार कर रहा था। तुमने आज बहादुरी का काम किया है। मैं तुमसे आज बहुत खुश हूँ। तूने तो आज मेरी मूँछ ऊपर रख ली।"

भोजन कर लेने के बाद मनोहर रात में ही किसी वकील के घर अपने मुकदमे के सम्बन्ध में सलाह लेने के लिए चला गया। जाते-जाते

वह पूरन से कह गया कि उजाला होने के पहले ही वह भी उसके पुराने बगीचे में चला जाय अथवा कहीं दूसरी जगह घूम-फिरकर दिन बिताए। जब तक जमींदारों का क्रोध एकदम शान्त न हो जाय, तब तक उसके लिए बगीचे में रहना खतरे से खाली नहीं है। मनोहर के चले जाने के बाद रूपा की माँ चौके से बाहर निकल आई। उसकी तबीयत आज कई दिनों से खराब थी, अपने पति को भोजन परसने के लिए ही वह चौके में गई थी।

रूपा और पूरन ने साथ-साथ खाना खाया। उसके बाद रूपा ने पूरन को भी आँगन में ही सोने को कहा। झोपड़ी के उस छोटे से आँगन में दोनों ने अपना-अपना खटोला बिछाया। पूरन तो दिन भर का बुरी तरह से थका हुआ था। बिस्तर पर लेटते ही उसे नींद आ गई। रूपा ने अपनी माँ को दवा पिलाई, उसका सर दबाया और काफी रात बीतने पर वह सोने के लिए आँगन में आई। उस समय पूरन बेखबर सो रहा था। उसका सीने तक का शरीर चारखाने की एक फटी चादर से ढका था। उसके छितराए हुए रूखे बाल दरवाजे से आती हुई हवा के झोकों से उड़ रहे थे। निखरी हुई चाँदनी में उसका चौड़ा माथा, मुँदी हुई आँखों की घन बरौनियाँ, काली भौहें तथा भीगती हुई मसें उसके मासूम चेहरे पर साफ-साफ दिखाई पड़ रही थीं। रूपा ने उसके बिखरे बालों में उँगलियाँ डाल दीं; उसके सर को जरा-सा हिलाया भी। लेकिन उसने चूँ तक नहीं किया। सोते हुए पूरन को देखकर रूपा का हृदय कुछ करुणा, कुछ हमदर्दी, कुछ स्नेह से न जाने कैसा होने लगा। ताक पर रक्खी हुई शीशी लाकर उसने उसके बालों में तेल डाला और बड़ी देर तक उसके सर की मालिश करती रही। जब उसे नींद आने लगी, तब वह भी आने खटोले पर आकर सो गई।

दूसरे दिन मुँह-अँधेरे ही उठकर पूरन बगीचे के बाहर चला गया। रूपा ने उसके जलपान के लिए एक छोटी-सी रूमाल में चने के कुछ लड्डू, बुनिया, और थोड़ी-सी लाई बाँध दी थी। उसने पूरन से दोपहर को अपने पुराने बगीचे में चले जाने के लिए कहा था। सबेरे

से दोपहर तक पूरन पुलिस-लाइन में घूमता रहा। वहाँ का परेड और खेल-कूद देखने में उसे बहुत मजा आता था। करीब बारह बजे वह मनोहर के पुराने बगीचे की ओर लौटने लगा। लाइन के फाटक के बाहर वह मुश्किल से सौ कदम आया था कि उसे सामने से एक रिक्शा आता हुआ दिखाई पड़ा। पूरन के आश्चर्य और उल्लास का कोई ठिकाना न रहा, जब उसने रिक्शे पर मंजू और दीवान को बैठकर आते हुए देखा। वे दोनों आपस में बहुत घुल-मिलकर बातें कर रहे थे, इसीलिए उन्होंने पूरन की ओर ध्यान नहीं दिया। लेकिन जब रिक्शा आगे निकल गया, तब पूरन ने पुकारा—"दीवानजी! दीवानजी!!"

रिक्शा रुक गया। वे दोनों उस पर से उतर गए। दोनों को पूरन ने प्रणाम किया। मंजू जल्दी में रिक्शे से उतरकर पूरन के निकट पहुँच गई। उसने अपनी खुशी और उत्सुकता के आवेश में पूरन की पीठ और कन्धे को थपथपाया। अपनी बढ़ी हुई जिज्ञासा को न रोक सकने के कारण दीवान उससे एक साँस में कई सवाल पूछ गया।

साधारण बातचीत हो जाने के बाद दीवान ने रिक्शेवाले को उसका किराया देकर बिदा कर दिया। आगे तीनों साथ-साथ पैदल ही चले। अपने उसी पुराने तकियाकलाम के साथ दीवान ने बातें शुरू कीं—"पूरन! तुम हमसे नाराज तो नहीं हो न? हमारा घर यहीं पर बिलकुल नजदीक ही है। चलो, अब तुम हमारे यहाँ ही रहना।"

पूरन ने देखा कि मंजू पिछले तीन-चार वर्षों में काफी तन्दुरुस्त हो गई है। लखनऊ में उसके अंग-अंग पर हरदम जो एक उदासी छाई रहती थी, उसका कहीं पता तक नहीं था। उसके रंग में एक निखार था, उसके कपोलों पर एक सलोनी ललाई थी। जब वह हँसती, तो उनमें केवल कुछ रेखाएँ ही उभरकर नहीं रह जाती थीं, बल्कि दो-दो गड्ढे पड़ जाते थे।

मंजू और दीवान पुलिस-लाइन की चहारदीवारी के भीतर ही एक छोटे-से खपरैल के मकान में रहते थे। दीवान का घर भी कानपुर शहर में ही था। उसके घर पीतल, ताँबा, सिलवर-आदि के बर्तनों

का व्यापार होता था। वह जाति का ठठेर था। लेकिन मंजू से शादी करने के बाद उसे अपनी बिरादरी से निकल जाना पड़ा। इसलिए मंजू को अपने घर में न रखकर वह अपने साथ ही अलग रखता था।

जिस मकान में मंजू और दीवान रहते थे, उसे वहीं के एक पुलिस-कप्तान ने बनवाया था। वह कुछ झक्की किस्म का आदमी था और कभी-कभी बड़े विचित्र कार्य कर बैठता था। जवानी में वह अपनी कठोरता के लिए प्रसिद्ध था। कितने आदमी उसके ही द्वारा मारे जाने के कारण बहरे हो गए थे, कितनों की चोटें गठिया बन गई थीं। कितनों को उसने जलते लोहे से दगवा दिया था। सजा-आफ्ता मुल-जिमों से उसने घास तक चरवाया था। जो लोग बिलकुल ढोरों की तरह झुककर, चबा-चबाकर घास नहीं चरते थे, उन्हें वह स्वयं हन्टर से मारता था। दण्ड के नए-नए तरीके सोचकर निकालने में ही उसका एकान्त में मनोरंजन होता था। पेन्शन पाने के दो साल पहले उसका तबादला कानपुर के लिए हुआ था। तभी उसने इस मकान को अपने एकान्त सेवन के लिए बनावाया था। इस जगह वह अकेला ही रहता था। उसका परिवार शहर में दूसरी जगह एक बँगले में रहता था।

एक दिन वह कप्तान सहसा हृदय की गति के रुक जाने के कारण उसी मकान में मर गया था। उसके बाद वहाँ रहने की हिम्मत कोई भी नहीं करता था। लोगों में एक अफवाह थी कि उस जालिम कप्तान की कड़कती हुई आवाज अँधेरी रातों में उस जगह सुनाई पड़ती है। लेकिन दीवान भी अलमस्त और मौजी किस्म का आदमी था। उसने एक दिन जाकर उस घर को देखा। छोटा-सा बँगला-नुमा वह मकान उसे पसन्द आ गया। दूसरे दिन उसने अपना सरकारी क्वार्टर छोड़ दिया। मंजू पहले तो उस खौफनाक मकान में जाने से कुछ हिचकी, लेकिन जब दीवान अकेले ही वहाँ जाने की बात पर दृढ़ रहा, तो मजबूरन उसे भी पहला क्वार्टर छोड़ देना पड़ा।

पूरन ने देखा, तो वह छोटा-सा खपरैल का मकान बड़े ही सुन्दर

ढंग से सजा हुआ था। नीचे पूरे मकान की फर्श सीमेन्ट से बनी हुई थी। पक्के आँगन में एक पाइप लगा हुआ था। दरवाजे के सामने करीने से कटी हुई नीलकाँटे की सुन्दर झाड़ियाँ उगाई गई थीं। कई किस्म के देशी और विदेशी फूलों के पौधे भी लगे हुए थे। करीब तीन बीघे की चौहद्दी में चारों तरफ काँटेदार तार घेरा हुआ था और उसी के बीच में एक सघन पीपल का पेड़ था, जिसकी जड़ में एक पक्का गोल चबूतरा बना हुआ था। लोग कहते थे कि उसी पर बैठकर वह कप्तान घन्टों उस पीपल के नीचे गुजार देता था।

लखनऊ से भागने के बाद मंजू और दीवान एक महीने तक कानपुर जिले के एक गाँव में रहे। वहाँ दीवान की एक पुरानी रिश्तेदारी थी। उसके बाद वे दोनों कानपुर शहर में चले आए। दो महीने की छुट्टी दीवान ने पहले से ही मंजूर करा ली थी और उसका तबादला भी कानपुर के लिए निश्चित हो चुका था। मंजू के पिता पंडित कुलदीप ने कानपुर में आकर मंजू और दीवान से भेंट की। मंजू ने उनसे साफ-साफ कह दिया कि वह दीवान को अपना पति बना चुकी है। उसको दूसरा विवाह मान्य न होगा, चाहे फिर वह कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो। दीवान ने शंकरजी की मूर्ति और गंगाजल हाथ में लेकर मंजू के प्रेम की सौगन्ध खाई।

कुलदीप एक अनुभवी आदमी थे। वे लोकनिन्दा को जिद करके बढ़ाना नहीं चाहते थे। दूसरे इस प्रकार के प्रेम का उन्हें व्यक्तिगत अनुभव भी था। इसी प्रेम की दुनिया बसाने के लिए उन्होंने अपनी एक बसी-बसाई दुनिया को उजाड़ दिया था। उन्होंने उस मामले को आगे नहीं बढ़ाया। हाँ, जाते समय वे इतना अवश्य कहते गए कि अभी कुछ दिनों तक वे दोनों अपने को जाहिर न करें। इस प्रकार लखनऊ से आने के दो महीने बाद मंजू और दीवान ने आर्य-विवाह की रीति के अनुसार अपना विवाह कर लिया था।

वे दोनों खुश थे। दीवान हमेशा मंजू के वश में रहता था और मंजू स्वभाव से ही शालीन थी। मंजू में दीवान की अपार आसक्ति

थी। मंजू उसकी इस कमजोरी का यदि दुरुपयोग करना चाहती, तो कर सकती थी। किन्तु उसके साथ वह एक वफादार पत्नी का-सा ही व्यवहार करती थी। उसकी सुशीलता से दीवान दिन-दिन उसका ही होता चला जा रहा था। दोनों का व्यक्तित्व एकमय हो उठा था।

उस दिन शाम तक पूरन मंजू के पास ही रहा। दोपहर को उसने वहीं पर भोजन किया और मंजू से अपने पिछले चार वर्षों के जीवन की एक-एक घटना को बताया। मंजू ने उसे सान्त्वना दी, उसके लिए कोई नौकरी ठीक करवा देने का वादा भी किया। उसने पूरन से रात को अपने घर पर ही रहने के लिए कहा, लेकिन उससे दूसरे दिन आने के लिए कहकर वह थोड़ी रात बीते मनोहर के बगीचे में लौट आया।

उस समय तक मनोहर नहीं लौटा था। रूपा अपनी माँ के पास सिरहाने बैठी हुई कुछ सोच रही थी। पूरन के देखने पर जैसे उसके दिल की खुशी उमड़ पड़ती थी। पिछले चार वर्षों के साथ ने उन दोनों की आपसी झिझक एकदम मिटा दी थी। इसलिए जब कभी, वह कहीं बाहर से आता तो, रूपा उससे हहाकर मिलती थी। पूरन के लिए सदा उसके हृदय में एक स्वाभाविक उमंग मचला करती थी, जिसे वह अपने बाप, माँ या बड़ी बहन के सामने भी न दबा पाती थी। इतना ही नहीं, वह उस पर अपना अनन्य अधिकार भी चाहती थी। उसके अचेतन मन में एक भावना थी कि पूरन को उससे अधिक कोई नहीं चाहता, उस पर उसका अन्य लोगों से बढ़कर अधिकार है।

जिस समय पूरन मनोहर की झोपड़ी में आया, उस समय घर में रूपा और उसकी माँ के सिवा कोई अन्य व्यक्ति नहीं था। रूपा चुपचाप खाट के सिरहाने नीचा सर किए बैठी हुई थी और उसकी माँ सो रही थी। पूरन चुपचाप जाकर उसके पास खड़ा हो गया। आहट पाकर रूपा ने ऊपर देखा। ताजे फूल की तरह निर्दोष और चाँद से पाक पूरन को देखकर उसका आजाद बचपन पुलक उठा। धम्म् से वह खाट पर से कूदकर पूरन के पास आ पहुँची। उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर एक ऐसे गुस्से से बोली, जो हजारों प्यार की

चेष्टाओं से कहीं खूबसूरत था—"तुम कहाँ गायब थे अब तक ? तुम्हें कुछ पता भी है कि कब की शाम हुई है ? कितनी देर से मैं तुम्हारी इन्तजार कर रही हूँ ? अब कल से मैं तुम्हें हर्गिज कहीं न जाने दूँगी। खूब घूम रहे हैं आजकल आप !"

रूपा की आवाज सुनकर उसकी माँ ने चिढ़कर उसे डाँटा—"रूपिया ! क्यों मेरा सर खाए जा रही है ? जा यहाँ से, तू मुझे जीने न देगी।"

"नहीं माँ, अब न बोलूँगी। पूरन आ गया, इसे ले जाकर खाना दे दूँ।" रूपा पूरन को साथ लेकर चौके की ओर चली गई।

हाथ-मुँह धोने के बाद जब पूरन खाने के लिए बैठा, तब वह बोला—"रूपा, आज मैं तुम्हें एक बड़ी खुशी की बात सुनाऊँगा ! सुनोगी ?"

"कौन-सी बात हैं पूरन ? आज तुम हमारे पुराने घर पर गए थे न ?"

"नहीं रूपा, आज मैं वहाँ नहीं जा सका। मैंने तो तुमसे कई बार लखनऊ की मंजू बहन के विषय में बताया है। आज मुझसे अचानक वह मिल गईं। मैं दिन भर उन्हीं के घर रहा। कल फिर उन्होंने मुझे बुलाया है।"

"और जिसके साथ वह भागकर आई थी, वह दीवान कहाँ है ?"

"दोनों ने अब शादी कर ली है, और साथ ही रहते हैं।"

"तो तुम कल फिर उसके यहाँ जाओगे ? नहीं, मैं तुम्हें कहीं न जाने दूँगी !"

"क्यों रूपा ? मंजू बहन तो बड़ी अच्छी हैं। उन्होंने मुझे नौकरी दिलवाने का भी वादा किया है। मैंने उनसे तुम्हारी खूब तारीफ की है। वे कहती थीं कि रूपा को भी मेरे यहाँ ले आना।"

"नहीं, मुझे किसी के घर नहीं जाना है। और कहे देती हूँ, तुम्हें भी कहीं जाने की जरूरत नहीं है, समझे ? दादा तुम्हें पुलिस में भर्ती करा देंगे। तब तक तुम हमारे घर रहो।"

उसके बाद रूपा ने पूरन के सामने थाली रखते हुए कहा—"ये सब बातें मुझे बिलकुल अच्छी नहीं लगतीं। अब तुम खाना खावो और अगर कल कहीं जाने का नाम लिया, तो ठीक नहीं होगा, हाँ।"

भोजन कर लेने के बाद वे दोनों आँगन में आकर बैठे। पूरन के मन में आज रूपा से कहने के लिए बहुत अधिक बातें थीं। लेकिन रूपा तो उस विषय के शुरू करते ही आग-बबूला हो जाती थी। क्यों? इस प्रश्न का उत्तर लाख कोशिश करने पर भी पूरन की समझ में नहीं आता था। आँगन में जब वे दोनों बैठे हुए थे, तभी रूपा को उसकी माँ ने आवाज दी। वह उठकर माँ के पास गई और पूरन वहीं बैठा रहा। थोड़ी देर बाद रूपा ने उसे कहानी सुनने के लिए बुलाया। उसने अपनी माँ को कहानी कहने के लिए राजी कर लिया था। हुँकारी भरने का भार रूपा ने पूरन को दिया और वह स्वयं माँ का सर दबा रही थी।

सीत-बसन्त की कहानी हुई। रानी सारंगा और सदावृक्ष की कहानी छोड़ दी गई, क्योंकि उसके बीच-बीच में गाकर सुनाना पड़ता था। नौलखा हार, रानी गुलबकावली और राजा गोपीचन्द की कहानियाँ हुईं। पूरन ने 'एक राजा की सात राजकुमारियों वाली' कहानी कहने के लिए कहा। लेकिन रूपा ने कोई ऐसी कहानी सुनने का आग्रह किया, जो बिलकुल नई हो, जिसे उसने कभी न सुना हो। थोड़ी देर सोचने के बाद माँ को एक वैसी ही कहानी याद आ गई। वह थी 'स्वर्ग की परी और निर्वासित राजकुमार' की कहानी।

"कहीं झपकी न लेने लगना पूरन।" रूपा ने पूरन को छेड़ा।

"हाँ, हाँ, मैं खूब समझता हूँ। अब तुम्हें नींद आने लगी है। इसके बाद तुम्हें हुँकारी भरनी पड़ेगी।"

तो, इस बार हुँकारी भरने का भार रूपा पर रहा। कहानी शुरू हुई।

"एक था राजकुमार। उसकी माँ बचपन में ही मर गई थी। राजा ने अपनी नई शादी की। राजकुमार की नई माँ उसे बहुत ताड़ना

देने लगी। उसके खिलाफ झूठी-मूठी बातें बनाकर राजा के कान भरने लगी। अपनी नई रानी के बहकावे में आकर, राजा ने एक दिन उस राजकुमार को अपने राज से बाहर निकाल दिया। जंगलों में घूमता हुआ भूख-प्यास से व्याकुल वह राजकुमार एक तालाब के किनारे पहुँचा। पानी पीकर वह उसी जगह सो गया। कुछ देर बाद स्नान करने के लिए वहाँ पर एक परी आई। राजकुमार की सुन्दरता को देखकर वह मोहित हो गई। जगाकर उसने उससे उसका नाम-धाम पूछा। राजकुमार ने अपनी कहानी उस परी को सुनाई। तब वह परी उसका हाथ पकड़कर तालाब के किनारे बने हुए एक बहुत ही बड़े मन्दिर में ले गई। अपनी माया से उसने वहाँ उस राजकुमार के लिए बारहों प्रकार के व्यंजन, सोने-चाँदी के पलंग और रेशमी कपड़े वगैरह मँगा दिया। दूसरे दिन फिर उसी समय आने के लिए कहकर वह अपने परी-लोक को उड़ गई। उसके बाद वह परी हमेशा उस तालाब पर स्नान करने के लिए आती और राजकुमार से मीठी-मीठी बातें करके चली जाती थी। दस वर्ष बीत गए। बारह वर्ष का राजकुमार बाइस वर्ष का हो गया। अपने राज्य को वापस जाने के लिए उसने उस परी से इजाजत माँगी। राजकुमार ने उससे प्रतिज्ञा की—"मैं अपने पिता और राज्य को देखकर तुम्हारे पास बहुत जल्द ही लौट आऊँगा।"

"राजकुमार जब अपने राज्य में पहुँचा, तो राजगद्दी सूनी थी। उसके माँ-बाप सभी मर चुके थे। प्रजा ने अपने राजकुमार का राजतिलक किया। अपने राज्य का राजा हो जाने के बाद उस राजकुमार ने अपना ब्याह एक बेहद हसीन राजकुमारी से किया। जब वह हँसती, तो फूल झड़ते थे। यदि कभी रो देती, तो मोती चूने लगते थे। राजकुमार को वह अपने प्राणों से भी प्यारी थी। इधर वन में वह परी दिन-रात उस राजकुमार की याद में रोया करती थी। वह रोज परी-लोक से आती थी और उस मन्दिर में राजकुमार की इन्तजार करती हुई कई-कई दिनों तक परी-लोक को वापस नहीं जा पाती

थी। परीलोक के राजा ने उसकी उस रवैया को देखकर उसे अपने राज्य से निर्वासित कर दिया।

"अपने निर्वासन के बाद वह परी उसी मन्दिर पर आकर तपस्या करने लगी। और उधर कुछ दिनों के बाद वह सुन्दरी राजकुमारी एक दूसरे राज्य के राजकुमार से प्रेम करने लगी। वह अपने पति, पहले राजकुमार को छोड़कर चली गई। राजकुमार पागल हो गया। उसके वियोग में रोते-विलखते हुए उसने फिर जंगल का रास्ता लिया·····"

कहानी बीच ही में बन्द हो गई। मनोहर आ गया। रूपा मनोहर को भोजन परोसने के लिए चोके में चली गई और पूरन आँगन में आकर अपनी खाट पर सो गया। जब मनोहर भोजन करके सोने चला गया, तब रूपा फिर अपनी माँ के पास आई। उसकी भावनाएँ अब भी उसी परी और राजकुमार के इर्द-गिर्द चक्कर काट रही थीं। उसने कहा—"माँ! कहानी पूरी कर दो। उस परी की उस राजकुमार से फिर भेंट हुई या नहीं?"

लेकिन रूपा को कोई जवाब नहीं मिला। माँ बेखबर सो रही थी। रूपा ने माँ का सर हिलाकर उसे जगाया और पुनः अपना वही सवाल दुहराया—"माँ! उस परी से फिर उस राजकुमार की भेंट हुई या नहीं?"

"रूपा! तू कितनी पागल है! इतनी-सी बात के लिए तूने मुझे जगा दिया। अब बाकी कहानी कल कहूँगी।" इतना कहकर माँ फिर सर ढककर सोने लगी।

"नहीं माँ, तुमने ही तो कहा था कि अधूरी कहानी कभी नहीं छोड़नी चाहिए।"

"अभी कहानी बड़ी लम्बी है बेटी, कल रात को पूरी कर दूँगी।"

"अच्छा माँ, इतना तो बता दो कि वह परी और राजकुमारी फिर मिले या नहीं?"

"यह कहानी के अन्त की बात है रूपा। इसे अभी जान लोगी, तो फिर कहानी में कुछ रह ही नहीं जायगा। आज सन्तोष रक्खो, कल पूरी कहानी सुना दूँगी।"

माँ सो गई। रूपा आँगन में सोने के लिए आई। उसने आकाश से बसती हुई दूधिया चाँदनी में बेखबर सोते हुए पूरन को एक बार देखा। उसके शरीर से उसकी फटी हुई चादर खिसक गई थी। अपनी चादर से उसने उसके शरीर को ढँक दिया और उसके सिर के नीचे एक तकिया लाकर रख दिया। फिर उसने अपना बिस्तर लगाया और रात के दूसरे पहर में जाकर उसे नींद आई। रूपा की भावनाएँ उस परी और राजकुमार के इर्द-गिर्द उमड़-घुमड़ कर सौ-सौ चक्कर खा रही थीं।

* * *

दिन पर दिन बीतने लगे। जमींदार के खिलाफ मनोहर के मुकदमे की तारीखें और पेशियाँ पड़ने लगीं। बीच-बीच में पूरन अक्सर मंजू के घर आता था। कभी-कभी वह रात को उसी के यहाँ रह भी जाता था। दीवान का परिचित होने के कारण उसे लाइन के अन्य सिपाही भी पहचानने लगे थे। नए रंगरूट, जिन्हें ट्रेनिङ्ग दी जा रही थी, उनमें से से कई एक पूरन से उमर में कुछ ही साल बड़े लगते थे। शारीरिक विकास तो कितनों का उससे भी कम था। दीवान ने उन नए रंगरूटों से और उनके मेंट से भी पूरन का परिचय करा दिया था। अक्सर शाम को जब वे नए सिपाही फुटबाल, हाकी, बालीबाल या कोई अन्य खेल खेलते, तो पूरन भी उनके साथ खेल में शामिल होता था। उन खेलों में जितना पूरन का मन लगता, उतना दुनिया के किसी अन्य काम में नहीं।

जनवरी में नए रंगरूटों की भरती शुरू हुई। दीवान ने अपनी पूरी ताकत पूरन के लिए लगायी। अपनी जान-पहचान के अधिकारियों की चिट्ठियाँ दे-देकर उसने पूरन को रंगरूट भरती करने वाले अफसर के पास भेजा। वह स्वयं भी कई अन्य अधिकारियों से मिला। दौड़-धूप करके अन्त में उसने दो अफसरों को किसी प्रकार राजी कर लिया। दोनों का मेहनताना डेढ़-सौ रुपये तै हुआ। पान खाने के लिए दोनों ने पचहत्तर-पचहत्तर रुपये लिये। पूरन के पास पिछले चार वर्षों में

बहुत किफायत से जमा करने पर दो सौ रुपये इकट्ठा हो पाये थे। पिछली साल जब से जमींदार ने उत्पात मचाया, तब से तो मनोहर उसे खाना दे देता था, यही उसकी बहुत बड़ी शराफत थी। अपना सब रुपया पूरन रूपा के पास रखता था। दीवान पर उसका विश्वास था और उसी के कहने पर उसने रूपा के पास से लाकर डेढ़ सौ रुपया उसे दे दिया। उसका नाम भरती होने वाले रंगरूटों की सूची में लिख लिया गया। अब उसे केवल डाक्टर का सर्टीफिकेट दाखिल कर देना था।

पूरन का सीना साढ़े इकतीस इञ्च से कुछ ज्यादा था और बत्तीस इञ्च से कुछ कम भी था। पुलिस की नौकरी के लिए पूरा बत्तीस इञ्च का सीना चाहिए। डाक्टर ने उसे अपना प्रमाण-पत्र देने से इन्कार कर दिया। यह पूरन की बहुत बड़ी बदकिस्मती थी। सदर हास्पिटल की सीढ़ियों से उतरते हुए पूरन को ऐसा लगा, जैसे किसी ने उसके शरीर का सारा रक्त खींच लिया हो। आशाओं का सब्ज बाग उसे उजड़ता-सा दिखाई पड़ने लगा। मनोहर का बगीचा, बड़े आकार का फावड़ा, ढेकुल के रस्से, और तरकारियों से भरी टोकरियाँ उसकी आँखों के सामने आ गईं। डाक्टर ने कहा था—"अगले साल फिर भरती होगी, तब तक तुम्हारा सीना बत्तीस इञ्च का हो जायगा।"

लेकिन एक वर्ष वह क्या करेगा? और डेढ़ सौ रुपये? चार वर्ष के पसीने और खून की कमाई, क्या यों ही चली जायगी? आदि प्रश्न पूरन के सामने बहुत ही भयंकर रूप धारण करके आने लगे। उसका सर चकराने लगा। एक पेड़ के नीचे जाकर वह बैठ गया और न जाने कितनी देर तक बैठा रहा। पिछले दो महीनों से वह अपने इसी काम के सिलसिले में दौड़-धूप कर रहा था।

शाम को वह बहुत ही थका हुआ, उदास और संज्ञा-शून्य-सा मनोहर की झोपड़ी में आया। किसी से बिना एक शब्द तक कहे हुए वह चुपचाप कम्बल ओढ़कर पुआल पर लेट रहा। ऐसी उदासी के क्षणों में उसे अपना गाँव बुरी तरह याद आता था। नन्दगाँव की

धरती अपने समस्त आकर्षणों के साथ उसकी आँखों में तैरने लगती थी और वह रो पड़ता था। आज-जैसी गहरी चोट उसे जीवन में और कभी न लगी थी। लेटे-लेटे उसके मन में वही पुरानी स्मृति आई। अवसाद के जहर से उसका गला रुँध गया। उसकी गरम-गरम आँसुओं की बूँदों को उस पुराने कम्बल ने आत्मसात कर लिया। उसकी तबीयत में आया कि वह रूपा के पास जाय। लेकिन थकान और आलस के कारण वह वहीं पर पड़ा रहा। रात को भोजन करने की उसे बिलकुल इच्छा नहीं थी। लेकिन रूपा की जिद के आगे, उसके ममत्व से भीगे हुए गुस्से के सामने, पूरन की एक भी न चल पाती थी। रूपा ने उसे भोजन कर लेने के बाद ही सोने के लिए जाने दिया। सोने के लिए वह बिस्तर पर लेटा, लेकिन लाख कोशिश करने पर भी उसे रात में नींद नहीं आई। जितना ही वह सोचता जाता था, उतना ही अधिक वह चिन्ता की एक अनन्त परिधि के भीतर फँसता जाता था।

सबेरा हो जाने के बाद भी दूसरे दिन वह बिस्तर पर लेटा हुआ था। उसका शरीर उसे सुन्न-सा लग रहा था। सहसा किसी ने उसका कम्बल से ढँका हुआ सर हिलाया। अपना मुँह उसने बाहर निकाला, तो उसे रूपा दिखाई पड़ी। वह कह रही थी—"पूरन! उठो, बाहर एक आदमी तुम्हें बुला रहा है।"

रूपा के साथ पूरन बाहर आया, तो उसे सायकिल लिए हुए दीवान खड़ा दिखाई दिया। पूरन को अलग ले जाकर दीवान ने बताया कि डाक्टर को उसने राजी कर लिया है। यदि चालीस रुपए उसे मिल जायँ, तो वह पूरन की शारीरिक योग्यता का प्रमाण-पत्र अवश्य ही लिख देगा। पूरन ने डाक्टर को भी चालीस रुपए देना स्वीकार कर लिया। उसने अपने बचे हुए पचास रुपयों में से रूपा से चालीस रुपये फिर माँगे। अब तक पूरन ने उससे अपने विषाद का कारण न बताया था। उसे सायकिल पर बिठाकर दीवान डाक्टर के पास गया और रुपये पाते ही डाक्टर ने पूरन के लिए प्रमाण-पत्र लिख दिया। उसके बाद पूरन को अन्य किसी विषय में अड़चन

नहीं पड़ी। खेल, दौड़ और कूदने की प्रतियोगिताओं में उसने आशातीत सफलता प्राप्त की।

पन्द्रह जनवरी से नए रंगरूटों की ट्रेनिङ्ग शुरू होने वाली थी। पूरन के पास सामान के नाम पर एक फूटा लोटा तक नहीं था। रुपया अब उसके पास केवल दस बचा था। एक नई कमीज बनवाना और एक धोती खरीदना उसके लिए बहुत जरूरी था। उसके पहनने के सभी कपड़े फटे हुए थे। ट्रेनिङ्ग में जाने के लिए कम से कम एक बिस्तर, एक रजाई या कम्बल और एक लोटा अपने साथ ले जाना अनिवार्य था। शेष प्रबन्ध सरकार की तरफ से होता था। खाकी वर्दी, मोजे और लम्बे बूट-आदि के अलावा हर रंगरूट को इकतालिस रुपया महीना वेतन भी मिलता था। इस वेतन में से पच्चीस रुपए भोजन के और पाँच रुपए बाल बनवाई और धुलाई के कट जाते थे। महीने में हर रंगरूट के पास ग्यारह रुपए बचते थे।

मनोहर के यहाँ पूरन पुआल पर सोता था, इसलिए कोई एक मामूली-सी चद्दर बिछाकर और अपना फटा कम्बल ओढ़कर ही वह जाड़ों की रातें गुजार दिया करता था। लेकिन पुलिस-लाइन की बैरकों में तो सोने के लिए तख्ते ही मिलते थे। उसने झिझकते हुए रूपा से अपनी कठिनाई बताई। लेकिन रूपा ने तो जैसे पूरन के ओढने और बिछाने की समस्या पर पहले से ही विचार कर लिया था। उसने उसके सामने आकर कहा—"पूरन! तुम मुझे पराया क्यों समझते हो? मेरी रजाई तुम ले जाना। बिछाने के लिए तो तुम्हारा कम्बल है ही। पीतल वाला लोटा भी ले जाना। इतनी-सी बात के लिए तुम मुझसे कहने में संकोच करते हो?"

"नहीं रूपा, मैं तुम्हारी रजाई नहीं ले जाऊँगा! आखिर तुम क्या ओढ़ोगी?"

"तुम तो पक्के बेवकूफ हो। मैं कहती हूँ, तुम्हें रजाई ले ही जानी होगी। मैं कोई नौकरी करने थोड़े ही जा रही हूँ, जो मुझे रजाई की जरूरत हो।"

पूरन और कुछ कहना चाहता था, लेकिन रूपा ने गुस्से में आकर उसका मुँह बन्द कर लिया। उसका गुस्सा भी ऐसा था, जो वही कर सकती थी, दूसरा नहीं। पूरन 'सुनो तो, सुनो तो', कहता रह गया, लेकिन रूपा ने अपने हाथों से उसके मुँह को जोर से बन्द करते हुए कहा—"अब रजाई और लोटा-जैसी अदनी चीजों की चर्चा मेरे सामने मत चलाना। बोलो, फिर अब ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिए मुझ से कहने में संकोच करोगे?"

"संकोच करने की बात नहीं रूपा। तुम-जैसे ही तो सभी लोग हैं नहीं। घर के लोग तुम पर बिगड़ेंगे। मैं अपना कम्बल ओढ़कर जाड़ा काट लूँगा। तुम्हारी रजाई मैं नहीं ले जा सकता। और अब जाड़ा है ही कितने रोज?" पूरन ने रूपा के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर उसे समझाते हुए कहा।

"कम्बल ओढ़कर खाक जाड़ा काट लोगे। और, तुमने अभी क्या कहा कि तुम मेरी रजाई नहीं ले जा सकते? अच्छा, अब मुझे अधिक गुस्सा मत दिलावो, पूरन। तुम्हारी इन उलटी-सीधी बातों को सुनकर मेरी देह जल उठती है।" इतना कहकर, आँखें तरेरती हुई रूपा उसके पास से चली गई।

* * *

पन्द्रह जनवरी को सबेरे पूरन का सामान इक्के पर रक्खा हुआ था। मनोहर ने अपने पैसे से उसके लिए इक्का ठीक कर दिया था। नहीं तो वह पैदल जाने की ही सोच रहा था। इक्के के पास संपत, लाली, उनकी माँ और मनोहर खड़े थे। पूरन हाथ जोड़े हुए उन सब को प्रणाम कर रहा था। उसकी आँखों में जल भरा हुआ था। घनी, काली बरौनियाँ उमड़ते हुए आँसुओं के भार से झुक-झुक पड़ती थीं। आज, उसे मनोहर और उसके परिवार से जो कुछ भी कहना था, वह उसकी आँखें ही कह रही थीं। उसके कंठ पर आँसुओं की अर्गला लगी हुई थी। वाणी कुछ कहने से मजबूर थी। कृतज्ञता मुखरा नहीं होती।

पूरन इक्के पर चढ़ने ही जा रहा था, तभी रूपा ने उसका नाम लेकर झोपड़ी के भीतर से पुकारा। वह लौटकर उसके पास पहुँचा। रूपा उसका हाथ पकड़कर उसे अन्दर ले गई। वहाँ काफी देर तक दोनों चुप एक दूसरे को देख रहे थे। चार आँखों की आँसुओं की बातें होती रहीं। थोड़ी देर बाद अपनी साँसों पर एक बहुत ही वजनी बोझ उठाते हुए पूरन ने पूछा—"रूपा! मुझे किसलिए बुलाया था तूने?"

"मैं भूल गई हूँ पूरन कि तुमसे मुझे क्या कहना था। नहीं... नही, मुझे तुमसे कुछ कहना ही नहीं था। मैंने तुम्हें वैसे ही बुला लिया था। मैं....."

आगे के शब्द रूपा की सिसकियों में खो गए। उसने अपने आँचल के नीचे से एक बटुआ निकालकर पूरन के हाथों पर रख दिया। पूरन ने उस बटुए को खोलना चाहा, किन्तु रूपा ने उसे वैसा करने से रोकने के लिए बटुए को उसके हाथों से लेकर उसकी जेब में रख दिया। पूरन रूपा की जिद को जानता था, इसलिए उसने फिर बटुए पर हाथ नहीं लगाया।

अपने को बहुत सँभालने पर फिर रूपा बोल सकी—"अच्छा, जावो पूरन, अब तुम्हें देरी होगी। कभी-कभी आते रहना।"

"नहीं रूपा, कभी-कभी क्या, मुझे जब भी फुरसत मिलेगी, मैं तुमसे मिलने के लिए चला आऊँगा।"

पूरन इक्के पर बैठा। मनोहर के परिवार ने उसे, आशीर्वाद देते हुए, मंगल-कामना करते हुए बिदा किया। अपनी झोपड़ी के पीछे खड़ी रूपा तब तक उसे देखती रही, जब तक वह पेड़ों की आड़ में ओझल न हो गया।

———

ग्यारहवाँ अध्याय

छुट्टी के बचे हुए दिन और रातें समाप्त हो गईं। पूरन को महसूस हो रहा था कि उसकी शादी के बाद का समय बड़ी तेज रफ्तार से चला गया। अब आखिरी एक और रात बची थी। कल दोपहर की गाड़ी से उसे कानपुर लौट जाना था। घर छोड़कर जाना उसे बहुत खल रहा था। उसके जीवन का यह पहला मौका था, जब उसे अपनी नौकरी के प्रति अरुचि का अनुभव हो रहा था। बड़ी मुश्किल से वह इस बार एक महीने की छुट्टी ले पाया था। इसके बाद उसे एक वर्ष तक कोई लम्बी छुट्टी न मिल सकेगी, इस बात को वह अच्छी तरह जानता था, क्योंकि इस वर्ष वह तीन महीने की छुट्टी ले चुका था। बसन्ती को भी अब उसकी ससुराल बिदा कर देना था। इस बीच में उसके ससुर त्रिबेनी महतो और दुर्बल चौधरी, दोनों आदमी उसके यहाँ एक बार आए भी थे। उन लोगों ने इसी बात पर जोर दिया कि अब पूरन को नौकरी छोड़ देनी चाहिए। बसन्ती भी उससे हमेशा यही बात कहती रहती थी। नन्दगाँव के लोग भी उससे यही कहते थे कि उसे अब अपना घर और खेती सँभालनी चाहिए।

दूसरे दिन दोपहर की गाड़ी से पूरन कानपुर के लिए रवाना हुआ। उसके हृदय में एक प्रबल खींचातानी चल रही थी, लेकिन अभी कुछ दिन तक वह नौकरी नहीं छोड़ना चाहता था। बसन्ती की बिदाई के लिए उसने चैत-बैसाख दो महीने और टाल दिया। इन दो महीनों के बाद एक सप्ताह की छुट्टी लेकर वह फिर लौट आने को सोच रहा था और उसी समय बसन्ती को बिदा कर देने का भी निश्चय उसने किया था।

अपनी ससुराल से पूरन को एक बैल भातखवाई में मिला था।

दूसरा बैल उसने पास के एक गाँव से खरीद लिया था। इन दो बैलों से वह अपनी इस साल की खेती शुरू कर देना चाहता था। अपनी बहन से उसने एक मजदूर रखकर, खेतों को जुतवा देने के लिए भी कह दिया था। खरीफ की फसल को वह बटाई पर नहीं रखना चाहता था, क्योंकि अब उसके घर भी अगले वर्ष के बीज और खाने के लिए नाज की अधिक मात्रा में आवश्यकता पड़ने वाली थी। इस तरह अपनी गृहस्थी को ठीक ढर्रे पर चलाने के लिए पूरन ने अपना प्रयत्न शुरू कर दिया था।

लेकिन, पूरन एकाएक नौकरी छोड़ना नहीं चाहता था। जिस चीज को पाने के लिए उसे तेरह वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा था, उसे वह इतनी असानी से नहीं छोड़ सकता था। इस बात के अलावा भी पूरन के मन में तरक्की करने के अभी जाने कितने अरमान भरे पड़े थे। भविष्य में, और भी कितने ऊँचे-ऊँचे पदों के वह स्वप्न देखने लगा था। वह चाहता था कि कोई एक विश्वास-पात्र नौकर रख कर उसी के ऊपर खेती का सारा भार छोड़ दे और हर महीने-दो महीने के बाद आकर उसके कामों की निगरानी कर लिया करे।

पूरन के चले जाने के बाद कौशल्या को अपना घर बहुत उदास लगने लगा। कहीं भी, उसका मन लगता ही नहीं था। घर में उस समय कोई ऐसा काम भी नहीं था, जिसमें वह अपने को व्यस्त रक्खे। पूरन के जाने से एक दिन पहले उसने चौके में प्रवेश किया था और अब भोजन उसे ही बनाना पड़ता था। भोजन भी दो प्राणियों के लिए बनाना, जब कि कोई मर्द भी घर में न हो, एक बोझ ही है। इसलिए कभी-कभी तो बसन्ती और कौशल्या दोपहर को चबैना और रस ही खा-पीकर रह जाती थीं और केवल एक वक्त, शाम को ही भोजन बनता था।

कौशल्या अपने माँ-बाप की कितनी ही दुलारी क्यों न रही हो, फिर भी वह एक किसान की लड़की थी। लाड़-प्यार के साथ-साथ उसे मरजादपुर में काम भी करना पड़ता था। यहाँ आकर हाथ-पर-हाथ

रक्खे हुए बैठना उसे पसन्द नहीं था। लेकिन पूरन की गृहस्थी तो अभी ऐसी जमी हुई थी नहीं कि घर में ही कौशल्या के लिए हमेशा कुछ-न-कुछ काम लगा रहे। और बाहर के कामों के लिए बसन्ती उसे अनुमति न देती थी। इस तरह अपने घर की चहार-दीवारी के दायरे में ही उसका दिन बीतता था।

दो महीने का समय कौशल्या को दो वर्ष से भी अधिक लम्बा मालूम पड़ रहा था। जब तक पूरन घर में था, तब तक तो, दिन कब आया और रात कब चली गई, इस बात का उसे कुछ अन्दाज ही न मिल पाता था। उस समय दिन और रातें उसे छोटी मालूम होती थीं। लेकिन इन दिनों समय काटने के लिए उसे कोई सहारा ही न मिलता था। दिन में एकाध बार जीनत और पार्वती जरूर उसके पास आ जाया करती थीं। किन्तु जब वे चली जातीं, तब फिर उसे वही बेचैनी आकर घेरने लगती थी। इस तरह बहुत ही परेशानी में कौशल्या का दो महीने का समय बीत रहा था। कभी-कभी खीझकर वह प्रतिज्ञा तक लेती थी कि अबकी बार वह पूरन को कदापि कानपुर न जाने देगी। या तो वह रहेगी, या फिर पूरन की नौकरी। दोनों एक साथ नहीं चल सकतीं।

कानपुर पहुँचने पर पूरन को पता चला कि वह कितने गहरे पानी में है। ड्यूटी खत्म होने के बाद वह अक्सर अपने क्वार्टर में ही सोया रहता। घूम-फिर कर उसकी भावनाएँ नन्दगाँव के, छोटे-से घर में बैठी हुई एक सुन्दर मूर्ति के इर्द-गिर्द ही चक्कर लगाया करती थीं। कौशल्या का एक-एक अंग उसकी चेतना में अपने सम्पूर्ण आकर्षणों के समेत गड़ा हुआ था। काम वह कुछ और करता रहता और सोचता कुछ और रहता था। पूरी ताकत से वह अपनी भावनाओं की घुमड़न को रोकना चाहता था, किन्तु असफल ही रहता था। कौशल्या का सौन्दर्य और उसका आकर्षण यहाँ अपनी कई गुनी तीव्रता से उस पर छाया रहता था। उसके मादक शब्द, स्वच्छन्द लहरों के समान कल-कल

करती हुई उसकी हँसी रह-रहकर उसके कानों में गूँज उठती थी और और उसके चेतन व्यक्तित्व को न जाने कहाँ-से-कहाँ ले जाती थी।

कानपुर में पूरन ने बड़ी ही कठिनाई से दो महीने बिताये। उसके बाद आधी तनख्वाह पर उसने पन्द्रह दिन की छुट्टी ले ली। घर पहुँच-कर उसने देखा, तो कौशल्या कुम्हला-सी गई थी। उसने पूरन को लाकर लोटे में पानी दिया, भोजन भी परसा, उसके लिए दालान में बिस्तर भी लगा दिया, लेकिन एक बार भी वह उससे बोली नहीं। दोपहर को भोजन के बाद दालान में बैठकर जब पूरन बसन्ती से बातचीत कर रहा था, तो कौशल्या उस जगह से हटकर अपने कमरे में चली गई। उसके हृदय में पूरन के प्रति एक रोष था, और वह उसे दबा न पाती थी। उसके व्यवहारों से उसका वह हलका-सा क्रोध प्रकट हो जाता था।

दिन में बेहद गर्मी रही। शाम को पूरन गाँव में से घूमकर घर लौटा। उस समय कौशल्या चौके में थी। उसकी पूरी साड़ी पसीने से भीग गई थी। उसके माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं। पूरन के देखते ही उसने अपनी आँखों को झुका लिया और चुपचाप अपनी जगह पर बैठी रही। जब पूरन ने उससे पानी माँगा, तो वह उठकर पानी ले आई। लोटे को उसके सामने रखकर वह चुपचाप खड़ी हो गई। उसे चुप देखकर पूरन ने स्वयं बातचीत का सिलसिला प्रारम्भ किया। लेकिन उसकी बातों का उत्तर देने के बजाय कौशल्या मनुहार-भरे अन्दाज में फिर चौके की ओर जाने लगी। पूरन ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। वह खड़ी हो गई। तभी बाहर से बसन्ती के आने की आहट हुई। पूरन आँगन में लौट आया और कौशल्या चौके में चली गई।

दो दिन बाद पूरन ने बसन्ती को मरजादपुर पहुँचा दिया। बसन्ती ने उसके सभी खेत मजदूर लगाकर फागुन में ही जुतवा दिये थे। दोनों बैलों के लिए चारे का भी इन्तजाम करके वह गई थी। कुछ भूसा उसने मरजादपुर से मँगा लिया था और कुछ उसके चाचा ने दिया था। इस तरह पूरन की खेती का बसन्ती ने यथोचित प्रबन्ध कर

दिया था। बसन्ती को पहुँचाकर मरजादपुर से लौटते समय उसने त्रिबेनी महतो से एक विश्वासपात्र आदमी के लिए कहा था, जो खेती के काम में भी अनुभवी हो। त्रिबेनी महतो ने एक अधेड़ आदमी को उसके साथ कर भी दिया था। उसका नाम था रमेसर। रमेसर को कौशल्या काका कहती थी।

रमेसर एक विचित्र आदमी था। जवानी में ही उसका दिमाग कुछ खराब हो गया था और उसने अपना घर-बार छोड़ दिया था। मौज में आकर कभी-कभी बिरहा, चनैनी और आल्हा-आदि वह गाया करता था। दुनिया में किसी से उसका कोई लगाव नहीं था कभी इस गाँव में, कभी उस गाँव में, वह रहा करता था। जिसके घर खाता था, उसका जी-जान से वह काम भी करता था। खेत गोड़ने में, दोगला से पानी फेंकने में, ढेकुल चलाने और बोझ ढोने में वह अपना शानी नहीं रखता था। दो मन नाज सिर पर रखकर कोसों चला जाना उसके लिए मामूली बात थी। मरजादपुर के सबसे जबर्दस्त मेढ़े को जब तक वह चार-छः ठोकर लड़ा न लेता, तब तक उसे चैन नहीं आती थी। उसकी बाँहों की पेशियाँ इतनी सख्त थीं कि एक बार चेचक का टीका लगाते समय डाक्टर की सूई ही टूट गई थी।

इतना सब होते हुए भी रमेसर किसी एक जगह टिक नहीं पाता था। कब उसके मन में क्या आ जाय, इस बात का कुछ भी ठीक नहीं था। लेकिन उससे किसी को कोई भय नहीं था। दूसरे की चीज को वह मिट्टी के बराबर समझता था। मरजादपुर में त्रिबेनी महतो के यहाँ वह अक्सर रहा करता था। किसी-किसी समय तो वह उनके यहाँ लगातार चार-छः महीनों तक भी टिक जाया करता था।

अपनी छुट्टी भर जब तक पूरन नन्दगाँव में रहा, वह रोज रमेसर के साथ अपने खेतों में काम करने जाया करता था। इस बीच में उसने अपने गन्ने के खेत को सींच भी दिया था। धान के खेतों की दूब खोदकर धूप में जल जाने के लिए छोड़ दी गई, जिससे वर्षा के अन्त में वह गलकर खाद बन जाय। रमेसर पूरन के व्यवहार से

बहुत खुश रहता था। कौशल्या तो उसे प्रसन्न रखने की कुञ्जी ही जानती थी। मीठे भोजन के साथ ही वह उसे रमेसर काका-जैसे मीठे सम्बोधन से पुकारती भी थी। अपने मैके में भी वह उसे काका ही कहती थी।

धीरे-धीरे पूरन की छुट्टी बीत चली। इस पन्द्रह दिन की छुट्टी में करीब-करीब प्रत्येक दिन कौशल्या पूरन से उसकी नौकरी के विषय में जरूर बातचीत करती थी। वह उससे कभी तो इशारे से और कभी-कभी स्त्री-सुलभ सलोने हठ से भी नौकरी छोड़ देने के लिए कहती थी। पूरन उस समय तो उसकी बात पर हाँ कह देता था, और उसे आश्वासन भी दे देता था कि अब वह नौकरी छोड़ देगा, लेकिन दूसरे दिन फिर वह किसी-न-किसी बहाने उसे अपने आगे बढ़ने के हौसले, तरक्की के अरमान और नौकरी के फायदे इत्यादि समझाने लगता था।

एक दिन दोपहर को पूरन अपने कमरे में सोया हुआ था। गर्मी खूब पड़ रही थी। कौशल्या उसे पंखा डुला रही थी। पूरन की छुट्टी दो दिन और बाकी रह गई थी। पूरन छुट्टी भर यह कोशिश करता रहा कि कौशल्या उसे कानपुर के लिए खुशी-खुशी बिदा करे। लेकिन जब भी वह उससे कानपुर जाने की बात शुरू करता, तब या तो वह फौरन आग-बबूला बन जाती थी, या फिर एकदम उदासीन हो जाती थी। कौशल्या के हाथ से पंखा लेते हुए पूरन ने कहा—"कौशल्या, अब मेरी छुट्टी दो दिन और बाकी है।"

"तो मुझे मरजादपुर चलकर पहुँचा आवो, तब तुम्हारी जहाँ तबीयत करे, वहाँ जाना।" कौशल्या ने चिढ़कर कहा।

"अब तुम जिद मत करो कौशल्या। मैं अबकी बार बहुत जल्द लौट आऊँगा। सच कहता हूँ कौशल्या, वहाँ मेरे एक-एक दिन पहाड़ हो जाते हैं। यहाँ से जाने के बाद, मुझे पन्द्रह रोज तक रात को नींद न आएगी। लेकिन....."

"बस, बस रहने दो। इन मीठी बातों से किसी और को भुलाना। तुम्हें तुम्हारी नौकरी प्यारी है तो जावो, खुशी से जावो। आखिर मैं तुम्हें रोक तो सकती नहीं।"

इस बात को पूरन और आगे नहीं बढ़ाना चाहता था, क्योंकि वह जानता था कि इसका नतीजा कुछ नहीं होने वाला है। वह उठकर बैठ गया। कौशल्या के माथे पर उभरी हुई पसीने की बूँदों को उसी के आँचल से पोंछते हुए उसने कहा - "देखो, आज कितनी गर्मी है !"

लेकिन कौशल्या पहले-जैसी ही गम्भीर बनी रही। उसका आंतरिक रोष मिटता न देखकर पूरन ने फिर वही पहले वाला बहाना बनाया। उसने कौशल्या को विश्वास दिलाते हुए कहा कि वह कानपुर नहीं जायगा। जैसा वह कहेगी, वैसा ही वह करेगा। पूरन की बातों पर कौशल्या को विश्वास हुआ या नहीं, यह तो कहना कठिन है, किन्तु उसके चाँद से स्वच्छ मुखड़े पर एक लुभावनी मुस्कराहट जरूर आ गई। उसके खूबसूरत कपोलों की बारीक रेखाओं को स्पर्श करने के लिए पूरन के होंठ आतुर हो उठे।

तीसरे दिन किसी प्रकार समझा-बुझाकर पूरन ने कौशल्या से कानपुर जाने की अनुमति ले ली। खरीफ की फसल के लिए अब कुछ ज्यादा काम तो करना नहीं था। खेत तैयार थे। आषाढ़ का पानी बरसते ही दो बाँह जोतकर बीज बो देना था। ऊख के खेत में एक बार और पानी चलवाकर उसकी गोड़ाई करवा देनी थी। इन कामों के लिए पूरन ने रमेसर को सचेत कर दिया था। कौशल्या से उसने दो महीने बाद सावन में लौट आने की प्रतिज्ञा की। आँखों में आँसू भरे, कौशल्या ने पूरन को बिदा किया।

———

बारहवाँ अध्याय

दानेदार बीज को चाहिए क्या ? अच्छी मिट्टी, अनुकूल हवा, धूप और समय-समय पर पानी। बस, इतनी सामग्री अगर मिल जाय, तो वह अपने भीतरी अंकुर को बढ़ाकर होनहार पौदे में बदल लेगा। फिर उस पौदे को जमीन के गर्भ से अपनी खूराक खींचकर विशाल वृक्ष बन जाने में देर नहीं लग सकती।

पुलिस में रंगरूट की हैसियत से भरती हो जाने पर पूरन के विकास के लिए उपयुक्त जमीन मिल गई। वहाँ पर उसकी प्रतिभा का अंकुर अनुकूल जलवायु पाकर तेजी से बढ़ने लगा।

ट्रेनिंग के समय में पूरन अपनी बैरक के मेट का प्रियपात्र रहा। हाकी, फुटबाल, बालीबाल, आदि सभी खेलों में वह अपने साथ के रंगरूटों का अगुआ था। कवायद की अनुशासन-आज्ञाएँ, उसे लखनऊ में ही याद हो गई थीं। हाथों को एक खास अन्दाज से हिलाते हुए, दृष्टि को दाएँ, बाएँ और सामने रखते हुए और शरीर को चुस्ती से संतुलित रखकर वह परेड का अभ्यास भी अकेले में किया करता था। उसे हमेशा इस बात का शौक रहता था कि कभी उसे भी परेड कराने को मिले। और रंगरूटों के सामने सही परेड का उदाहरण रखने के लिए रेजीमेन्ट का अधिकारी पूरन को अक्सर कतार में से बाहर बुलाता था। अपने साथियों के सामने परेड का सुन्दर नमूना पेश करके जब वह अपनी कतार में वापस लौटने लगता, तो उसका हृदय उत्साह और उमंग से भर जाता था। इम्तहान के समय चानमारी करने में पूरन अपने रेजीमेन्ट में अव्वल आया।

ट्रेनिंग खत्म होने पर उसके साथ के अधिकतर रंगरूट तो पुलिस-विभाग में चले गए। पूरन को भी उसके साथियों ने पुलिस में ही जाने

की सलाह दी। सभी कहते थे कि मिलीटरी में खतरा रहता है। पुलिस-विभाग में जाने की अनुमति देकर पूरन घूम-फिर कर एक वर्ष तक थानों पर रहा भी। लेकिन उसकी तबीयत वहाँ न लगी। उसे मिलीटरी की ही नौकरी पसन्द थी। हमेशा एक उत्साहपूर्ण सैनिक वातावरण में रहने की उसकी प्रबल इच्छा रहा करती थी। ढीली ढाली जिन्दगी, उसे पसन्द नहीं थी। व्यस्तता में उसे आनन्द मिलता था। उसे एक सच्चे सिपाही का ही स्वभाव मिला था।

बहुत मुश्किल से पूरन अट्ठारह महीने थाने की नौकरी में टिक सका। थानेदारों की जी-हुजूरी, छोटी-छोटी बातों के लिए झूठ बोलना, दो-दो रूपए के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार रहना उसे बिलकुल पसन्द नहीं आया। इन अट्ठारह महीनों में उसने वह-वह घृणित दृश्य देखे, जिनकी वह कल्पना तक नहीं कर सकता था।

एक थाने पर पूरन की बदली दो महीने के लिए हुई। कोई सिपाही छुट्टी पर अपने घर गया था, उसी की जगह पर वह भेजा गया था। कस्बे के बाहर थाना था और उसी के पास कंजरो और बद्दुओं की पचासों झोपड़ियाँ थीं। उस थाने पर एक नायब दारोगा था। वह अक्सर कंजरों की बस्ती में जाया करता था। एक दिन शाम को उसने पूरन को अपने पास बुलाया। हथकड़ी और हन्टर लेकर, पूरी वर्दी में उसे अपने साथ चलने के लिए उसने कहा। पूरन को वह नायब थानेदार निहायत बेहूदा किस्म का आदमी मालूम पड़ता था। उसकी सूरत से ही उसे घृणा लगती थी। लेकिन फिर भी वह उसका एक बड़ा अफसर था। उसकी आज्ञा मानना भी एक मजबूरी थी।

वर्दी पहनकर और हथकड़ी लेकर पूरन उसके साथ चला। थोड़ी देर बाद वे दोनों उसी कंजर-टोले में पहुँचे। एक छोटी-सी झोपड़ी के सामने पहुँचकर वह नायब थानेदार रुक गया। वहाँ एक नौ-जवान आदमी अपने हथौड़े और छीनी से पत्थर काट रहा था। रह-रह कर उस पत्थर से चिनगारियाँ निकल पड़ती थीं। उस कंजर युवक की लम्बी बाँहों की पेशियाँ बहुत ही सुगठित थीं। उसके गले में काले डोरे

में बँधी हुई एक चौड़ी-सी चाँदी की ताबीज थी, उसके कानों में चाँदी के ही मोटे-मोटे दो कुंडल थे और उसके बड़े-बड़े बालों में पत्थर की सफेद गर्द भरी हुई थी। जाड़े के दिनों में भी उसके चौड़े ललाट पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं।

उसी कंजर युवक के सामने खड़ा होकर वह नायब थानेदार जोर-जोर से हँसने लगा। उसकी हँसी पूरन को बहुत बेतुकी मालूम हुई। लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी हँसी बन्द हो गई। उसने अपने ओवरकोट की जेब में से एक अद्धा निकाला। उसमें कच्ची शराब भरी हुई थी। उस जवान कंजर के सामने उस शराब की बोतल को रखते हुए वह बोला—"आज तुम मुझसे बचकर नहीं निकल सकते। जानते हो, कच्ची शराब बनाने की क्या सजा होती है? पूरे तीन साल चक्की पीसनी पड़ेगी।"

उस नौजवान के माथे पर बल पड़ गए। किसी घायल खूँख्वार जन्तु की तरह उसने एक बार उस बोतल की ओर और फिर उस नर-पिशाच नायब दारोगा की ओर देखा। भय के कारण वह कुछ सहम गया। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका।

"इसके हाथों में हथकड़ी लगावो।" नायब थानेदार ने पूरन को आज्ञा दी।

एक शब्द भी बोले बिना पूरन ने उस निर्दोष कंजर के हाथों में हथकड़ी पहना दी। इतने में झोपड़ी के भीतर से घाँघरा पहने हुए, एक साँवली छरहरी, सत्रह-अट्ठारह वर्ष की लड़की निकलकर दरवाजे से बाहर खड़ी हो गई। उसके हाथों में आटा गुथा हुआ था, उसकी लटें बिखरी हुई थीं। हथकड़ी में बँधे हुए नौजवान ने एक बार उस लड़की को देखा और उसकी आँखें आँसुओं से डबडबा आईं।

"ले चलो इस बदमाश को थाने पर।" पूरन को फिर आज्ञा मिली।

जब उस कंजर को लेकर पूरन थाने की ओर चलने लगा, तो वह लड़की जोर-जोर से रो पड़ी—"मेरे भाई को मत ले जावो सरकार।

हम गरीबों पर क्यों जुल्म करते हो ? छोड़ दीजिए हुजूर, मेरे भइया को।"

दारोगा ने उसके निकट जाकर कहा—"लाखी, मैं तो हमेशा तैयार हूँ। तुम राजी हो जावो, सब बखेड़ा ही खत्म हो जाय। अभी मैं तुम्हारे भाई को छोड़ देता हूँ।"

बँधा हुआ वह नौजवान क्रोध से तिलमिला उठा। वह कड़ककर बोला—"तुम नीच हो। कुत्ते से भी बदतर हो। चलो, मुझे जहाँ भी चाहो, ले चलो। लाखी से अगर कुछ भी कहा, तो ठीक न होगा।"

नायब थानेदार फिर उसी बेतुके ढंग से हँसने लगा। उसने पूरन को आगे बढ़ने का संकेत किया। जब उस नौजवान कंजर को लेकर पूरन थोड़ी दूर बढ़ गया, तब थानेदार ने लाखी से कहा—"लाखी! कल तक तुम्हें मौका देता हूँ। जब तुम्हारी तबीयत हो, आकर अपने भाई को छुड़ा ले जाना। इसके अलावा भी तुम जो भी कहो, वह मैं तुम्हें देने के लिए तैयार हूँ।"

पूरन ने उस कंजर को ले जाकर हवालात में डाल दिया। लेकिन दूसरे दिन सबेरे वह वहाँ नहीं था। पूरन ने नायब थानेदार से उस कंजर के विषय में पूछा, तब उसने एक भोड़ी-सी हँसी हँसकर पूरन से कहा था : "उसे तो रात में ही लाखी छुड़ा ले गई। पूरे एक साल से रगड़ करने पर कल रात वह परी मेरे हाथ आई। बड़े-बड़े लोग कोशिश करके हार गए, लेकिन उसके बदमाश भाई की वजह से किसी की भी दाल न गलने पाई। और मैं,....."आगे के शब्द उसकी बेहूदी हँसी में खो गए।

बारी बारी से पाँच थानों पर पूरन की बदली हुई। हर जगह उसे एक-से-एक बढ़कर अत्याचार मिलते थे। एक थाने पर तो थानेदार साहब केवल पन्द्रह रुपयों के लिए हिरासत में ले लिए गए। बात यह हुई कि एक दिन एक बुड्ढा आदमी थाने पर रिपोर्ट लिखाने आया। उसका खेत गाँव के एक जमींदार ने जबर्दस्ती कटवा लिया था। थानेदार साहब ने रिपोर्ट लिखने से इनकार कर दिया। मतलब उनका

रुपये से था। बुड्ढे ने उन्हें पन्द्रह रुपये अपनी टेंट से निकालकर दे दिये। थानेदार ने पन्द्रह रुपये और माँगे। लेकिन उसके पास तो और रुपया था नहीं। रिपोर्ट नहीं लिखी गई। बुड्ढे को किसी व्यक्ति ने कलक्टर के पास जाने की सलाह दे दी। वे उस जिले में अपनी न्यायप्रियता के लिए मशहूर थे। दूसरे दिन इतवार था। वह बुड्ढा कलक्टर के पास जाकर बहुत रोया। वे उत्साही व्यक्ति थे। मोटर पर उस बुड्ढे को साथ लेकर वे थाने पर आए। स्वयं तो वे दूर रहे। बुड्ढे को अपने पास से हस्ताक्षर किए हुए पाँच-पाँच के तीन नोट देकर उन्होंने थाने पर भेजा। थानेदार साहब ने आँखें मूँदकर नोटों को जेब में रक्खा और तब उस बुड्ढे की रिपोर्ट लिखने के लिए बैठे। थोड़ी ही देर बाद कलक्टर ने आकर उन महोदय को रँगे हाथ पकड़ा।

पुलिस में रहने के कारण थाने के छोटे-बड़े अधिकारियों के नीच-से-नीच कामों में पूरन को भी योग देना पड़ता था। उन घृणित कामों को करते समय उसकी आत्मा विद्रोह करती थी, लेकिन वह कुछ भी कर न पाता था।

उसका मन पुलिस की वैसी गई-बीती नौकरी में कतई न लगता था। ऊबकर वह एक दिन कानपुर गया। वहाँ मिलीटरी में अपना तबादला कराने के लिए उसने पी० ए० सी० के कम्पनी कमान्डर के पास एक दरख्वास्त दे दी। संयोग से उसका प्रार्थनापत्र मंजूर हो गया। वह फिर कानपुर लौट आया।

जब से पूरन पी० ए० सी० में लौटकर आया, तब से लेकर सात वर्ष के अरसे में उसने आशातीत सफलता प्राप्त की। हाकी की अखिल-प्रान्तीय प्रतियोगिताओं में प्रान्त का प्रतिनिधित्व करनेवाली पुलिस-टीम का वह दो बार कप्तान चुना गया। पुलिस-विभाग के प्रान्तीय खेलों में वह हर वर्ष कोई-न-कोई कप या तकमा अवश्य जीतता था। उच्च-से-उच्च अधिकारी भी उसकी इज्जत करते थे। इस अवधि में उसकी बदली कई मिलीटरी केन्द्रों में हुई। वह जहाँ-जहाँ भी गया,

वहाँ से अपना नाम ऊँचा करके आया। पूरे प्रान्त का पुलिस-विभाग उसके नाम से परिचित हो गया था।

नन्दगाँव आने के समय पूरन पी० ए० सी० के एक रेजीमेन्ट का जमादार था। प्रान्त के ऊँचे-ऊँचे मिलीटरी के अधिकारियों के वार्तालाप का वह विषय था। जिन दिनों प्रान्त के खेल होते, उन दिनों सभी की जबान पर उसका नाम रहता था। जब वह खेल के मैदान में उतरता, तो उसके अफसर फूले न समाते थे।

पूरन की प्रतिभा के अंकुर में कोंपलें फूटने लगी थीं। दिन-प्रति-दिन वह अनुकूल वायु के झोंके पाकर बढ़ता ही जा रहा था। उसका कम्पनी कमान्डर उसे लड़के की तरह मानता था। कई बार वह आई० जी० और प्रान्त के गवर्नर तक से हाथ मिला चुका था। उन्नति का आलोकमय विस्तृत मार्ग उसके सामने खुला हुआ था।

———

तेरहवाँ अध्याय

जेठ बीत गया। आकाश में घटाओं का वितान तानकर वर्षा आषाढ़ से मिलने आ गई। नन्दगाँव की धरती सरस हो उठी। चारों तरफ सीवान में एक नई चहल-पहल पैदा हो गई। नन्दगाँव की लक्ष्मी खेतों में ही निवास करती थी। वर्षा से केवल दो बार वह उस गाँव के घरों में आती थी। एक बार तो शरद् ऋतु में खरीफ की धानी चूनर पहनकर और दूसरे बार फिर वसन्त में गेहूँ की गुलाबी बालियों से सजी हुई। कौशल्या ने अपने खेतों में धान, मक्का, जुन्हार और मूँग बुआया। रमेसर डटकर काम कर रहा था। बैल दोनों अच्छी नस्ल के थे और खिलाने-पिलाने से तैयार भी खूब थे। वे खेत में दौड़ते हुए चलते थे, पीठ पर हाथ न रखने देते थे। उन बैलों को जोतने में रमेसर को विशेष आनन्द आता था। उसने खेतों को खूब कमाकर बोया था।

एक दिन सुबह, रमेसर हल-बैल लेकर खेत में जा रहा था। कौशल्या के मैके वाले बैल का घुँघरू टूट गया था। रात को ही कौशल्या ने उसको लाल डोरे में गाँछकर तैयार कर दिया था। रमेसर से उसने बैलों को रोकने के लिए कहा। दरवाजे से बाहर निकलकर कौशल्या ने मरजादपुर वाले बछड़े के गले में घुँघरू बाँधा, दोनों बैलों की पीठ पर हाथ फेरा और 'धनन्'-'धनन्' आवाज करते हुए वे दोनों खेतों की ओर दौड़ पड़े। रमेसर भी उनके पीछे 'हौ'-'हौ' करता हुआ चला गया। कौशल्या के मुख पर गर्व की एक लहर दौड़ गई। मन में उसने कहा—"है किसी की ऐसी गोई!"

वह अपने दरवाजे की ओर मुड़ी ही थी कि उसके कानों में बहुत सी घंटियों के बजने की आवाज आई। दरवाजे के बाहर ही वह रुक

गई। उसने देखा, सामने से चार गोई बड़ी रास के बैल शान से गर्दन उठाए, फुनकारते हुए चले आ रहे थे। उनके गलों में भी घन्टियाँ बँधी हुई थीं, दो-दो मूँठ की सींगों को तेल से सँवारा गया था। उनके पुट्ठों पर मांस लदी हुई थी और उनके रोएँ चमकदार थे। कौशल्या दरवाजे के बाहर अपनी जगह पर ही खड़ी रही। बारी-बारी से चारों गोई उसके सामने से निकल गईं। उनके पीछे दो गोई छोटी रास के बैल निकले। उनके पीछे, अनाज-भरे चार बड़े-बड़े ढाकों को सर पर लिए हुए, चार आदमी आते दिखाई पड़े। कौशल्या के गर्व को गहरा धक्का लगा। उन बैलों के सामने उसके बछड़ों की क्या हस्ती थी!

कुछ मुग्ध, कुछ चकित, कुछ खिन्न-सी वह खड़ी ही थी कि उसने उन चारों आदमियों के भी पीछे एक और जवान आदमी को देखा। सफेद धोती और कुर्ता वह पहने हुए था। उसके पैरों में बाटा के बरसाती जूते थे, सिर पर लम्बे और घने बाल थे। कुर्ते के नीचे उसके उन्नत सीने का उभार और चौड़ा ललाट बहुत ही भला मालूम हो रहा था। रंग उसका गोरा था और निगाहें नीची किए हुए वह चल रहा था। उस अपरिचित व्यक्ति को देखकर कौशल्या अपने दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। वह भीतर चली जाना चाहती थी, लेकिन उसके मन में एक हलकी-सी उत्सुकता उत्पन्न हो गई थी। दरवाजे से थोड़ा आगे बढ़कर, माथे पर जरा-सा घूँघट गिराकर उसने देखा। पहले ही जैसा अपने में ही मस्त वह युवक नीची दृष्टि किए हुए चला जा रहा था। उसके मुख पर चाँद-सी सादगी और फूल-सी ताजगी थी। उसमें एक लुभावना सलोनापन था, जिस पर सहज ही विश्वास हो जाता था।

जैसा कि अधिकांश युवतियाँ समझती हैं; और वे ठीक भी समझती हैं, कि उनके सामने से निकलने वाले किसी जवान की आँखों का उन पर न पड़ना असाधारण अपवाद है। कुछ-कुछ वैसी ही धारणा कौशल्या की भी थी। किसी दूषित विचार से नहीं, लेकिन उसके मन में यह निश्चय-सा था कि वह युवक उसकी ओर देखेगा, जरूर देखेगा।

लेकिन जब वह उसकी ओर ध्यान दिए बिना ही आगे बढ़ गया, तो कौशल्या को हलका-सा क्रोध आ गया। उसने मन ही मन उस युवक को कोसा भी।

कौशल्या घर के भीतर गई। आँगन में उसका पलंग पड़ा हुआ था। बिस्तरा ओस के कारण थोड़ा-सा नम हो गया था। वह उसी पर लेट गई। मुडेर की आड़ से लुकी-छिपी सूरज की किरणें अपना सुनहरा जाल फेंक रही थीं। कौशल्या की पलकों में एक शिथिलता थी। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। पूरे घर में नीरवता थी। दो-दो, चार-चार मिनट पर घर में रहने वाली गौरइयों की चूँ-चूँ सुनाई पड़ जाती थी। वह सूनापन कौशल्या की चेतना में हलचल पैदा कर रहा था। उसके अन्तर्मन के परदे पर एक युवक की तस्वीर बन रही थी। थी तो वह तस्वीर ही, लेकिन उसमें गति थी, जीवन था और जीवित आकर्षण था। उसको वह स्पष्ट देख रही थी। उसका भरा हुआ सौम्य चेहरा, उलझे हुए काले बाल, झुकी हुई आँखें कौशल्या के हृदय में एक तन्मयता की सृष्टि कर रही थीं। लेकिन वह अजीब स्वभाव का युवक है। उसकी ओर देखता तक नहीं। क्यों ?

कौशल्या पलंग से अचानक उठ पड़ी। अपने कमरे में जाकर उसने शीशा उठाया और उसमें गौर से अपने मुख को देखा। निश्चित संख्या देना तो बड़ा मुश्किल है, लेकिन औसतन चौबीस घन्टे में कम-से-कम पन्द्रह बार तो वह शीशे में अपना मुँह अवश्य देखती थी। यह कोई ताज्जुब की बात नहीं, उस उम्र की सभी औरतों का यही हाल है। लेकिन आज, कौशल्या शीशे में, एक दृष्टि-कोण-विशेष से देख रही थी, स्वान्तःसुखाय नहीं। उसने अपनी आँखों की कोरों पर, काजल की रेखा में एक धार देखी, मुख की गढ़न में उसे एक अनोखी खूबसूरती का आभास मिला। शीशा उसने रख दिया और एक बार एँड़ी से कन्धे तक अपने आप को निहारा। उसके मुँह से अनायास निकल पड़ा—"ऊँह ! जाने भी दो, वह मनहूस था।"

स्नान करके वह भोजन बनाने जा रही थी, तभी जीनत आ गई।

कौशल्या के मन में यह बात घूम-घूमकर आ रही थी कि वे बड़े-बड़े बैल किसके थे ? वह युवक कौन था ? जीनत से वह काफी हिल-मिल भी गई थी। बातचीत के सिलसिले में उसे पता चला कि वे बैल रेवतीपुर के बड़ी थोक के जमींदार बद्री ठाकुर के थे और वह युवक उन्हीं का इकलौता बेटा रामानन्द था। पिता की मृत्यु के बाद उसने पढ़ाई छोड़ दी थी और अब अपने घर का ही काम देखता था। जीनत ने उसे बताया कि रेवतीपुर में जितने भी जमींदारों के लड़के हैं, उन सब में रामानन्द सबसे अधिक शरीफ और नेकनियत है।

दोपहर को रमेसर हल-बैल लेकर लौटा। बैलों को नाद पर लगा कर वह स्नान करने चला गया। गाँव के लोग हल-बैल के साथ अपने-अपने खेतों से लौट रहे थे। जब भी घर के किनारे से बैलों के जाने की आहट होती, तभी कौशल्या भीतर से निकलकर दरवाजे पर खड़ी हो जाती थी। उसके हृदय में एक बहुत ही प्रबल उत्सुकता पैदा हो गई थी, जिसे वह दबा न पाती थी। चार बार वह दरवाजे पर आई और हर बार उसे धोखा हुआ। सबेरे गई हुई बड़े-बड़े बैलों की गोई उसे लौटती न दिखाई पड़ी। कौशल्या को स्वयं पर एक झुँझलाहट हुई। मन-ही-मन वह बुदबुदा उठी—"आखिर क्या हो गया है मुझे ?"

वह घर में चली। फिर बाहर न जाने का उसने निश्चय कर लिया और घर में आकर बैठ गई। थोड़ी देर बाद बाहर फिर बैलों के आने की आवाज सुनाई पड़ी। कौशल्या ने फिर अपनी चञ्चलता का अनुभव किया। उसकी वृत्तियाँ दरवाजे की ओर दौड़ने लगीं। लेकिन उसने अपने ऊपर नियंत्रण रक्खा और थोड़ी देर तक वह अपनी जगह पर बैठी रही। सहसा उसे लगा, जैसे उसके दरवाजे के सामने से वे ही बड़े-बड़े बैल जा रहे हैं और उनके पीछे रामानन्द भी चला जा रहा है। वह उठकर खड़ी हो गई, आँगन तक गई, और फिर लौट पड़ी। लौटते-लौटते दरवाजे से उसने झाँक ही लिया। वे बैल अभी तक नहीं आए थे।

इसी बीच में रमेसर भी स्नान करके लौट आया। कौशल्या ने

चौके में जाकर उसके लिए भोजन परोसा। रमेसर भोजन करने लगा। वह चौके में बैठी हुई थी। इतने में घँटियों का बजना फिर सुनाई पड़ा। अबकी बार आवाज तेज थी। कौशल्या एकाएक उठकर खड़ी हो गई और चौके से निकलकर सीधे दरवाजे पर जाकर खड़ी हो गई। उसने देखा, वही सबेरे वाले बैल थे। भीतर लौटकर उसने एक पीतल की थाली में चोकर लिया और रमेसर से बोली—"काका, मैं जरा बैलों की नाद में चोकर डाल आऊँ, बेचारे बैल मुँह बन्द किए खड़े हैं।"

रमेसर को बैलों से ज्यादा अपना मुँह बन्द रहने की चिन्ता थी। उसकी थाली में आखिरी रोटी बची थी। उसने कहा—"बेटी! मुझे थोड़ी दाल और रोटी दे दो, तब जाओ।"

लिखने की जरूरत नहीं कि अपने रमेसर काका का रोटी माँगना कौशल्या को कैसा लगा। हाथ का चोकर वहीं रखकर वह झपटकर चौके में गई। अपने काका की थाली में आठ-नौ रोटियाँ और कटोरा भर दाल परसकर, वह बैलों की नाद में चोकर डालने चली।

जब कौशल्या दरवाजे पर पहुँची, तो बड़े बैल आगे निकल गए थे। छोटे बैल उसके दरवाजे के सामने से जा रहे थे और रामानन्द पसीने से तर उनके पीछे आ रहा था। कौशल्या अपने बैलों के पास जाकर मुट्ठी से चोकर निकाल-निकालकर नाद में डालने लगी। लेकिन उसकी दृष्टि रामानन्द पर ही केन्द्रित थी। वह उसे निःशंक भाव से देख रही थी, लुकी-छिपी या तिरछी निगाहों से नहीं। इसके दो कारण थे। एक तो, वहाँ कोई था नहीं। दूसरे रामानन्द के विषय में जीनत ने बताया था कि वह बहुत ही शर्मीला है। और जो स्वयं शर्म खाता हो, उसको अच्छी तरह देख लेने में हानि भी क्या है।

लेकिन जब कौशल्या की दृष्टि रामानन्द में उलझी हुई थी तभी, एक बैल मुँह बढ़ाकर जल्दी-जल्दी थाली का चोकर खाने लगा और उसके हाथ से छूटकर थाली जमीन पर गिर पड़ी। 'झन्न...' की आवाज से कौशल्या चौंक पड़ी और रामानन्द भी रास्ते में ठहर गया। उसने कौशल्या को देखा, कौशल्या ने उसको देखा। कुछ क्षणों तक

दोनों एक दूसरे को देखते रह गए। एक ओर दो पलकें उठती थीं, तो दूसरी ओर दो झुक पड़ती थीं। एक ऐसा खिंचाव था, जिसमें दोनों परवश हो गए थे।

पीछे से फिर बैलों के आने की आहट हुई। रामानन्द ने चौंककर अपना मुँह फेर लिया। शर्म से उसने अपना सर नीचा कर लिया और पुनः शीघ्रता से रास्ते पर आगे बढ़ने लगा। कौशल्या ने थाली उठाई और मुड़कर रामानन्द की ओर देखती हुई वह अपने दरवाजे पर जा पहुँची। वहीं पर खड़ी होकर फिर वह जाते हुए रामानन्द को देखने लगी। करीब सौ कदम जाने के बाद वह भी नीम के पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। रूमाल से माथे का पसीना पोंछते हुए वह फिर कौशल्या के दरवाजे की ओर देखने लगा।

दिन बीतते था, रात आती थी। रात बीतने पर दिन आता था। संध्या को दिन, रात की प्रतीक्षा करता था। और भोर में, रात दिन का इन्तजार करती थी। तीन दिन तक लगातार रामानन्द उसी रास्ते से अपने खेतों को जाता था। उसके बैलों की घन्टियाँ, घर के भीतर बैठी हुई कौशल्या को बेचैन कर देती थी। कभी वह दरवाजे पर आकर खड़ी हो जाती, तो कभी बैलों की नाद में कुछ डालने लगती थी। रामानन्द से भी, सुबह, दोपहर, शाम उस नीम-तले आते ही जैसे कोई रुक जाने का आग्रह करने लगता था। किन्तु वह स्वभाव से ही संकोची था। अपने भीतर उठती हुई भावनाओं को दबाकर वह आगे बढ़ जाता था। कौशल्या उसके आते ही दरवाजे से बाहर निकलकर नाद पर चली थी। खाँसकर, अपने बैल की पीठ पर थपकी देकर वह रामानन्द का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न भी करती थी। लेकिन रामानन्द तब जैसे और भी दब जाता था। कभी-कभी वह नीम के नीचे पहुँचकर वहाँ अवश्य खड़ा हो जाता था, लेकिन उस समय उसकी आँखें भय और आशंका से चंचल रहती थीं। प्रत्येक पल वह अपने चारों तरफ देखता रहता था।

कौशल्या उसके स्वभाव का थाह पा गई थी। उसे विश्वास था

कि रामानन्द भी उसकी ओर आकर्षित है। उसका शर्मीला स्वभाव उसे बहुत खल रहा था, लेकिन साथ-ही-साथ उसका आकर्षण भी कौशल्या के लिए दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही जा रहा था। एक दिन जब रामानन्द उसके घर के सामने से होकर जा रहा था तब कौशल्या एक बार चारों तरफ देखकर उसके रास्ते के एक किनारे जाकर खड़ी हो गई। रामानन्द ने एक बार अपना सर उठाया। कौशल्या से आँखें मिलते ही उसका चेहरा लाल हो गया, माथे और कपोलों पर पतली-पतली रेखाएँ उभरकर टूटने लगीं। कुछ परेशान-सा वह फिर आगे बढ़ने लगा। उसकी साँस जैसे फूल रही थी। कौशल्या धीरे से हँस पड़ी और उसने एक छोटी-सी कंकड़ी उठाकर उसके मुँह पर मारा। रामानन्द ने थोड़ा-सा चौंककर उसकी ओर देखा और एक अजीब डरी और सहमी हुई मुस्कराहट उसके होठों पर बिखर उठी। लेकिन वहाँ ठहरने की हिम्मत उसमें नहीं थी। नाक की सीध में वह तेजी से रास्ते पर बढ़ने लगा। इस प्रकार कौशल्या रामानन्द की ओर सक्रिय रूप से बढ़ती जा रही थी।

सावन की नागपञ्चमी भी आ गई। पूरन नहीं लौटा। दो दिन पहले उसका पत्र आया। अपने पत्र में उसने क्वार में आने का वादा किया था। उस चिट्ठी की बात सुनकर कौशल्या को झुँझलाहट हुई। पूरन पर उसे बेहद गुस्सा आया। पहले दिन रामानन्द को देखकर वह बहुत तेजी से उसकी ओर आकर्षित हुई थी। लेकिन जब बोआई खत्म हो गई तब उसका नन्दगाँव में आना-जाना भी बन्द हो गया कौशल्या के मन में उसके दब्बू स्वभाव के कारण एक उदासीनता भी आ गई थी। नागपञ्चमी को उसे पूरन के आने की पूरी आशा भी थी। इस-लिए अचेतन रूप से उसके मानस पर पति का भय भी छाया हुआ था। इस वजह से भी उसके मन में रामानन्द के प्रति उदासीनता आ गई थी। नन्दगाँव में कभी-कभी रामानन्द आता था। किसी न किसी बहाने वह उसके दरवाजे से होकर अवश्य गुजरता था, किन्तु कौशल्या उसके प्रति अपनी पहले वाली उत्सुकता का प्रदर्शन नहीं कर पाती थी।

रामानन्द ही चेष्टाओं में विशेष सक्रिय और परेशान दिखाई पड़ता था। किन्तु जितने बार वह कौशल्या के सामने से हो कर गुजरता था, उतने ही बार वह उसके हृदय पर अपनी छाप डाल जाता था।

नागपञ्चमी के दिन सारे गाँव में चहल-पहल रही। नीम और बरगद के पेड़ों में झूले पड़े हुए थे। झूला झूलती हुई स्त्रियों के कजलियों के स्वर हवा की लहरियों पर थिरक रहे थे, बादलों में चपलता पैदा कर रहा। किन्तु कौशल्या बहुत ही उदास थी। उसने सादा भोजन बनाया लेकिन रमेसर को खिलाकर अपना हिस्सा चौके में ही छोड़ दिया और जाकर वह अपने कमरे में लेट रही।

दोपहर को जीनत उसके पास आई और उसे जबर्दस्ती कुछ देर के लिए पिछवाड़े बरगद के पेड़ में पड़े हुए झूले के पास तक ले गई थी। लेकिन वहाँ से भी वह सिर चकराने का बहाना करके फिर अपने घर में लौट आई और कमरे में चुपचाप लेट रही। उसके चारों तरफ एक कोई बहुत बड़ा जाल बिछा हुआ था और जितना ही अधिक वह उस जाल से निकलने के लिए हाथ-पैर मारती थी, उतना ही अधिक वह उसमें और फँसती जाती थी। पिछले एक महीने से वह रामानन्द की ओर से उदासीन हो जाना चाहती थी। उसने इसके लिए प्रयत्न भी किया था और अपने इस प्रयत्न में, कम से कम अपनी बाहरी चेष्टाओं को रोकने में वह सफल भी रही। किन्तु जब से उसे पूरन की चिट्ठी मिली, तभी से उसकी भावनाएँ फिर उमड़-घुमड़ कर रामानन्द के इर्द-गिर्द चक्कर काटने लगी थीं। उसके अचेतन में छिपा हुआ भय दूर हो गया था। उसका पति, पूरन अब फिर दो महीने तक नहीं आने वाला था।

कौशल्या ने शाम तक कुछ भी न खाया। दिन भर वह अपने कमरे में लेटी रही। किसी भी जगह उसका जी लगता ही न था। वह एक विषम वृत्त के भीतर पड़ गई थी, जिसका कोई अन्त ही नहीं था। फिर भी उस परिधि के भीतर रहने में उसे विशेष तरह का आनन्द भी मिल रहा था। गोधूली के समय वह अपने बिस्तरे पर से उठी और

चिराग जलाकर दरवाजे पर रख आई। उसका सिर भारी था, शरीर में ताप था और अंग-अंग के जोड़ टूट रहे थे। जब वह चिराग रखने दरवाजे पर गई, तो झूला झूलती हुई स्त्रियों के गीतों से सारा वातावरण गूँज रहा था। रमेसर किसी दूसरे गाँव में आल्हा सुनने गया हुआ था। पसीने से उसकी देह भीगी हुई थी। थोड़ी देर तक दरवाजे पर खड़ी रहने के बाद वह भीतर धोती लाने के लिए चली आई। वह स्नान करने के लिए जनाना घाट जाना चाहती थी।

दरवाजे में ताला लगाकर जब कौशल्या नदी की ओर चली, तो उसने नीम के पेड़ के नीचे कुछ अन्य लोगों के साथ रामानन्द को भी देखा। उसका हृदय खुशी से उछलने लगा। थोड़ी देर तक व्यर्थ ही वह अपने दरवाजे पर खड़ी रही। जब उसे विश्वास हो गया कि रामानन्द ने उसको देख लिया है, तब वह नदी की ओर चली। गरदन मोड़ कर, कनखियों से वह उसे देखती भी जा रही थी। वह स्वयं नहीं समझ पा रही थी कि आखिर उसने अपनी भावनाओं को उस समय ढील क्यों दे दिया था। पिछले पन्द्रह दिनों की उसकी उदासीनता जैसे बिलकुल नकली थी।

जिस समय जनाना घाट से स्नान करके कौशल्या निकली उस समय चारों तरफ अँधेरा फैल चुका था। मचलती हुई आमी की लहरें कगारों की सीमा को तोड़ देना चाहती थी। वह गुलजार टोले से लौटने के बजाय नदी के किनारे निचले रास्ते पर चल रही थी। गाँव की स्त्रियों के गीत उस समय भी आकाश में गूँज रहे थे। लेकिन नदी के किनारे एक सूनापन और खामोशी छाई हुई थी।

जनाना घाट से जब कौशल्या कुछ दूर आगे चली आई तो उसे अपने पीछे किसी के आने की आहट-सी मालूम हुई। मुड़कर उसने देखा, तो घाट के किनारेवाले पुराने मन्दिर में से निकलकर कोई उसी की तरफ आ रहा था। थोड़ी देर के लिए वह उसी जगह पर ठहर गई। वह आदमी उसके निकट दस कदम की दूरी पर आकर खड़ा हो गया। जब तक वह दूर था तब तक कौशल्या के हृदय में एक भय और

दुविधा थी। लेकिन ज्यों-ज्यों वह निकट आता गया वह उसे पहचानती गई। अपने समीप खड़ा देखकर, बादलों के कारण धुँधली चादनी में भी कौशल्या ने उस पुरुष को निश्चित रूप से पहचान लिया। वही भरा हुआ शर्मीला चेहरा था, बड़े-बड़े उलझे हुए बाल थे, कुर्ते के नीचे से वही उभरा हुआ सीना था। कौशल्या की ओर अपलक देखता हुआ रामानन्द उसके सामने खड़ा था।

काफी देर तक दोनों वहीं खड़े रहे। दोनों चुप थे, रह-रह कर वे एक दूसरे को देख लेते थे। पहले कुछ बोल सकने की हिम्मत रामानन्द में नहीं थी। वह अपने पैर के नाखूनों से मिट्टी कुरेदता हुआ खड़ा था। शेर के समने भी वैसा सहमा हुआ कोई न खड़ा होता। एकान्त स्थान में, वैसे समय, एक युवक को सामने पाकर पहले तो कौशल्या का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा, लेकिन थोड़ी देर बाद उसने अपने पर नियंत्रण कर लिया।

रामानन्द के चेहरे पर आने-जाने वाले भावों को कौशल्या बड़े गौर से देख रही थी। उसके हृदय में हलकी-सी हँसी के साथ ही एक अदम्य उल्लास भी हिलोरें ले रहा था। जब उसने अच्छी तरह समझ लिया कि रामानन्द का बोलना टेढ़ी खीर है, तो उसने अपनी भीगी हुई धोती से थोड़ा पानी निचोड़कर उसके मुँह पर छींटा मारा। ऐसा करते समय वह उसके समीप पहुँच गई। उन छींटों के मुँह पर पड़ने से रामानन्द ने अपना सर ऊपर उठाया और जेब से रूमाल निकालकर मुँह पोंछने लगा। उसके चेहरे की परेशानी और बढ़ गई। वह पीछे हटने लगा। उस समय उसकी शकल देखने ही लायक थी। कौशल्या ने अपनी हँसी को दबाते हुए कहा—"अरे भलेमानस, मैं कोई हउआ नहीं हूँ, जो आप को खा जाऊँगी। आखिर आप चाहते क्या हैं?"

"कुछ नहीं, कुछ भी नहीं, बस यों ही, एक बात मैं तुमसे कहना चाहता था।" रामानन्द की आवाज ऐसी थी जैसे उसका दम घुट रहा हो, मानों उसे कोई पानी में दबाकर डुबो रहा हो।

"हाँ, हाँ। कहिए, कौन-सी बात है वह ?"

"बात ? हाँ, एक बात कहनी थी। लेकिन अभी नहीं, फिर कभी।"

"फिर कब ?"

"क्या कल फिर नहाने न आवोगी ?"

"ऊँहुँ..."

"मैं कल फिर इसी समय इस जगह आऊँगा।"

"रोकता कौन है आपको ?"

"और तुम ?"

"क्यों बताऊँ ? मेरी तबीयत होगी तो आऊँगी, न होगी, तो न आऊँगी।"

कौशल्या तेज कदमों से अपने घर की ओर चली। रास्ते में उसके पाँव जमीन पर नहीं, फूलों पर पड़ रहे थे। घर में जाकर उसने अरगन पर अपनी भीगी साड़ी को टाँगा। रमेसर बैलों को नाद पर लगाकर कहीं गया हुआ था। कौशल्या के भीतर की उमंग उसके होठों से गुन-गुनाहट के रूप में निकली पड़ती थी। कमरे में जाकर उसने अपना रूप शीशे में देखा और भीगे हुए बालों को समेटती हुई वह फिर दर-वाजे पर आकर खड़ी हो गई। नाद पर बँधे हुए दोनों बैल उसकी तरफ देखने लगे। उसने दोपहर का बचा हुआ सारा भोजन घर में से लाकर उन दोनों बैलों की नाँदों में डाल दिया। उनके मुलायम रोओं वाली चिकनी पीठ पर दुलार से थपकियाँ देकर वह फिर घर में चली आई।

जब कौशल्या रात के लिए भोजन बनाने चौके में गई, तब उसे याद आया कि दिन भर वह झूला तक झूलने नहीं गई। उसने जीनत और पार्वती को बुलाने के लिए संदेशा भेजा। भोजन के बाद पार्वती की भाभी सरीखी अन्य नन्दगाँव की बहुओं के साथ कौशल्या आधी से अधिक रात तक झूला झूलती रही। रात में झूले पर कोई पुरुष न था। गाँव की लड़कियाँ पेंग सँभाले हुए थीं और बहुएँ बीच में बैठी हुई सावन के गीत गा रही थीं। रात की नीरवता के कारण उनके

गीत और हँसी की नन्दगाँव के आस-पास अन्य गाँवों तक भी अपनी मधुरिमा बिखेर रही थी। लगता, आकाश में मँडराते हुए चञ्चल मेघ-खंडों को देखकर रात्रि मानों उन गीतों में मुखरित हो उठती थी। कई बार पेंग बदला भी गया। लड़कियाँ बीच में आईं और भाभियों को पेंग सँभालना पड़ा। रात के तीसरे पहर में झूला बन्द हुआ। सभी बहुएँ और कन्याएँ अपने-अपने घर गईं।

कौशल्या जब अपने घर पहुँची, तो दरवाजे पर रक्खा हुआ चिराग बुझ गया था। रमेसर अपनी खाट पर बेखबर सो रहा था। उसने भीतर जाकर चिराग जलाया और सोने की तैयारी करने लगी। उस समय आकाश में बहुत जोर-शोर से घटा उठ रही थी, हवा में कुछ ठंडक भी थी। कौशल्या ने आँगन में पड़ी हुई खाट को उठाकर दालान में रक्खा और अपने कमरे में बिस्तरा लाने के लिए गई। जब वह अपना बिस्तर उठा रही थी, तो दिये की रोशनी में उसकी निगाहें दीवाल पर टँगी हुई पूरन की तस्वीर पर पड़ी। उसे एक सदमा लगा, इतना गहरा मानसिक सदमा कि उसके धक्के से कौशल्या का शरीर भी शिथिल पड़ गया। वहाँ पड़े हुए पलंग पर वह बैठ गई। कई बार उसने उस तस्वीर की ओर देखा। उसको अपनी वे सभी रातें बारी-बारी से याद आने लगीं जिन्हें उसने पूरन के साथ बिताया था। हँसता हुआ, मुसकराता हुआ, बातें करता हुआ वास्तविक पूरन उसके सामने आने लगा। लेकिन कौशल्या ने उसके व्यक्तित्व में कम आकर्षण महसूस किया। उसी समय रामानन्द की वह निसर्ग सुन्दर मूर्ति भी उसके मानस के परदे पर उभर आई, जिस पर उसकी भावनाएँ पिछले दो-तीन महीनों से अपना रंग चढ़ा रही थीं। पिछले दो महीनों से जो आँधी उसके अन्तर में उठ रही थी, उसने आज सहसा उसकी चेतना को झकझोर दिया। कौशल्या ने अनुभव किया कि उस वेग-वती झंझा ने उसकी भावनाओं की गति और दिशा को ही बदल दिया था। रामानन्द अपने समस्त भोले आकर्षण को लेकर उसके रग-रग में समा गया था।

कौशल्या ने अपने भीतर एक भयंकर कमजोरी का अंकुर स्पष्ट रूप से देखा। भय से वह एक बार काँप उठी। पूरन और रामानन्द को लेकर वह पहले बार ही नहीं सोच रही थी। आज के दो महीने पहले, जब से उसने रामानन्द को देखा और उसकी आशक्ति उसमें बढ़ने लगी, तभी से उसके मन में बराबर संघर्ष चलता रहता था। प्रयत्न-पूर्वक, सोच-विचारकर, वह अपनी वृत्तियों को पूरन पर केन्द्रित करने की चेष्टा करती थी। लेकिन उसके मनोभावों का प्रवाह निरंकुश होकर रामानन्द की ओर दौड़ने लगता था। कुछ दिनों के लिए उसने अपने को उदासीन भी रखने का प्रयत्न किया, किन्तु उसकी उदासीनता भी बाहरी साबित हुई। उस समय केवल वह अपनी चेष्टाओं को ही रोक पाई थी, हृदय के भीतर से निरन्तर प्रवाहित उस अनुराग-श्रोत को वह न रोक सकी थी। जिस दिन पूरन का पत्र आया, उस दिन से उसकी बाहरी उदासीनता भी जाती रही।

अपनी परवशता पर कभी-कभी कौशल्या को विक्षोभ भी होता था। वह स्वयं को कोसती भी थी। किन्तु रामानन्द को देखते ही उस पर जैसे किसी अज्ञात शक्ति का प्रभाव पड़ने लगता था और कौशल्या का समूचा आन्तरिक व्यक्तित्व उसके इर्द-गिर्द घूमने लगता था। उसके निर्दोष रूप के जहर ने कौशल्या के मर्म को स्पर्श कर लिया था, उसकी बड़ी ही रहस्यमय कमजोरी पर उसने उँगली रख दी थी।

न जाने कितने तरह के विचारों में डूबी हुई कौशल्या अपने कमरे में ही पलंग पर सो गई। जब उसकी नींद खुली, तो वह पसीने से तर थी। उस समय थोड़ी रात बाकी थी। अलसाई हुई वह उठी और बरामदे में पड़ी हुई खाट पर बिना कुछ बिछाए हुए ही फिर सो गई।

———

चौदहवाँ अध्याय

कानपुर आने के बाद कुछ दिनों तक तो पूरन बहुत दुःखी रहा। उसके मन में कभी-कभी नौकरी से इस्तीफा देकर घर लौट जाने की बात भी आने लगती थी। कहीं भी उसे कुछ अच्छा न लगता था। लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों उसका मन अपने काम में कुछ लगने लगा। नाग-पंचमी के अवसर पर उसने छुट्टी लेने के लिए कोशिश की लेकिन किसी भी हालत में उसे एक हफ्ते से ज्यादा की छुट्टी न मिल सकी। इतनी कम छुट्टी लेकर घर जाना भी उसने बेकार समझा। और, उस छुट्टी के न लेने से दो महीने बाद उसे कम-से-कम पन्द्रह दिनों की छुट्टी मिल जाने की पूरी सम्भावना थी। उसने क्वार के अन्तिम दिनों में फिर अपने घर लौटने का निश्चय किया। वहाँ जाने से वह अपनी गृहस्थी और खेती का काम भी करा सकता था। खरीफ की फसल की कटाई और रबी की फसल की बोआई खतम करके फिर वह पाँच-छः महीने के लिए निश्चिन्त भी रह सकता था।

क्वार के अन्तिम दिनों में पूरन नन्दगाँव लौटा। इन्हीं दिनों पिछले साल भी वह अपने गाँव लौटा था। एक ही वर्ष में उसके जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया था। एक वर्ष पहले वह केवल एक सिपाही था, लेकिन अब वह एक गृहस्थ भी था। उसके खेतों में लहलहाती हुई उसकी जवान फसल थी और उसके घर में चाँद को मात करने वाली वफादार पत्नी थी। गाँव पहुँचने के पहले पूरन अपने मन में कौशल्या को मनाने के लिए कितने ही तरीके सोच रहा था, क्योंकि वह जानता था कि वह इस बार बुरी तरह रूठी होगी। कौशल्या के लिए कुछ नई साड़ियाँ, सोने का एक टीका, और साबुन, तेल-जैसे छोटे-मोटे अनेक सामान वह ले आया था।

घर पर पहुँचने पर कौशल्या को पहले जैसी ही स्वस्थ देखकर पूरन को बहुत खुशी हुई। वह उससे रूठी जरूर थी, लेकिन पूरन ने उसे अपनी मजबूरियों को बताकर, अपनी जिन्दगी के अगले इरादों को सुनाकर उसको मना लिया।

खरीफ की फसल तैयार हो चुकी थी। जुन्हार पहले ही कट चुकी थी। तिल, सावाँ और कोदो कट रहे थे। धान के खेतों की भी चुट-फुट कटाई शुरू हो गई थी। रात में आकाश साफ रहता था, दिन में छोटे-छोटे बादलों के टुकड़े दिखाई पड़ते थे और कड़ाके की धूप होती थी। शाम को अक्सर बड़े जोर की उमस बढ़ती थी और कभी-कभी हलकी बारिश भी हो जाती थी। घर पहुँचते ही पूरन अपने धान के खेतों को देख आया था। उनके अच्छी तरह पक जाने में चार-छः दिनों की देर थी। उसके घर में लाल, पीले और सफेद रंग के दानों वाली जुन्हार के कई झोंपे शहतीरों पर लटक रहे थे। कौशल्या ने एक-एक रंग की बालियों को अलग-अलग बाँधकर टाँगा था। आँगन में लटकती लकड़ी की मेहरावदार छल्लियों पर मुट्ठी-मुट्ठी भर धान की बालों को एक में गाँछकर उसने घर की चिड़ियों के लिए लटकाया था। दरवाजे के टोंटे और लकड़ी के खम्भे तेल लगाकर सुन्दर और चमकदार बना दिए गए थे। सफेद पुतनी मिट्टी से लिपी-पुती दीवारें, कौशल्या की सुरुचि का परिचय दे रही थीं। अपने घर को इतना साफ-सुथरा देखकर पूरन मन-ही-मन कौशल्या की सराहना कर रहा था। एक दिन उससे कहा भी—"कौशल्या! मेरे इस पुराने घर को तो तूने नई दूल्हन बना दिया है। ईश्वर ने चाहा तो साल-दो साल में इस घर को पक्का बनवा कर ही छोड़ूँगा।"

पूरन एक किसान का लड़का था। उसके सामने सुखी जीवन की जो तस्वीर थी, उस पर भी गाँव का ही रंग चढ़ा हुआ था। उसके अचेतन की इस तस्वीर में कुछ खेत थे, बैल और गाएँ थीं, एक भोली और ईमानदार पत्नी थी, घर को अपनी किलकारियों से गुलजाने वाला एक बालक था। अब तक का उसका जीवन सख्त और रूखा था।

हिम्मत के साथ आगे बढ़ने का, उसे अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार उचित पुरस्कार भी मिल गया था। और कौशल्या को पाकर उसके इस सुखी जीवन की रूप-रेखा तैयार होने लगी थी। उसकी अस्पष्ट और झिलमिल कल्पना साकार होने लगी थी। उस जैसी खूब-सूरत और गुणवती पत्नी पाकर वह अपने को बहुत किस्मतवर समझने लगा था। कानपुर में अपनी नौकरी के विषय में जो उसके पहले के इरादे थे, उन्हें वह बदल देने की बात सोचता था। उस परी का दामन थामे हुए अपने पुरखों के हरे, श्यामल खेतों में जिन्दगी के बाकी दिन गुजार देने का विचार उसे विभोर कर देता था। नौकरी की जो रातें और दिन बीतते ही न थे, वे उसे कौशल्या के साथ रहकर छोटे लगते थे।

जिस दिन धान कटने वाला था उस दिन पूरन के साथ कौशल्या भी खेत में गई। रमेसर और अपने पति के साथ उसने भी दोपहर तक खेत में काम किया। दोपहर को भोजन बनाने के लिए वह पूरन और रमेसर से कुछ देर पहले ही घर चली आई। शाम को पूरन ने उसे खेत में नहीं जाने दिया। वैसे सुबह भी पूरन उसे रोक रहा था, लेकिन उसके जिद करने पर अपने साथ चलने की अनुमति उसने दे दी थी। अँधेरा होते-होते पूरन और रमेसर फसल को खलिहान में रखकर घर लौटे। उस समय कौशल्या ने भोजन तैयार कर लिया था। पूरन और रमेसर के लिए वह खाँड़ का रस बनाकर ले आई। रस पीकर पूरन आँगन में खाट पर लेट गया और रमेसर बैलों के लिए नाँदों में डालने चला गया। कौशल्या ने पूरन के पास आकर कहा—"आज न जाने क्यों मेरा जी मिचल रहा है। दिन भर बड़ी उमस रही। मैं जरा नहाने जा रही हूँ; अभी आ जाऊँगी।"

"मैंने तो तुम्हें पहले ही मना किया था कि खेत में न जाओ, लेकिन तुम मानो तब न! सिर तो मेरा दर्द करने लगा, धूप कितनी तेज थी आज!"

"नहीं जी, मैं इतनी सुकुमार नहीं, जो जरा-सी धूप लगने से मुर्झा

जाऊँ। आज इसी उमस की वजह से पसीना बहुत छूट रहा है। कहो तो, तुम्हारे सिर में तेल की मालिश करके जाऊँ ?"

"नहीं, तुम जाकर स्नान कर आवो। देखो, अँधेरा बढ़ता ही जा रहा है।"

कौशल्या ने अपने कमरे से एक तकिया लाकर पूरन के सिरहाने रख दिया और वह धोती लेकर जनाना घाट की ओर चली।

करीब आधे घन्टे तक पूरन आँगन में लेटा रहा। उसके बाद वह उठकर दरवाजे पर आया। रमेसर बैलों को नाँद पर लगाकर मैदान में खाट बिछाकर बैठा हुआ था। पूरन थोड़ी देर तक दरवाजे पर टहलता रहा और उससे इधर-उधर की बातें करता रहा। हवा बिलकुल बन्द थी और पसीने से उसकी देह भी चिपचिपी-सी हो रही थी। अब की बार जब से वह गाँव आया, तब से कभी नदी की ओर न जा सका था। कौशल्या के न रहने के कारण उसकी तबीयत घर में नहीं लग रही थी। पक्के घाट और सड़क तक घूमकर तथा गुलजार-टोले से पान खाकर लौट आने के लिए वह रमेसर को दरवाजे पर रहने के लिए कहकर, नदी की ओर चला। रास्ते में उसे कौशल्या मिली। वह तेज चाल से घर की ओर लौट रही थी। उससे थोड़ी देर में लौटने के लिए कहकर पूरन रेशम-टोले के बाहर वाले रास्ते से नदी की ओर बढ़ा।

बादलों की वजह से धुँधली चाँदनी में भी नदी की तलहटी कास के फूलों से बहुत ही मनोरम लग रही थी। हवा यद्यपि बिलकुल नहीं चल रही थी, फिर भी नदी के किनारे का खुला हुआ वातावरण काफी शान्तिदायक था। पूरन टहलता हुआ पक्के घाट की ओर जा रहा था। उसके दिल में एक मस्ती थी। वह बिलकुल निश्चिन्त था। जब वह घाट के करीब पहुँचा, तो वहाँ एक और आदमी को उसने टहलते हुए देखा। लेकिन जब पूरन सीढ़ियों पर आकर खड़ा हुआ, तो वह आदमी वहाँ से सड़क की ओर चला गया। थोड़ी देर तक पक्के घाट पर घूमकर वह भी गुलजार-टोले में आ पहुँचा।

पान की दूकान पर पूरन को रामानन्द मिला। पूरन से वह कई बार मिल चुका था। दोनों, बचपन के लँगोटिया दोस्त थे। जब भी मिलते, कुछ देर तक बहुत ही घुल-मिल कर बातें करते थे। माधव के यहाँ से पान लेकर दोनों घमंडी साह की दूकान पर जा बैठे। पूरन ने अपने पास से सिगरेट निकाल कर रामानन्द को दिया। घमंडी साह और बेचू भी आकर उन दोनों के पास बैठ गए। काफी देर तक लोग बातचीत करते रहे। रामानन्द से पूरन को पता चला कि थोड़ी देर पहले वही पक्के घाट पर खड़ा था और उस समय वह अपने नन्दगाँव वाले खेतों में से नील गाय भगाने आया था।

घमंडी साह की पतोहू रूठी हुई थी। उसने अपने घर में असहयोग ठान दिया था। उनका लड़का आज तीन दिनों से दूकान के लिए सौदा खरीदने टाँडा गया हुआ था। उस दिन नन्दगाँव में एक शाकद्वीपी ब्राह्मण आए हुए थे। उन्होंने कई आदमियों का केवल चेहरा देखकर उनके खानदान का पूरा ब्योरा बता दिया था। अपनी पूजा, विभूति और यन्त्रों के बल पर वे न जाने कितनी असम्भव बातें सम्भव कर देने का दावा रखते थे। घमंडी की पतोहू को कोई बच्चा नहीं था। उसने उन ब्राह्मण देवता से एक यन्त्र बनवा देने के लिए अपने ससुर से कहा। लेकिन यंत्र बनवाने का सीधा-सा मतलब था, दो वक्त पंडितजी को भोजन कराना और यथाशक्ति दो-चार रूपये उनके चरणों की सेवा में रखना। घमंडी पतोहू की बात को काट गए और दोपहर को उन्हें भोजन नसीब नहीं हुआ। पूरन और रामानन्द से उन्होंने अपना दुःखड़ा रोया। उन दोनों ने मिलकर घमंडी साह की पतोहूँ को समझाना-बुझाना शुरू किया। बहुत परिश्रम करने के बाद उन दोनों ने उसे भोजन बनाने पर राज़ी किया।

काफी रात बीत जाने पर पूरन घर लौटा। उस समय कौशल्या आँगन में पड़ी खाट पर सो गई थी। उसकी बन्द आँखों की काली बरौनियाँ बहुत सुन्दर लग रही थीं। उसके माथे पर पसीने की छोटी छोटी बूँदे झलक रही थीं, उसकी मांसल, सुडौल, तथा गोरी बाँहों में

शिथिलता थी। पूरन ने उसे जगाया। कौशल्या उठी और अलस गति से लोटे का पानी लाकर उसने अपने पति के सामने रख दिया। जब पूरन अपना पैर धोने लगा, तो कौशल्या ने पूछा—"कहाँ इतनी देर रह गए थे?"

पूरन ने कहा—"आज रेवतीपुर के रामानन्द से भेंट हो गई थी।"

कौशल्या को लगा, जैसे उसके सीने के भीतर किसी ने जोर से चुटकी काट ली हो। सहसा वह चौकन्नी-सी हो गई। पति के चेहरे के भावों का गौर से निरीक्षण करते हुए उसने एक उदासीनता से पूछा—"इतनी रात तक बातें करते रहे! कौन-सी ऐसी बातें थीं जो अब जाकर खतम हुईं?"

"कौशल्या, तुम जानतीं नहीं, वह मेरा बचपन का साथी है और मुझे आज भी वह बच्चा ही लगता है। उसके स्वभाव में कोई फरक आया ही नहीं। मैं तो इतने दिनों में बहुत बदल गया हूँ, लेकिन रामानन्द तो आज भी वैसा ही मासूम और भोला है। इतने साफ दिल का आदमी मैंने बहुत कम देखा है। कौशल्या, उसमें अपने धन का जरा भी गरूर नहीं। इतना बड़ा जमींदार होकर भी वह अकेले, इतनी रात को, अपने खेतों की रखवाली करने आया था।"

"रहने भी दो, होंगे कोई! उठो, अब रसोई एकदम ठंडी होती जा रही है।"

पूरन पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर घर आया था। इन पन्द्रह दिनों में उसने अपनी खेती का बहुत-सा काम पूरा करवा लिया था। खरीफ की फसल की दवनी करके नाज को घर में रखवा दिया था। रबी की फसल के लिए पहले ही से जुते खेतों को और भी जोतकर उसमें खूब अधिक खाद डलवा दी थी। गन्ने को चीनी के कारखाने में बिकवा देने के लिए उसने मंगल चौधरी और अपने चाचा लोचन चौधरी से कह दिया था।

जब पूरन की छुट्टी का आखीरवाँ दिन आया, तब उसे सहसा समय की गति पर आश्चर्य हुआ। आखिर पन्द्रह दिन इतनी जल्दी कैसे बीत गए ? छुट्टी का खत्म हो जाना उसे बुरी तरह से खल रहा था। लेकिन नौकरी तो उसे करनी ही थी। आगे बढ़ने के उसके बड़े-बड़े इरादे उसी पर निर्भर थे।

उस बार कौशल्या ने पूरन को रोकने के लिए पिछले बार-जैसी जिद नहीं ठानी, उसे बिदा करते समय उसकी आँखों में आँसू अवश्य छलक आए थे। नीम के नीचे तक वह उसे पहुँचाने गई थी और जब तक पूरन बहुत दूर नहीं चला गया, तब तक वह वहीं खड़ी रही। न जाने कितने बार उससे दूर जाते हुए पूरन ने घूम-घूम कर उसकी ओर देखा था। रमेसर उसका सामान लेकर उसे स्टेशन तक पहुँचाने गया था।

पन्द्रहवाँ अध्याय

जब पूरन कौशल्या के दृष्टिपथ से ओझल हो गया, तब वह बहुत उदास-सी नीम के नीचे से घर की ओर लौटी। उसके हृदय में एक तीखा विषाद समाया हुआ था। घर में आकर वह चुपचाप अपने कमरे में लेट गई। आज उसके मन में किसी तरह की खींचातानी नहीं थी, जैसी कि कुछ दिनों पहले रहा करती थी। पूरन और रामानन्द को लेकर उसके हृदय में जो एक द्वन्द मचा रहता था, उसकी स्थिति अब समाप्त हो चली थी।

रामानन्द को पहले दिन देखते ही कौशल्या के भीतर छिपी हुई एक भयंकर कमजोरी का बीज प्रकट हो गया था। जब तक वह अंकुरित न हो पाया था, तब तक ही उसके भीतर उथल-पुथल मची रहती थी। लेकिन उसकी वह कमजोरी अब बहुत बढ़ चुकी थी, वह परवश थी। एक बहुत ही सशक्त आकर्षण उसे वेग से अपनी ओर खींचता जा रहा था और तब उसे अपनी दुर्बलता का अनुभव होता था। पूरन के चले जाने के बाद उसके अन्तर में से कोई उसे धिक्कार रहा था: "कौशल्या तुमने कितना बड़ा विश्वासघात किया है! पूरन जैसे निश्छल आदमी से ऐसा धोखा!

भोजन करने की उसे बिलकुल इच्छा न थी। अवसाद से खिन्न होकर सोचते-सोचते उसे नींद आ गई। लेकिन उसकी वेदना कम न हुई। जागते समय उसका विषाद अमूर्त था, सो जाने पर उसकी तस्वीर बन गई। उस तस्वीर में उसने देखा:

नन्दगाँव की पंचायत लगी हुई है। उसके पिता त्रिबेनी महतो, दुर्बल चौधरी, लोचन चौधरी और मंगल चौधरी-आदि कितने ही लोग उस पंचायत में बैठे हुए हैं। पंचायत के सामने पूरन और रामानन्द भी

खड़े हैं। रामानन्द की आँखें नीचे झुकी हुई हैं और पूरन पंचों की ओर देख रहा है। कौशल्या के दोनों हाथ एक खम्भे में बँधे हुए हैं।

पंचायत की आज्ञा से त्रिबेनी महतो उठकर कौशल्या के बन्धन खोल देते हैं और उससे पंचायत के सामने खड़े दोनों जवानों में से किसी एक को वरण कर लेने की आज्ञा देते हैं। कौशल्या जाकर रामानन्द का हाथ पकड़ लेती है। पंचायत खत्म हो जाती है। चारों ओर से कौशल्या पर बौछारें पड़ने लगती हैं। कोई उसे कलंकिनी कहता है, कोई उसे नागिन कहता है, कोई कुटला कहकर उसके मुँह पर थूकता है और कोई उसे जन्म-जन्मान्तर रौरव नरक में पड़ने की धमकियाँ देता है। लेकिन पूरन के मुख से एक शब्द भी नहीं निकलता। वह फूट-फूट कर रोने लगता है। लोग और भी उत्तेजित होते हैं। 'इस डायन की गरदन काट लो! इसे नदी में डुबो दो! इसने हमारा धर्म बिगाड़ दिया। इसने हमारी नाक काट ली!' आदि आवाजें आने लगती हैं।

कौशल्या के कानों में वे आवाजें शलाखों की भाँति चुभने लगती हैं। वह नदी की ओर भागती है। कगार पर पहुँचकर कौशल्या आमी की भयंकर लहरों में कूद पड़ती है और तब उसे अपने पीछे दौड़ता हुआ रामानन्द आता दिखाई पड़ता है। लहरों के प्रवाह में कौशल्या-डूबने उतराने लगती है। बीच-बीच में उसे रामानन्द की आवाज सुनाई पड़ जाती है। लेकिन मीलों तक बहता हुआ तेज धारा का प्रवाह उसे अथाह गइराई के नीचे लिए जा रहा है। वह हाथ-पैर मारती है, लेकिन उसका कोई वश नहीं चलता।

स्वप्न की उद्विग्नता से कौशल्या की नींद टूट गई। चौंक कर जब वह उठी, तब उसे अपने स्वप्न पर बेहद आश्चर्य हुआ। उसकी साड़ी पसीने से भींग गई थी। कमरे से निकलकर उसने देखा, तो आँगन की धूप मुंडेर पर थोड़ी-सी चमक रही थी। चारागाह से लौटती हुई गायों और भैंसों की आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। हवा का एक हलका झोंका कौशल्या के शरीर में लगा। उसने कुछ शान्ति का अनुभव किया। वह थोड़ी देर के लिए आँगन में बैठ गई। रमेसर रात में लौटने

वाला था। बैलों को आज उसे ही नाँद पर लगाना था। आँगन की ठंड़ी हवा से जब उसके शरीर का पसीना सूख गया, तब उसने अपने को कुछ स्वस्थ महसूस किया। अब उसे प्यास भी मालूम हो रही थी। पानी पीकर वह बाहर आई। रमेसर नदी से पानी भर कर गया था। सानी-भूसा डाल कर उसने बैलों को नाँद पर लगा दिया।

जब कौशल्या बैलों के लिए दुबारा चोकर और खली लेकर घर में से निकली, तो उसने देखा कि नीम के नीचे रामानन्द खड़ा है। उसके चेहरे पर सदा रहने वाली आकर्षक सरलता और चाँद-सा सादापन विद्यमान था। उसे देखते ही कौशल्या के रग-रग में उल्लास दौड़ गया। उसके अलसाए हुए पाँवों में एक स्फूर्ति आ गई। उसे लगा, जैसे कब की खोई हुई निधि फिर मिल गई। गोधूलि धीरे-धीरे रात्रि में बदल रही थी। कौशल्या के हृदय में एक उचाट बढ़ती जा रही थी। थोड़ी रात बीतने पर उसने बैलों को नाँद से हटा दिया। अपनी धोती लेकर वह जनाना घाट की ओर स्नान करने चली।

कातिक अपना गुलाबी जाड़ा लेकर आया और चला गया। अगहन में धरती ने हरे परिधान से अपना शृङ्गार किया। पूस में मटर के नीले, लाल और सफेद फूलों पर प्रकृति ने ओस-कणों के मोती सजाया। माघ में सरसों अपने पीले-पीले फूलों पर इतरा उठी। इस अवधि में कौशल्या के पास पूरन के कई पत्र आए, मरजादपुर से सौगातें आईं, उसके पिता, त्रिबेनी महतो स्वयं उससे कई बार मिलने आए। माघ की चौथ के अवसर पर उसकी माँ ने उसके लिए, तिल के लड्डू, टाँडे की मशहूर मिठाइयाँ, हरे जड़हन का चूड़ा आदि ढेर सी चीजें, जो मैके में कौशल्या को पसन्द थीं, भेजीं।

रमेसर मरजादपुर जाने के लिए कई बार कौशल्या से कह चुका था। लेकिन गृहस्थी का एक न एक काम हरदम लगा ही रहता था, इसलिए उसे छुट्टी न मिल पाती थी। माघ में गन्ने बिक गए थे और रबी फसल की सिंचाई भी हो गई थी। लगभग एक महीने के लिए अब खेती का कोई विशेष काम नहीं था। कौशल्या अच्छी तरह जानती

थी कि रमेसर मनमौजी आदमी है। जब भी उसे धुन सवार हो जायगी, तभी वह चल देगा। इसलिए कौशल्या ने उसे मरजादपुर जाने की अनुमति दे देना ही उचित समझा। एक काम भी था। कौशल्या की माँ ने उसके लिए एक घड़ा अचार और एक घड़ा सिरका रक्खा था, जो अभी तक रमेसर के मरजादपुर जाने की इन्तजारी में ही वहाँ पड़ा हुआ था। तो, कौशल्या ने अपने रमेसर काका को नहारी-दुपहरिया से लैस करके मरजादपुर जाने के लिए तैयार कर दिया। चार-छः दिन रह कर लौट आने का वादा करके रमेसर ने मरजादपुर के लिए प्रस्थान किया।

अँधेरी रात थी। कलेजे को भी कँपा देने वाली ठंढक थी। शीत जैसे अँधेरे की कालिमा में साकार हो उठी थी। रजनी स्वयं कृष्णाभिसारिका बनी हुई थी। परिधान उसने जरूर काला पहन लिया था, लेकिन अपने कीमती रत्नाभूषणों को वह कहाँ छिपाए? तारों के मिस वे चमक ही उठते थे। आधी रात बीत चुकी थी। नन्दगाँव के क्षितिज में कुहरे की एक धुँधली चादर तन रही थी। सीवान से कभी-कभी लोमड़ी की आवाज सुनाई पड़ जाती थी। रात अपनी खामोशी में रहस्यमय बन गई थी। रेशम-टोले के बाहर वाले रास्ते पर एक छाया कुरमियाने टोले की ओर बढ़ी चली आ रही थी। नीम के नीचे से होकर वह पूरन के दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। उस समय किवाड़ की दराजों से भीतर की रोशनी की क्षीण रेखाएँ बाहर आ रही थीं। दरवाजे पर हाथ के नाखूनों की चोट से खट-खट आवाज हुई। भीतर से कौशल्या ने दरवाजा खोल दिया।

"तुम्हारे हाथ कितने ठंडे हो गए हैं। चलो, मैं आग जला दूँ, अपने हाथ-पैर तो सेंक डालो।" रामानन्द की ठंढी हथेलियों को अपने हाथों में दबाते हुए कौशल्या ने कहा और दरवाजे को अन्दर से बन्द करके वह उसके साथ घर के भीतर चली गई।

कमरे में पहुँचकर कौशल्या ने आग जलाई। हाथ सेंकते हुए

रामानन्द बोला—"क्या तुम जानती हो कौशल्या, कि कल रात को यहाँ से जाने के बाद मैंने क्या किया ?"

"नहीं।" उसके चेहरे को एक अजीब भोलेपन से देखते हुए कौशल्या ने कहा।

"आज टाँडे के बाजार का दिन था न ? कल रात को ही घोड़े से मैं वहाँ गया था और आज दिन डूबते-डूबते लौट भी आया। तुम्हारे लिए मैं बहुत अच्छी चीज ले आया हूँ। दिखाऊँ ?"

रामानन्द ने अपने शाल के नीचे से दो छोटे-छोटे मखमली कवर वाले डिब्बों को निकाला और दोनों को खोलकर उसने कौशल्या के सामने रख दिया। उसने देखा तो, एक डिब्बे में बारीक नगीनों से जड़ित एक सोने की अँगूठी थी और दूसरे डिब्बे में आभा से दमकता हुआ एक सोने का हार था।

"मुझे ये चीजें नहीं चाहिए। क्या मेरा प्रेम तुम्हें इतना हलका मालूम पड़ता है कि हर महीने कोई-न-कोई कीमती जेवर देकर उसे वजनी बनाना पड़े ?"

"तुम्हारी बात तो मैं नहीं जानता कौशल्या। पर, इन चीजों को तुम्हें देकर मुझे बेहद खुशी होती है।"

"लेकिन मेरे किस काम आएँगी ये ? मैं इन्हें सबके सामने पहन भी तो नहीं सकती।"

"मेरे सामने तो पहन सकती हो ?"

रामानन्द ने कौशल्या के बाएँ हाथ को अपने हाथों में लेकर उसकी अनामिका में अँगूठी पहना दी और उसकी गोरी गोल बाँहों को पकड़कर उठाते हुए कहा—"अब मैं तुम्हें इस हार को पहने हुए देखना चाहता हूँ।"

"लेकिन एक शर्त है।"

"कहो, कौन-सी शर्त है ?"

"मेरे पहनने के बाद तुम्हें इस हार और अँगूठी को अपने साथ लौटा ले जाना होगा।"

"खैर, अभी तो तुम इसे पहनो।"

कौशल्या की पलकें झुक पड़ीं। होठों की मुस्कराहट से कपोलों पर दो बर्तुल रेखाएँ उभर आईं। उसके वक्ष-देश की आभा से स्वर्ण-हार जगमगा उठा। रामानन्द की भुजाओं में आलिंगन की मादक स्पृहा बलवती हो उठी। उसके होठों में चञ्चलता आ गई और वह..... लेकिन.....यह क्या? कौशल्या की आँखों में आँसू!

"तुम रो रही हो कौशल्या! क्या हो गया तुम्हें?" विकल होकर रामानन्द ने पूछा।

"मैं रो नहीं रही हूँ। ये मेरे खुशी के आँसू हैं।"

"नहीं, मैं नहीं मान सकता। तुम मुझसे कुछ छिपा रही हो।"

"तुमसे छिपाने के लिए मेरे पास बचा ही क्या है?"

"तब फिर ये आँसू क्यों?"

"मेरे राजा! इस अँधेरे में तुम्हें पाकर मैं धरती पर ही स्वर्ग रचाती हूँ। कहीं मेरे इस सुख को देखकर ऊपर के स्वर्ग को ईर्ष्या न हो जाय। प्रेम के इस आनन्दातिरेक से मुझे भय होने लगता है। कहीं तुमको कोई मुझसे छीन न ले।"

"तो आज मुझे मालूम हुआ कि तुम मुझसे भी बावली हो। आखिर तुम इतनी दूर की बात क्यों सोचती हो? विश्वास रक्खो कौशल्या! ईश्वर भी मुझे तुमसे अलग नहीं कर सकता।"

"मुझे विश्वास है, पूरा विश्वास है।"

❀ ❀ ❀

पूरे माघ भर रमेसर मरजादपुर रहा। फागुन के दो दिन बीत गए, फिर भी वह नहीं आया। कुछ दिन पहले पूरन का पत्र आया था। उसमें उसने आधे फागुन में आने को लिखा था। किन्तु कौशल्या के आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा। जब वह फागुन में तीन दिन बीतने पर ही अचानक एक दिन सुबह को अपने घर आ पहुँचा। उस समय कौशल्या अपने दरवाजे पर खड़ी सामने से निकलते हुए सूरज की किरणों को देख रही थी। एकाएक पूरन को सामने

पाकर आशंका, घबड़ाहट और भय से उसका शरीर काँप उठा। उसने सर झुकाकर पूरन के हाथ की अटैची को ले लिया। आगे-आगे पूरन और पीछे-पीछे कौशल्या ने अपने कमरे में प्रवेश किया। वहाँ बिछे हुए पलंग पर पूरन बैठ गया। कौशल्या ने अटैची को एक किनारे रख दिया। वह पूरन के सामने थी, लेकिन उससे आँख न मिला पाती थी। किसी कसूरवर मुलजिम की तरह वह सर नीचा किए हुए उसके सामने खड़ी थी। उसकी समझ में ही न आ रहा था कि वह अपने पति से क्या बात करे? कैसे उसके सामने खड़ी रहे? कौशल्या के हाथों को अपने हाथों में लेकर पूरन ने मुस्कराते हुए कहा—"अबकी तो तुम खुश हो न? देखो, मैं अपने वादे से पहले ही चला आया। अब मैं होली मनाकर जाऊँगा। मुझे एक महीने की छुट्टी मिली है, कौशल्या!"

"हाँ, अबकी मैं बहुत खुश हूँ। अबकी पूरे चार महीने बाद तुम लौटे हो।" कौशल्या ने काँपते हुए स्वर में कहा।

"कौशल्या, क्या तुम जानती नहीं? अब मेरी तरक्की बहुत जल्द हो जायगी। अभी पिछले महीने कानपुर में लाट साहब आए थे। मेरे काम से वे बहुत खुश हुए हैं। लोग कहते हैं कि अब मैं अपनी कम्पनी का नायब कमान्डर बना दिया जाऊँगा। तब जानती हो कि मैं क्या-क्या करूँगा? .....मैं इस घर को पक्का बनवा दूँगा और सोने के हार, कीमती अँगूठी तथा सभी तरह के जेवरातों से तुम्हें लाद दूँगा।"

कौशल्या के सिर में एक तूफान उठने लगा। उसे पूरन की बातें असह्य हो गईं। उसकी बातों को अनसुनी करती हुई पानी लाने का बहाना करके वह कमरे के बाहर चली आई। उसके अन्तर में से कोई फिर बोल रहा था—"ऐसे निश्छल आदमी से इतना बड़ा विश्वास-घात! कौशल्या! तुमने उचित नहीं किया।"

बहुत देर तक कौशल्या आँगन और दालान में पागल-सी घूमती रही। उसे भूल गया कि वह किस काम के लिए कमरे से बाहर निकली थी। करीब पन्द्रह मिनट के बाद उसे पूरन की आवाज सुनाई पड़ी।

वह उसे बुला रहा था। उस समय एकाएक कौशल्या को पानी की सुध आई। जल्दी-जल्दी लोटा साफ करके, पानी लेकर वह कमरे में गई।

कमरे में प्रवेश करते ही कौशल्या ने देखा कि पूरन अपने हाथों में सोने का हार लिए हुए बड़े गौर से देख रहा है। वही हार, जिसे रामानन्द ने कौशल्या को दिया था। वह उसे रात को ही पहनती थी। दिन में वह उस हार को सन्दूक में रख देती थी। लेकिन आज सबेरे उठकर वह ज्यों ही दरवाजे पर गई, उसके कुछ ही मिनटों बाद पूरन उसके सामने आ खड़ा हुआ था। सोने का हार तकिए के नीचे ही पड़ा रह गया था। कौशल्या के मन में यह समस्या तभी से चक्कर काट रही थी, जिस समय पूरन उसके साथ घर में प्रवेश कर रहा था। उस हार के विषय में यदि पूरन ने कुछ पूछा तो वह क्या उत्तर देगी? इस पूरन का उचित समाधान पाने का भी वह भरसक प्रयत्न कर रही थी। किन्तु किसी भी सन्तोषजनक अन्तिम निर्णय पर वह न पहुँच पाती थी। पूरन ने उससे पूछा—"यह सोने का हार किसका है, कौशल्या?"

अचानक, कौशल्या के मुख से निकल गया—"इसे मेरे बापू ने बनवा कर दिया है। अभी एक महीने पहले वे मुझसे भेंट करने आए थे।"

"बहुत सुन्दर हार है, कौशल्या। जो मुझे करना था, वह काम महतो ने ही कर दिया। वाह! कितना बड़ा किस्मतवर हूँ मैं!" कहते हुए पूरन बच्चों के समान हँसने लगा।

उसकी हँसी कमरे में गूँजकर कौशल्या के लिए धधकती हुई लपटों से भी भयानक हो रही थी। उसकी निगाह घूम फिरकर तीन जले हुए सिगरेट के टुकड़ों पर बार-बार पड़ जाती थी, जिन्हें रामानन्द ने रात में पीकर पलंग के पैताने की ओर फेंक दिया था। कौशल्या के माथे पर पसीने की बूँदे उभर आईं और उसके शरीर से कँपकँपी छूट रही थी।

यदि उन सिगरेट के टुकड़ों पर पूरन की निगाह पड़ी और उसने कुछ पूछा तो ? कौशल्या के सामने यह प्रश्न किसी भयंकर दैत्य के समान आकर खड़ा हो जाता था। उसके एक-एक मिनट वर्षों से जा रहे थे। उसकी विक्षिप्त भावनाएँ उसके चेहरे पर जलती हुई रेखाओं के रूप में उभरी पड़ती थीं। उसे लग रहा था, जैसे उसकी नसों में कोई बहुत ही विषैला कीट तेजी से रेंग रहा हो। अन्त में उसने हिम्मत बाँधी। पूरन का हाथ पकड़कर उठाती हुई वह बोली—"उठो, रात भर गाड़ी में जागे होगे। अब दातून वगैरह कर डालो, तब फिर आकर आराम करना।"

पूरन पलंग से उठा। कमरे से बाहर जाते-जाते उसकी दृष्टि पलंग के पैताने में गिरे हुए तीन सिगरेट के टुकड़ों पर पड़ी। उसके मन पर एक धक्का-सा लगा और वह दरवाजे पर खड़ा हो गया। तभी बाहर से किसी ने पूरन का नाम लेकर पुकारा। कौशल्या ने आगे बढ़कर दालान में जाकर कहा—"जावो; दरवाजे पर चाचा कब के खड़े हैं।"

पूरन ने पहले बार कौशल्या के चेहरे को गौर से देखा। उसकी आवाज, उसकी मुद्रा, उसकी चाल, उसके चेहरे के भाव, सब में एक घबड़ाहट थी, जिसमें उसके दोषी होने के चिह्न मौजूद थे। पूरन बाहर चला गया। अभी तक कौशल्या जैसे अथाह जल की गहराई में डूब-उतरा रही थी। पूरन के चले जाने पर उसे लगा, जैसे उसे किसी ने पानी के बाहर निकालकर उबार लिया हो। क्योंकि उसकी चेतना में अब भी हलचल थी फिर भी उसकी घुटन कम हो रही थी।

थोड़ी देर बाद कौशल्या ने दरवाजे से झाँककर बाहर देखा। पूरन और उसके चाचा लोचन चौधरी दरवाजे के बाहर खड़े-खड़े आपस में बातचीत कर रहे थे। कौशल्या अब कुछ आश्वस्त हुई। वह फिर तेज कदमों से अपने कमरे में लौटी। उसने एक सशंक दृष्टि से दरवाजे की ओर देखा और उन सिगरेट के जले हुए तीनों टुकड़ों

को खिड़की से बाहर फेंक दिया। उसके बाद वह कमरे को साफ करने लगी।

चाचा के साथ बातचीत करता हुआ पूरन आमी के किनारे तक चला गया। वहाँ से नित्य-क्रिया—दातून, कुल्ला-आदि करके वह थोड़ा दिन चढ़ते-चढ़ते घर लौटा। अपने कमरे में गिरे हुए सिगरेट के टुकड़े तब भी उसके मन में एक प्रश्न बने हुए थे। जब उसने घर में प्रवेश किया, तब कौशल्या चौके में थी। तुरन्त ही स्नान करके सफेद साड़ी में वह बहुत सुन्दर जँच रही थी। पूरन ने देखा, इस बार कौशल्या सूखी और मुर्झाई हुई नहीं थी। उसका गोरा रंग-निखरकर बड़ा मादक बन गया था और शरीर के अंग-प्रत्यंग में एक आकर्षक चिकनाई आ गई थी। उसकी आँखों में सहज संकोच और लज्जा की जगह एक बहुत ही तीखा विलास था।

पूरन पहले अपने कमरे में गया और वहाँ सिगरेट के टुकड़ों को न पाकर उसे आश्चर्य हुआ। स्थिर जल में जैसे एक छोटी-सी कंकड़ी गिर पड़ी हो और उसकी सतह पर हलकी-हलकी लहरें उठने लगी हों, कुछ-कुछ वैसी ही स्थिति पूरन के मन की थी। जिस समय वह अपने कमरे से बाहर गया था, उस समय की घबड़ाहट, जल्दबाजी तथा कौशल्या के परेशान चेहरे के भाव उसकी चेतना में फिर चित्रित हो उठे। उस समय कौशल्या उसके लिए दूध गरम करके ला रही थी। आँगन में उतरकर पूरन ने उसके हाथ से दूध का गिलास ले लिया। तभी उसके मन में आया कि वह कौशल्या से उन सिगरेट के टुकड़ों के विषय में पूछे। लेकिन सहसा एक अज्ञात भय से उसकी जबान रुक गई। वह कौशल्या को इतना अधिक प्यार करता था कि उसकी भावनाएँ बरबस कई सम्भावनाओं पर जाने लगीं, जिनके विषय में सोचने तक की हिम्मत उसमें नहीं थी। दूध पीकर आँगन में वह एक खाट पर बैठा और कौशल्या से बहुत देर तक बातें करता रहा।

रबी की फसल पककर तैयार हो चुकी थी। महाशिवरात्रि का मेला समाप्त हो जाने पर लोग कटाई शुरू करने वाले थे। धूमधाम के साथ

महाशिवरात्रि का मेला आया। घर-घर में खुशियाँ, मिठाइयाँ, खिलौने और नई-नई चीजें आ गईं। हर तरफ एक नई उमंग और उत्साह छा गया। फाग तो वैसे वसन्त पञ्चमी से ही प्रारम्भ हो जाता था लेकिन नन्दगाँव के लोग जोर-शोर से फाग का गाना मेले के बाद ही शुरू करते थे। मेला खत्म हो जाने के बाद गेहूँ की कटाई और फाग के गीत जोर-शोर से प्रारम्भ हो गए।

नन्दगाँव के युवक, युवतियाँ, बाल, वृद्ध सभी खेतों की लक्ष्मी को वापस लाने के लिए अपने-अपने घरों से निकल पड़े। सीवान में जाती हुई, फसल काटती हुई, आँचल को चुस्ती से बाँधकर लदी हुई बालियों वाले बोझों को उठाती हुई, सर्प-टेढ़ी डगर पर क्षिप्रगति से चलती हुई, एक खास अंदाज से हाथों में झटका देकर बड़े-बड़े बोझों को खलिहान में फेंकती हुई और उन्मुक्त हँसी से अपने श्रम को भूलती हुई ग्राम-बधुओं तथा कुमारियों को देखकर मलय-पवन चंचल हो उठता था। आम्रमंजरियों की भीनी खुशबू तथा करबन और खरहद की मादक सुगन्धि को दोनों हाथों से लुटाता हुआ वह उनके साथ सेवक की भाँति दौड़ता-फिरता था।

एक दिन पूरन, थोड़ी रात बीते अपने खेत से लौट रहा था। उस समय आकाश से फागुन का चाँद धरती पर दूध उँडेल रहा था। आमी के उस पार से वन के फूलों की खुशबू लिए हुए मन्द हवा दिल को छू लेती थी। पूरन बड़े-बड़े सरपत के जुटों के किनारे से चलता हुआ अपने खलिहान को लौट रहा था। सहसा उसने जुटों की आड़ में किसी को कौशल्या का नाम लेकर बातचीत करते हुए सुना। वह वहीं खड़ा हो गया। सरपतों की आड़ में बातचीत चल रही थी—

"तो तुमने कब देखा?"

"शिवरात्रि के दिन थोड़ी रात बीते। जनानाघाट के भीतर से दोनों साथ निकले। टूटे हुए मन्दिर के पास पहुँचकर रामानन्द पक्के घाट की ओर मुड़े और कौशल्या भाभी रेशम-टोले के बाहर वाले निचले रास्ते से हौले-हौले घर की ओर चलने लगीं।"

पूरन की सारी चेतना उसके कानों में सिमट आई। उन दोनों की बातें अभी चल रही थीं।

"आज से चार महीने पहले की बात मैं तुमसे बताऊँ? सच कहता हूँ, अभी तक मैंने इस बात को किसी से नहीं कहा था। करीब आधी रात को मैंने उन दोनों को आमी के पक्के घाट के नीचे नाव पर से उतरते देखा था। शाम को मैं खेत में अपनी बरारी भूल गया था। घर जाने पर दादा लगे भुनभुनाने। बस, खाना खाकर मैं बरारी लेने खेत की ओर चल पड़ा। उसी को लेकर उस समय मैं पक्के घाट से होकर आ रहा था।"

"तो, तुमने रात को उन्हें पहचाना कैसे?"

"रात तो चाँदनी थी, लेकिन फिर भी मैं पहले उन दोनों को न पहचान सका। भगवान् कसम, उस समय तो मेरा शरीर काँपने लगा था। मुझे डर था कि कहीं वे कोई देवी-देवता न हों। मारे भय के मैं पीपल की आड़ में बैठ गया। लेकिन वे दोनों फिर जनाना घाट वाले निचले रास्ते से अपने टोले की ओर बढ़ने लगे। उस समय चाल से मैंने कौशल्या भाभी को कुछ-कुछ पहचान लिया था, फिर भी मेरी हिम्मत आगे बढ़ने की नहीं हो रही थी।"

"तो तुम रात भर वहीं पीपल के नीचे दुबके रहे?"

"अरे, सुनो तो भी। जब वे दोनों रेशम टोले के किनारे पहुँच गए, तब मैं भी उसी रास्ते से उनके पीछे-पीछे चला। मैंने अपनी आँखों से देखा, रामानन्द नीम के नीचे तक कौशल्या भाभी के साथ रहे। जब तक वह अपने घर में नहीं चली गई, तब तक रामानन्द उसी जगह खड़े रहे। नीम के नीचे से घूमकर जब वे लौटने लगे, तो मैं सरपतों की आड़ में हो गया। मैंने खूब अच्छी तरह उन्हें पहचान लिया था।"

पूरन ने आवाज को पहचाना। उसके दो चचेरे भाई अपने खेत में कटी हुई फसल की रखवाली कर रहे थे। उन दोनों की बातें आगे भी होती रहीं, लेकिन पूरन ने जितना सुना, उतना ही काफी ज्यादा था, बर्दाश्त के बाहर था।

उस समय उन बातों को सुनकर पूरन को कैसा लगा, उसे कागज पर उतारने के पहले मेरी भावनाएँ शतमुखी होकर बिखरने लगती हैं। मैं कलम को मेज पर रख देता हूँ, सिर थाम लेता हूँ, कमरे में टहलने लगता हूँ और फिर लिखने के लिए बैठता हूँ। परन्तु पूरन की पीड़ा को जोरदार शब्दों में व्यक्त करना मेरे लिए दुष्कर हो जाता है।

पूरन सीधे घर पहुँचा और दरवाजे पर रक्खी हुई एक खाट पर लेट गया। काफी रात तक वहीं लेटा रहा। कौशल्या उसे भोजन करने के लिए कई बार बुलाने आई, लेकिन हर बार उसने टाल दिया। जब आधी रात बीतने के निकट आई, तो कौशल्या उसका हाथ पकड़कर उठाने लगी। और समय, उसकी जिद से पूरन को एक गुदगुदी का अनुभव होने लगता था, किन्तु उस समय उसे रोना आ रहा था। उससे उसने तबीयत खराब होने का बहाना किया और वहीं लेटा रहा तब कौशल्या घर में से तेल लाकर उसका सर दबाने लगी, लेकिन उसका स्पर्श पूरन को असह्य हो गया। कुछ रूखे शब्दों में उसने उसे वहाँ से हट जाने को कहा।

कई दिन तक पूरन बीमार-सा ही बना रहा। उसकी भूख, प्यास, नींद सब गायब हो गई थी। रह-रहकर वह चौंक उठता था। बीती हुई कई घटनाएँ बारी-बारी से उसकी स्मृति में स्पष्ट होती जा रही थीं। उसके हृदय में कौशल्या के प्रति रह-रह कर घृणा और क्रोध की आग धधकने लगती थी। वह उसका गला घोंट सकता, था उसे मारते-मारते बेदम कर सकता था, क्योंकि उस पर उसका अधिकार था, वह उसकी पत्नी थी। लेकिन यह सब कुछ उसने नहीं किया।

क्यों ?

कौशल्या में पूरन की भयंकर आसक्ति थी। यह विचार भी उसके लिए असह्य था कि कौशल्या उससे अलग हो जायगी। उसे किसी भी हालत मे वह अलग नहीं करना चाहता था। उस दीवार को वह अवश्य समाप्त कर देना चाहता था, जो उसके और कौशल्या के बीच में व्यवधान बनकर खड़ी हो गई थी। रामानन्द के प्रति उसके हृदय में हिंसा के भयंकर तूफान उमड़ रहे थे।

* * *

दो दिन बाद होली थी। नन्दगाँव में घर-घर की सफाई हो रही थी। कौशल्या भी अपने घर की सफाई में दिन भर लगी रही। पूरन उससे बहुत खिंचा-खिंचा-सा रहने लगा था। अक्सर वह सोया रहता था। भोजन करने के लिए वह नाममात्र के लिये चौके पर जाता था। वह यही कहता था कि उसकी तबीयत ठीक नहीं। और सचमुच उसे थोड़ा-थोड़ा बुखार रहने लगा था। सर भी उसका बहुधा चकराया करता था।

जिस समय कौशल्या अपने मकान की सफाई कर चुकी, उस समय सूर्यास्त होने वाला था। जब वह आँगन लीप रही थी, तो गोधूलि रात्रि की सीमा में कदम रक्खे हुए थी। कौशल्या की साड़ी में कीचड़ लगा हुआ था और उसके बालों में गर्द छाई हुई थी। पूरन कमरे में सोया हुआ था। कौशल्या ने कमरे में जाकर उसके माथे को स्पर्श किया, उसका सिर दबाने के लिए पूछा। किन्तु पूरन अपनी चादर के नीचे सर ढककर फिर सो गया। कौशल्या ने, स्नान करके थोड़ी देर बाद लौट आने के लिए पूरन से कहकर, नदी की ओर प्रस्थान किया।

कौशल्या के घर से निकलते ही पूरन भी उठकर बैठ गया। थोड़ी देर तक कुछ सोचने के बाद वह भी घर से निकल पड़ा और दरवाजे पर ताला लगा दिया। उसके बाद रेशम-टोले के बाहर वाले निचले रास्ते से होकर वह नदी की ओर चलने लगा। पेड़ों की ओट से लुक-छिप कर चलता हुआ वह जनानाघाट के दरवाजे के सामने वाले टूटे हुए मन्दिर में छिपकर बैठ गया। वहाँ से घाट के भीतर कौशल्या को स्पष्ट देख रहा था। वह एक सीढ़ी पर खड़ी होकर अपनी कंचुकी के बटन खोल रही थी। उसकी साड़ी ऊँचे वाली सीढ़ी पर रक्खी हुई थी।

कुछ ही देर बाद पक्के घाट की ओर से आकर रामानन्द ने जनाना घाट के अन्दर प्रवेश किया। उस समय कौशल्या अपने सिर के बाल साफ कर रही थी। उसकी चिकनी गोरी पीठ और मांसल बाँहें खुली हुई थीं। रामानन्द को पास आते देखकर कौशल्या झम्म...

से पानी में कूद पड़ी और उसकी मन्द हँसी घाट की ऊँची-ऊँची चारों दीवालों के भीतर गूँजने लगी।

रामानन्द कुछ देर तक सीढ़ियों पर खड़ा-खड़ा उससे बातें करता रहा। बीच-बीच में कौशल्या अपने हाथों से उस पर पानी के छींटे भी फेंक देती थी और हँस पड़ती थी। वे दोनों क्या बातचीत कर रहे थे, इसे पूरन ने नहीं सुना और कौशल्या की हँसी को सुनकर उसे कैसा लगा, इस बात को न लिख कर ही उसकी भावनाओं के साथ न्याय किया जा सकता है। करीब दस मिनट के बाद रामानन्द परेशान सा हो गया और अपनी धोती और कुर्ता पहने हुए ही वह पानी में उतरने लगा। मुश्किल से पानी में वह दो सीढ़ियाँ उतर पाया था कि कौशल्या पानी में से निकलकर उसके पास आकर खड़ी हो गई। तब उसकी बाँहों को पकड़ कर रामानन्द उसे पिछली दीवाल की ओर खींचने लगा। कौशल्या ने उसके कन्धे पर पड़ी हुई तौलिया से अपना मुँह ढक लिया। उसके भीगे केश-कलाप लहराकर रामानन्द के कंधे पर बिखर गए। कुछ शिथिल-सी कौशल्या उसके अंक में झुक पड़ी, और रामानंद उसे अपनी बाँहों में लिए हुए पिछली दीवारों के अँधेरे में चला गया।

पूरन उसी मंदिर के खँडहर में बैठा हुआ था। उसके शरीर से पसीना छूट रहा था। रह-रह कर घाट की पिछली ऊँची दीवारों के भीतर से कौशल्या और रामानंद की हँसी उसे सुनाई पड़ जाती थी। काफी देर बाद दोनों फिर पानी के किनारे आए। कौशल्या पानी में स्नान करने के लिए उतरी और रामानंद बाहर की ओर जाने लगा। जाते-जाते उसके शब्द पूरन के कानों में पड़े—"कल इसी समय जब होली जलेगी, तब मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगा।"

रामानन्द दरवाजे से निकलकर पक्के घाट की ओर चला गया। पूरन मंदिर के खँडहर से निकल कर अपने घर की ओर लौटा। उसने अपने मन में एक दृढ़ निश्चय कर लिया था। उसके भीतर का संघर्ष

उस समय एक निश्चित फैसले पर आ गया था। उसके हृदय की उथल-पुथल कुछ हद तक समाप्त हो चली थी।

घर आकर उसने अपनी सन्दूक में से एक चमचमाती कटार निकाली। उसकी मूँठ को हाथ में लेकर थोड़ी देर तक कटार की धार पर चढ़े हुए पानी का उसने गौर से निरीक्षण किया। फिर उसे म्यान में बन्द करके सन्दूक में रख दिया।

कौशल्या जब स्नान करके लौटी, तो उसने पूरन को वैसा ही सोता हुआ पाया, जैसा वह उसे छोड़कर गई थी।

दूसरे दिन, दो घड़ी रात बीतने पर होली जलाई जाने वाली थी। शाम से ही गाँव भर में एक धूम मची हुई थी। ढोल, मजीरा और पखावज बज रहे थे। सारा नन्दगाँव होली गा रहा था। लेकिन पूरन के भीतर एक भयंकर संकल्प उथल-पुथल मचा रहा था। क्षण-क्षण भर पर रामानन्द की सूरत उसके सामने आ जाती थी।

जब थोड़ी रात बीत गई, तब पूरन अपने कमरे से निकला। कटार को उसने अपनी कमर में बाँध लिया। रह-रहकर उसका हाथ उसकी मूँठ पर चला जाता था। कौशल्या उस समय चौके में थी। घर से निकलकर वह सीधे जनानाघाट पहुँचा और भीतर जाकर सीढ़ी पर बैठ गया। उस समय गाँव-गाँव में होली गाई जा रही थी। बाजों और गीतों की ध्वनि से आकाशमण्डल गूँज उठा था। थोड़ी देर बाद पूरन ने पूरब की ओर एक गाँव में जलती हुई होली की लपटों को देखा। वह उठकर खड़ा हो गया, व्यग्र होकर विषधर सर्प की भाँति फिर टहलने लगा।

रामानन्द बहुत देर से पक्के घाट पर बैठा हुआ था। पूरब दिशा में होली का जलना देखकर वह जनानाघाट की ओर चला। जब वह घाट के द्वार पर पहुँचा, तब पूरन पिछली दीवारों के अँधेरे में टहल रहा था। रामानन्द निःशंक होकर उसकी ओर बढ़ा। उसके मुँह से अचानक निकल भी पड़ा—"इतने सबेरे!"

"हाँ, मैं बड़ी देर से तुम्हारा इन्तजार कर रहा हूँ।" दूसरी ओर से आवाज आई।

रामानन्द एकाएक चौंक पड़ा और उसी क्षण उसकी गरदन दो फौलादी बाँहों के नीचे आ गई। आगे उसे कुछ बोलने या सुनने का मौका भी न मिला। जोर से चीखकर वह जमीन पर गिर पड़ा। उसकी आवाज घाट की ऊँची दीवारों के बीच टकराने लगी—"कौशल्या! कौशल्या!! तुम नहीं आई, मैं, मैं.....आह.....इन्तजार.....कब से तुम्हारी इन्तजार....."

खून के छूटते हुए फौव्वारों से पूरन के सभी कपड़े सराबोर हो गए। छटपटाता हुआ रामानन्द का शरीर जमीन पर लुढ़क रहा था। गर्म खून जमीन पर फैलता जा रहा था। रामानन्द के सीने में धँसी हुई कटार को खींचकर पूरन ने निकाल लेना चाहा। उसने इतनी ताकत से वार किया था कि वह कटार मूठ तक रामानन्द के सीने में घुस गई थी। मूठ को पकड़कर पूरन ने कटार को ऊपर खींचा। लेकिन उसके साथ रामानन्द की तड़फड़ाती हुई लाश भी उठ गई और लड़खड़ाती हुई एक बहुत ही दर्दनाक आवाज आई—"कौशल्या, यह क्या हो गया? कौशल्या!...कौशल्या! तुम नहीं आईं, मैं कब से तुम्हारी इन्त.....जार....."

टूटते हुए अन्तिम शब्दों के साथ रामानन्द की जबान ऐंठ गई। उसकी आखिरी करुण चीख सुनने के बाद पूरन के लिए उस जगह, ठहरना असम्भव हो गया। उसकी कटार रामानन्द के सीने में ही रह गई।

जनानाघाट से बाहर निकलकर पूरन की दृष्टि अपने शरीर पर गई। उसकी धोती और कमीज खून से भीगी हुई थी। उसके हाथ खून से नहाए हुए थे। स्वयं से ही उसे एकाएक भय होने लगा। पानी की तरफ वह अपने हाथ धोने के लिए बढ़ा, तभी नन्दगाँव की होली धधक कर जल उठी। आकाश में लपटें उठने लगीं। नदी की पूरी तलहटी में प्रकाश फैल गया। फैलती हुई रोशनी में पूरन ने देखा, रेशम-टोले

के बाहर वाले निचले रास्ते पर एक स्त्री चली आ रही थी। एक बार आँखों पर जोर डालकर पूरन ने फिर देखा। वह और कोई नहीं; कौशल्या ही चली आ रही थी। पूरन पागल की तरह बोल उठा—"अब कौशल्या मेरी है। दीवाल खत्म हो गई!"

उसकी खूँख्वार आवाज को आमी की लहरों ने सुना, जनानाघाट की दीवारों ने सुना और टूटे हुए उस मन्दिर के देवता ने सुना। लेकिन उसे किसी आदमी ने नहीं सुना। कौशल्या जनानाघाट के निकट पहुँचती जा रही थी। पेड़ों की आड़ से होता हुआ पूरन अपने घर की ओर लौट पड़ा।

घर में जाकर उसने अपने खून से सराबोर कपड़ों को उतारा। उसके चारों ओर की जमीन घूम रही थी। अपनी उँगलियाँ उसे सुन्न मालूम पड़ रही थीं। पैर काँप रहे थे। भीतर से उसने दरवाजे को बन्द कर लिया और आँगन में खाट पर बैठ गया। गाँव के बाहर धूँ-धूँ करती हुई होली जल रही थी। ढोलक की ताल पर लोग उलारा गा रहे थे। रक्तिम लपटों पर खेलती हुई आवाज उसे सुनाई पड़ रही थी—

"कहवाँ बोलै कोइलिया!
कहवाँ बोलै मोर!
कहवाँ बोलै पपीहरा!
....."

* * *

आधी से अधिक रात बीत गई। चाँद का रथ आकाश-मंडल से नीचे उतरने लगा। गीत बन्द हो गए। गाँव में सन्नाटा छा गया। अपने और कौशल्या के बीच की दीवार को पूरन ने खत्म कर दिया था। कौशल्या के लौटने की अब तक वह बाट देख रहा था। लेकिन वह नहीं लौटी। पूरन ने समझ लिया कि भय के कारण ही वह अभी तक नहीं लौटी। दरवाजा खोलकर वह बाहर आया। खामोश चाँदनी

अपने में एक विषाद छिपाए हुए थी। थोड़ी देर तक दरवाजे पर ठहर कर पूरन फिर नदी की ओर चल पड़ा।

कौशल्या को लौटाने के लिए पूरन जनानाघाट के भीतर पहुँचा। रात के उस दूसरे पहर में पिछली दीवालों के अँधेरे में भी चाँद का उजाला फैला हुआ था। उस रुपहली चाँदनी की कैनवस पर बनी हुई तस्वीर को जब पूरन ने देखा, तो उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। एकाएक वह दो-तीन कदम पीछे हट गया। उसके पैर लड़खड़ाने लगे। खून की सेज पर कौशल्या रामानन्द के साथ सदा के लिए सो गई। रामानन्द की छाती की कटार उसके वक्ष का शृंगार बन गई थी।

निकट जाकर पूरन ने कौशल्या की गोरी, मांसल बाँहों को पकड़ कर उसे अपने अंक में उठाया। उसके भरे हुए मुख और दीर्घ अपाङ्गों को वह पागल की भाँति चूमने लगा।